Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

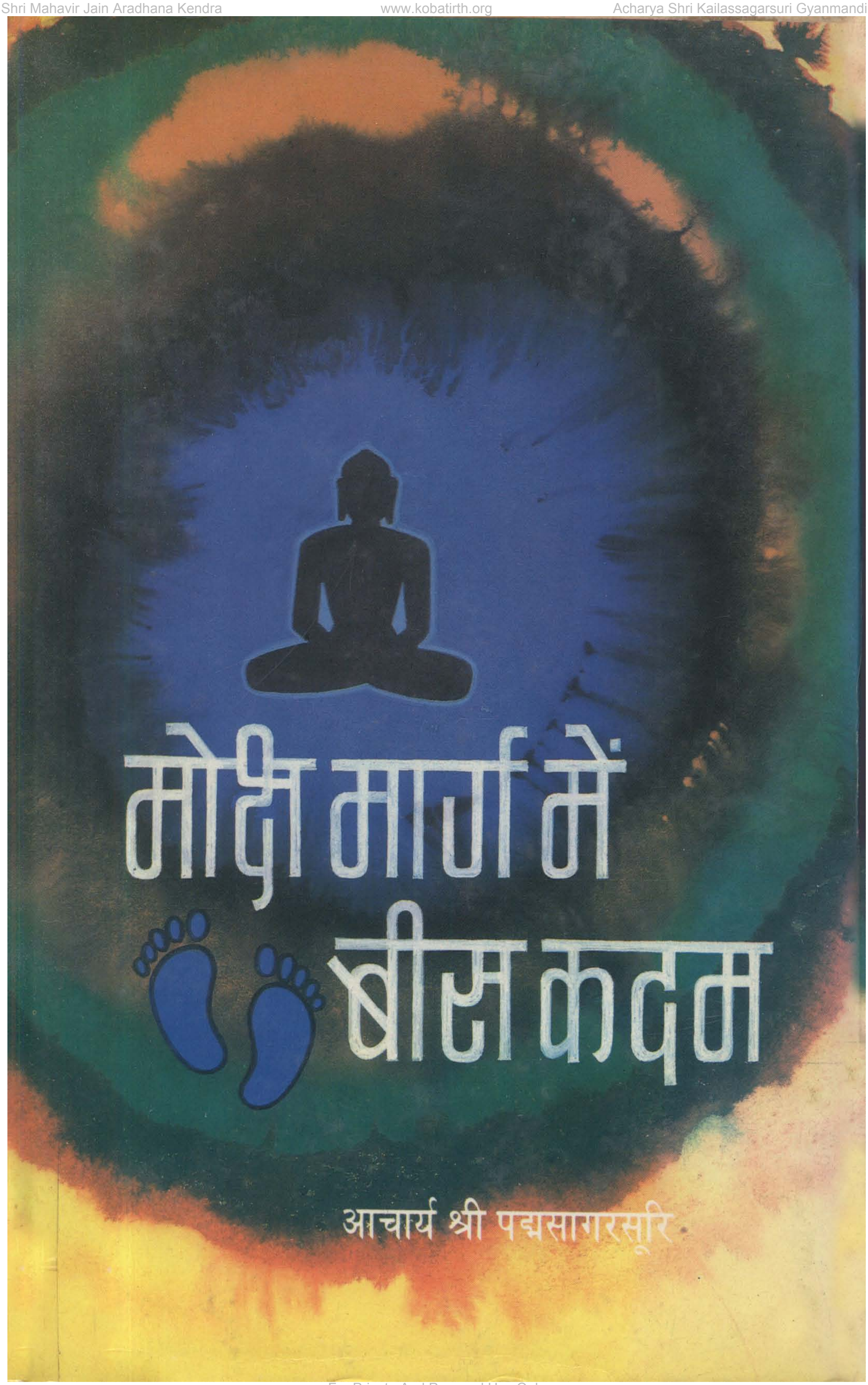

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

॥ नमामि वीरं गिरिसारधीरम् ॥

मोक्ष मार्ग में बीस कदम

प्रवचनकार

चारित्र चूडामणि प्रशांतमूर्ति आचार्य प्रवर

श्रीमत् कैलाससागरसूरीश्वरजी म.सा. के प्रशिष्यरत्न

शासन प्रभावक प्रखर वक्ता आचार्यवर्य

श्री पद्मसागरसूरीश्वरजी म.सा.

श्री अरुणोदय फाउन्डेशन

कोबा– ३८२ ००९

जिल्ला : गांधीनगर

गूजरात

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

■ **प्रकाशक :–**
श्री अरुणोदय फाउन्डेशन
पो. कोबा, जिल्ला गांधीनगर
गूजरात ३८२ ००९

■ पुस्तक : मोक्ष मार्ग में बीस कदम
■ विधा : धार्मिक प्रवचनों का संकलन
■ संस्करण : तृतिय, वि.सं.२०४९
■ प्रतियाँ : १५००
■ मूल्य : २५ रुपये मात्र
■ © : सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

: प्राप्ति–स्थान :

★ श्री अरुणोदय फाउन्डेशन
कोबा– ३८२ ००९

सरस्वती पुस्तक भंडार
हाथीखाना, रतनपोल
अहमदाबाद

टाईप–सेटींग :–
एकोर्ड कम्प्यूटरर्स
८६, नवघरीनी पोल,
चुनारानो खांचो, शाहपुर,
अहमदाबाद–३८० ००१.
फोन : ३०३११०

मुद्रक :–
पार्श्व कम्प्यूटर्स
कांस उपर, घोडासर,
ईसनपुर, अहमदाबाद.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकाशकीय

परम पूज्य प्रातःस्मरणीय शासन प्रभावक प्रखरवक्ता आचार्य प्रवर श्रीमत्पद्मसागरसूरीश्वरजी महाराज साहब के मुखारविंद सें प्रस्रवित बीस प्रवचनों का यह सुन्दर संकलन, "मोक्ष मार्ग में बीस कदम" पुस्तक का तीसरा संस्करण प्रकाशित करते हुए आज हमे अत्यंत हर्ष का अनुभव हो रहा है।

पूज्य ज्योतिर्विद् मुनिवर्य श्री अरुणोदयसागरजी म.सा. के कुशल मार्गदर्शन तहत आज पर्यंत श्री अरुणोदय फाउन्डेशन ने आचार्य श्री के हिन्दी गुजराती एवं अंग्रेजी में अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

विक्रम संवत २०५० के कार्तिक शुक्ला सप्तमी के दिन पूज्य गुरुदेव श्री अरुणोदयसागरजी म.सा. को ऐतिहासिक भीनमाल नगर में आचार्य श्री के वरद हस्तों से 'गणिवर्य' पद प्रदान किया जायगा तदर्थ स्मृति दिवस पर इस उपयोगी पुस्तक का तृतीय संस्करण प्रकाशित करके हम धन्यता अनुभव कर रहे हैं।

आचार्य श्री के पूर्व प्रकाशित अन्य पुस्तकों की भांति यह प्रकाशन भी लोगों में आदर पात्र बना हैं। इसीलिए इसका तीसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा हैं।

प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशन में मद्रास के उदारमना शेठ श्री रतनचन्दजी सावनसुखा का सुन्दर आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है तदर्थ हम आपके आभारी हैं।

आचार्य श्री ने अपने प्रवचनों को प्रकाशित करने की अनुमति देकर हम सभी पर अत्यंत उपकार किया है तदर्थ हम आपके हार्दिक ऋणी है।

अंत में, जिनाज्ञा–विरुद्ध कुछ भी इस पुस्तक में प्रकाशित हुआ हो तदर्थ त्रिविधे–त्रिविधे मिच्छामि दुक्कडम्।

श्री अरूणोदय फाउन्डेशन
कोबा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आचार्य श्री पद्मसागरसूरीश्वरजी महाराज जैन संस्कृति और साहित्य के दिग्गज रक्षक तथा कला क्षेत्र एवं अन्य विधाओं के मर्मज्ञ होने के उपरांत उन्होंने भारत की एकता, साम्प्रदायिक सामंजस्य और विविध धर्मों कि समन्वय को अपना कर मानव मात्र के कल्याण को जीवन संदेश बना कर वह सदैव प्रयत्नशील है। उन्होंनें कार्य–कलाप, व्याख्यान और गतिविधियों के माध्यम से सदा–सर्वदा राष्ट्रहित, विकास और नैतिकतामय सुसंस्कृत धार्मिक संस्कारों का प्रचार और प्रसार किया है।

आचार्य श्री धर्म के संदर्भ में भले ही जैन–धर्म से जुडे हों। किंतु विचार, वाणी, कर्म और कार्य से भारतीय संस्कृति के ज्योतिर्मय नक्षत्र मंडल से सर्वत्र देदीप्यमान हैं। वास्तव में वह एक क्रांतिदर्शी मनीषी हैं, जिनमें संन्यासी वृत्ति, त्याग–तपस्विता के साथ–साथ एक अपूर्व तेजस्विता एवं दूरदर्शी दृष्टिकोण है। उनकी सूर्य की तरह प्रखर ज्ञान की उष्मा, प्राचीन ऋषि–मुनियों की सात्विकता, कबीर की स्पष्टवादिता और विवेकानंद सी ओजस्वी शैली ने असंख्य जन–हृदयों की श्रद्धा का भाजन बना दिया है।

प्रायः वह अपने प्रवचनों में कहते हैं ''मैं सभी का हूँ, सभी मेरे हैं। प्राणी–मात्र का कल्याण मेरी हार्दिक भावना हैं। मैं किसी वर्ग, वर्ण, समाज या जाति के लिए नहीं, अपितु सब के लिए हूँ। मैं इसाइयों का पादरी, मुस्लिमों का फकीर, हिंदुओं का संन्यासी और जैनियों का आचार्य हूँ।''

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कहाँ क्या है?

क्र.	विषय	पृष्टांक
१.	अचौर्य	२
२.	अनासक्ति	१०
३.	अनेकान्त	१८
४.	अभिमान	२६
५.	अक्रोध	३४
६.	अहिंसा	४२
७.	आचरण	५०
८.	ईर्ष्या	५८
९.	उदारता	६५
१०.	कर्त्तव्य	७३
११.	गुरुमहिमा	८२
१२.	छल	९०
१३.	त्याग	९८
१४.	दान	१०६
१५.	धर्म	११३
१६.	निर्भयता	१२१
१७.	परोपकार	१२९
१८.	मनःसंयम	१३७
१९.	विवेक	१४५
२०.	मोक्ष मार्ग	१५३.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रस्तुत पुस्तक 'मोक्ष मार्ग में बीस कदम' के प्रकाशन में

श्री चंपालालजी सावनसुखा

पब्लिक चेरिटीबल ट्रस्ट,
२६, नोर्थ क्रेसेन्ट रोड, टी. नगर,
मद्रास - १७.

के मेनेजिंग ट्रस्टी

श्री रतनचन्दजी सावनसुखा द्वारा
आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है।

तदर्थ **श्री अरुणोदय फाउन्डेशन**
आपका आभार मानता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१. अचौर्य

प्रामाणिक सज्जनो!

धर्म का प्रारम्भिक रूप प्रामाणिकता में दिखाई देता है। उन साम्यवादी देशों में, जहाँ धर्म को अफीम माना जाता है, वहाँ भी भरपूर प्रामाणिकता (ईमानदारी) पाई जाती है। वे लोग जानते हैं कि व्यापार में भी सफलता का आधार प्रामाणिकता है; इस लिये वे भी जीवनभर प्रामाणिक बने रहते हैं अर्थात् धर्म से घृणा करके भी प्रमाणिक बने रहते है!

हमारे भारत में क्या हाल है ? जहाँतक प्रामाणिकता का प्रश्न है, उसे दिया लेकर ढूँढना पड़ेगा! आये दिन हम समाचारपत्रों में पढ़ते रहते हैं कि– कहीं बैंक लूटी गई, कहीं ट्रेन और कहीं बस! जो लोग ऐसे प्रकट लुटेरे नहीं है, उनमें भी रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, मिलावट, बेईमानी, आदि अप्रामाणिकता के रूप में पाये जाते है। ईमानदार आदमी हजारों–लाखों में मुश्किल से दो–चार मिलते है। इससे सिद्ध होता हैं कि हम धार्मिकता को अपनाना नहीं चाहते, धार्मिक बनना नहीं चाहतें !

बेईमानी धन के लिए की जाती हैं; परन्तु जो धन बेईमानी से प्राप्त होता हैं वह टिकाऊ नहीं होता। हिन्दी में कहावत है कि– चोरी का धन मोरी में जाता हैं । इंग्लिश में भी इसीसे मिलती–जुलती कहावत है : –

Ill got ill spent

संस्कृत में भी कहा है :–

अन्यायोपार्जित्तं वित्तम् दश वर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं हि विनश्यति ।।

[अन्याय (बेईमानी) से अर्जित (कमाया गया) धन दस वर्ष तक रहता है। ग्यारहवें वर्ष वह मूलसहित नष्ट हो जाता हैं]

मधुमक्खी थोड़ा–थोड़ा रस फूलों से चुराती हैं; परन्तु छत्ते का सारा शहद कोई दूसरा ही ले जाता है। गुजराती में कहावत हैं :–

"मियाँ चोरे मूठे । अल्ला चोरे ऊँटे" ।।

बेईमानी से थोड़ा–थोड़ा धन संग्रह करने वाले के घर में डाका पड़ जाता हैं। स्वामी सत्यभक्त कहते हैं :–

चोरी करता चोर, पर चोरी सहे न चोर ।
चोरों के घर चोर हों चोर मचायें शोर ।।

–सत्येश्वरगीता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चोरी करने वाला चोर भी अपने घर में हुई चोरी को सह नहीं सकता। इससे सिद्ध होता है कि– चोरी को वह भी बुरा कार्य मानता है; परन्तु निर्धनता से प्रेरित होकर वह चोरी करने लगता है। श्रम से भी निर्धनता को दूर हटाया जा सकता है; परन्तु आलस्य उसे श्रम से रोकता है। आलस्य का कारण है – अज्ञान।

किसी विचारक के अनुसार चोरी की माँ निर्धनता है और बाप अज्ञान। यही कारण है कि ज्ञानी व्यक्ति निर्धनता में भी प्रामाणिक बना रहता है – चोरी नहीं करता। वह जानता है:–

एकस्यैकंक्षणं दुःखम् मार्यमाणस्य जायते ।
सपुत्रपौत्रस्य पुन – र्यावज्ञीवं हृते धने ।।

– योगशास्त्रम्

(मारे जाने वाले अकेले जीव को क्षण–भर के लिए दुःख होता है, किन्तु जिसका धन चुरा लिया जाता है, उसे तथा उसके पुत्रों–पौत्रों को जीवनभर के लिए दुःख होता हैं)

इस प्रकार चोरी हिंसा से भी बड़ा पाप बन जाती है । उससे भीख माँगना अच्छा है– ऐसा एक कविका कथन है :–

वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादनसुखम् ।

(भिक्षा माँगकर खाना अच्छा है; परन्तु दूसरे के धन का स्वाद सुख– अच्छा नहीं।)

अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह भी चोरी है :–

यावद् भ्रियेत जठरम् तावत्स्वत्वं हि देहिनाम् ।
अधिको योभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ।।

– महाभारतम्

(पेट भरने के लिए जितना धन जरूरी है, उसी पर प्रत्येक प्राणी का स्वत्व (अधिकार) है। उससे अधिक धन पर जो अपना अधिकार मानता है, वह दण्डनीय चोर है!)

इस श्लोक के अनुसार परिग्रह का समावेश भी चोरी में हो जाता है ।

उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार धन का लोभ ही चोरी का कारण है :–

अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययइ अदत्तम् ।

(असन्तोष के दोष से दुःखी व्यक्ति लोभ से कलुषित होकर दूसरे के अदत्त (धन) को ग्रहण करता है।)

चोरी के लिए एक पारिभाषिक शब्द है – अदत्तादान। अदत्त (वह वस्तु जो किसी के द्वारा हमें दी न गई हो, उस) को ग्रहण (स्वीकार) करना ही अदत्तादान है। सूत्रकृताङ्ग में लिखा है :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अदिन्नमन्नेसु य णो गहेज्जा ॥

(न दी हुई किसी की कोई वस्तु ग्रहण नहीं करनी चाहिये।)

संस्कृत में भी कहा है :–

कस्यचित्किमपि नो हरणीयम् ॥

(किसी का कुछ भी चुराना नहीं चाहिये।)

बाईबिल कहती है :–

Thou shall not steal

वेदों में आदेश है :–

मा गृधः कस्यश्चिद् धनम् ॥

(किसी के धन पर मत ललचाओ।)

प्रभु महावीर उत्तराध्ययनसूत्र के माध्यम से फरमाते है :–

नायएज्ज तणामवि ॥

(स्वामी की आज्ञा प्राप्त किये बिना एक तिनका भी नहीं लेना चाहिये।)

इस प्रकार सर्वत्र चोरी का निषेध किया गया है। चोरी के पाँच प्रकार होते है :–

(१) **सेंध लगाना** – किसी धनवान् के मकान की दीवार में घुसने लायक छेद बनाना।

(२) **गाँठ खोलना–** अनाज आदि की बँधी हुई गठरी को खोलकर माल निकाल लेना।

(३) **ताला तोड़ना–** नकली चाबी बनाकर या और किसी तरीके से ताला खोलना अथवा तोड़ना।

(४) **किसी की कहीं पड़ी हुई वस्तु उठा लेना।**

(५) **डाका डालना–** मालिक की उपस्थिति में उसे पिस्तौल आदि से डरा कर उसका धन छीन लेना।

इनके अतिरिक्त माप–तौल के नकली साधन रखना भी चोरी है। जैसे एक किलोग्राम के ऐसे दो बाँट रखना कि एक का भार पौन किलोग्राम हो और दूसरे का सवा किलोग्राम। अब अपनी दूकान पर यदि कोई ग्रामीण घी बेचने आये तो उसे तौलते समय सवा किलोग्राम वाले बाँट का उपयोग करना, जिससे एक किलोग्राम के ही पैसे देने पड़े और यदि कोई ग्राहक घी खरीदने के लिए दूकान पर चला आये तो (घी) तौलते समय पौन किलोग्राम के बाँट का उपयोग करना और ग्राहक से पूरे एक किलोग्राम का मूल्य वसूल करना। यही बात नाप (कपड़ा) नापने के मीटर आदि) और माप (दूध, तेल आदि मापने के लिए लीटर आदि) के साधनों के लिए भी कही जा सकती है। ऐसे साधनों से एकाध बार भले ही आपको लाभ मालूम हो;

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परन्तु पोल खुलने पर सदा के लिए दूकान ठप्प हो जाती है। एक बार ग्राहक को अविश्वास हो जाय तो फिर नापतौल के असली साधन रखने पर भी दूकान चल नहीं सकती :-

तुलामानयोरव्यवस्था व्यवहारं दूषयति ॥

–नीतिवाक्यामृतम्

[तोल–माप की अव्यवस्था व्यवहार (लेन–देन, व्यापार) को दूषित कर देती है – बिगाड़ देती है]

प्रश्न व्याकरण सूत्र में चोरी के चार प्रकार इस गाथा के द्वारा बताये है :-

सामीजीवादत्तम् तित्थयरेणं तहेव य गुरूहिं ।

एवमदत्तसरूवम् परूवियं आगमधरे हिं ॥

[आगमधारी (शास्त्रज्ञ) महात्माओंने अदत्त के चार रूपों की प्ररूपणा की है – स्वामी अदत्त, जीव अदत्त, जिन अदत्त और गुरू अदत्त]

"उपदेश प्रासाद" में भी इन्हीं चार प्रकारों का उल्लेख पाया जाता है :-

तदाद्यं स्वामिनादत्तम् जीवादत्तं तथापरम् ।

तृतीयं तु जिनादत्तम् गुर्वदत्तं तुरीयकम् ॥

इन में पहला है – स्वाम्यदत्त। यह वह वस्तु है, जिसे उसके स्वामी ने किसी को दी नहीं। किसी पेड़ के फल, फूल, टहनी, छाल, पत्ती आदि तोड़ना जीवादत्त है; क्योंकि पेड़–पौधे सचित (सजीव) है और उनके जीव ने फल, फूल आदि तोड़ने की हमें अनुमति नहीं दी है। यदि जिनेश्वर प्ररूपित नियमों के विपरीत अशुद्ध आहार कोई मुनि ग्रहण करता है तो गृहस्थ द्वारा दत्त होने पर भी वह आज्ञानुसार न होने से जिनादत्त है। यदि गृहस्थ द्वारा दत्त सर्वथा निर्दोष आहार भी गुरू की आज्ञा के बिना ग्रहण किया जाय (खा लिया जाय) तो उसे गुर्वदत्त कहा जाता है।

इन चारों अदत्तों का आदान धर्मविरूद्ध है, चोरी है। चोरी आर्योका नहीं, अनार्यो का कर्म है। इससे अपयश फैलता है। गीता के अनुसार अपकीर्त्ति का दुःख मौत से भी अधिक होता है :-

सम्भावितस्य चाकीर्त्ति– र्मरणादतिरिच्यते ॥

(यशस्वी पुरुष को अपयश का दुःख मृत्यु से भी अधिक महसूस होता है)

इसलिए सभी स्त्री–पुरुषों को अचौर्यव्रत अंगीकार करना चाहिये। पातंजल योगदर्शन के अनुसार :-

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥

(जीवन में यदि अचौर्य व्रत की प्रतिष्ठा हो जाय अर्थात् पूर्णरूप से यदि कोई अचौर्यव्रत को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अंगीकार कर ले तो उसे ऐसी दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है कि पृथ्वी के भीतर छिपे हुए बहुमूल्य रत्न उसे प्रत्यक्ष दिखाई देने लग जाते है!)

सत्पुरुष चोरी से अपने को उसी तरह बचाये रखते हैं जैसे नशे से; क्यों कि जिस प्रकार नशे की आदत जल्दी छूटती नहीं, उसी प्रकार चोरी की आदत भी नहीं छूटती।

एक महिला थी। बचपन से ही उसे चोरी करने की आदत पड़ गई थी। जहाँ भी कहीं वह मिलने–जुलने जाती, वहाँ से मौका पाकर कोई–न–कोई चीज उठा ही लाती; भले ही उस चीज की उसे आवश्यकता हो या न हो। उसका एक पुत्र था, जो अपनी माँ की इस आदत से बहुत अधिक परेशान रहता था; परन्तु माँ की आदत सुधारना उसके बस की बात नहीं थी।

एक बार विवाहोत्सव का निमन्त्रण पाकर बेटा अपनी माँ के साथ ननिहाल गया। रास्ते में उसने अपनी माँ को अच्छी तरह समझा दिया कि वह अपने को पूरी मर्यादा में रखें। उठाने की नीयत से किसी वस्तु को न छूए। ऐसा न हो कि बाहर से आये मेहमानों के सामने घर की इज्ज़त धूल में मिल जाय।

माँ ने कहा – अरे, मैं कोई पागल थोड़े ही हूँ, जो घर की इज्ज़त का भी खयाल न रक्खूं। मैं ऐसा–वैसा कोई काम नहीं करूंगी। तू बिल्कुल मेरी ओर से निश्चिन्त रहे।

दोनों उत्साहपूर्वक विवाहोत्सव में सम्मिलित हुए। उत्सव की समाप्ति के बाद जब बहिन–बेटियों को बिदाई दी जा रही थी, तभी सब की आँख चुरा कर उस महिलाने दो–चार ब्लाउज पीस उठा लिये। बेटे की उस पर नजर पड़ गई। उसने तत्काल चिल्लाकर कहा :–
"माँ! यह क्या कर रही हो ?"

माँ बोली :–" बेटे! मैं चोरी नहीं कर रही हूँ। यह तो अपनी आदत को थोड़ी–सी खुराक दे रही हूँ।"

घर वाले सावधान हो गये। ब्लॉउजपीस तो उससे ले ही लिये, साथ ही माँ–बेटे को वहाँ से बिदा भी कर दिया।

प्राचीन काल में चोरी की बहुत कड़ी सजा दी जाती थी। चोरी प्रायः हाथों से होती है; इसलिए चोर के हाथ काट डाले जाते थे।

दो मुनि थे – शंख और लिखित। वैसे वे दोनों सहोदर (भाई) थे। शंख बड़ा भाई था और लिखित छोटा। राजा ने इन संन्यासी भाईयों को एक बगीचा दान कर दिया था। आधे बगीचे पर शंख का अधिकार था और आधे पर लिखित का।

एक दिन लिखित मुनि बगीचे में टहलते हुए शंखमुनि वाले भाग में चले गये और क्षुधाप्रेरित होकर किसी फलदार वृक्ष का एक फल तोड़ कर खा गये। खाने के बाद उन्हें ध्यान में आया कि यह तो अदत्तादान (चोरी) का कार्य हो गया। अब क्या किया जाय ? वे तत्काल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शंखमुनि के पास गये। अपनी चोरी का हाल सुनाया और दण्ड माँगा। शंख मुनि ने मुस्कराकर क्षमा कर दिया।

परन्तु लिखित मुनि को इससे सन्तोष नहीं मिला। जीवन में पहली बार जिसने चोरी की हो, उसका मन क्षमा से भला कैसे शान्त हो सकता है ? फिर वे मुनि थे–धर्मोपदेशक थे; इसलिए नैतिक नियमों के पालन की अधिक जिम्मेदारी महसूस करते थे। जो उपदेशक स्वयं उपदेश का पालन नहीं करता, उसका समाज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता!

उवएसा दिज्जन्ति हत्थे नच्चाविऊण अन्नेसिं ।

जं अप्पणा न कीरइ किमेस विक्काणुओ धम्मो ?

(हाथ नचा–नचाकर दूसरों को उपदेश दिये जाते है; किन्तु स्वयं उन उपदेशों का पालन (उपदेशकों द्वारा) नहीं किया जाता। तो क्या यह धर्म बिक्री की चीज है ?

उपदेश देकर समाज से रोटी और प्रतिष्ठा वसूल करनेवाले आचरणहीन उपदेशक धर्म को बिक्री की वस्तु मानते हैं। लिखित मुनि ऐसे नहीं थे। वे सीधे राजसभा में गये; किन्तु वहाँ भी राजा एवं अन्य लोग उन्हें पहिचानते थे कि– ये शंख मुनि के छोटे भाई है; इसलिए अपराध का दण्ड मिलने की सम्भावना नहीं थी। दण्ड पाने के लिए उन्होंने अपनी बात इस तरह कही:– ''हे राजन्। यदि कोई यात्री (पथिक) किसी की अनुमति लिये बिना किसी बगीचे में घुसकर फल तोड़ खाये तो इस अपराध का उसे क्या दण्ड दिया जायगा ?''

इससे कोई समझ न सका कि लिखित मुनि स्वयं अपने लिए दण्ड की याचना कर रहे हैं; अतः न्यायाधिपति ने राजा का संकेत पाकर कहा :– ''मुनिराज! इस प्रकार फल चुराने वाले का हाथ काट दिया जायगा।''

यह सुनते ही लिखित मुनि जल्लाद के पास पहुँचे और उसके हाथ में से तलवार लेकर सबके सामने अपना एक हाथ उससे काट कर फेंक दिया। फिर अपने अपराध का वर्णन किया और कहा कि अब मुझे अपने भाई के बगीचे के फल को चुराने के अपराध का यथोचित दण्ड मिल गया है। लोगों पर इस घटना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वर्षों तक प्रजाजनों के मन में भी चोरी करने का विचार नहीं उठा।

इसी प्रकार चोरी से विरत करनेवाली एक घटना पं.बनारसीदासजी की है। एक रात को उनके घर में सेंध लगाकर नौ चोर घुस आये। एक ओर काली मिर्चों का ढेर पड़ा था। चोरों ने अपनी अपनी चादरें जमीनपर बिछाकर काली मिर्चियों की नौ गठरियाँ बाँध लीं, जब चलने की तैयारी हुई तो एक ने दूसरे के, दूसरेने तीसरे के सिर पर गठरी रखवा दी; परन्तु अन्तिम नौवाँ चोर अपनी गठरी के पास खड़ा रहा। उसे गठरी कौन उठवाता ? अन्य आठ चोरों के मस्तक पर गठरियाँ लदी हुई थी; इसलिए उनसे कोई सहायता उसे मिल नहीं सकती थी ऐसी स्थिति में स्वयं पंडितजी ने यह काम किया। चोर चल तो पड़े; किन्तु मार्ग में उन्हे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विचार आया कि आखिर नौवें भाई को गठरी उठाने वाला था कौन ? उसका पता लगाने के लिए सेंधके रास्ते फिर से घर में लौट आये। वहाँ पूछताछ करने पर पंडितजी ने कहा :- "भाईयो! नौवें साथी की रूआँसी सूरत देखकर मुझे उस पर दया आ गई; इसलिए मैंने ही उसकी गठरी उठवा दी थी।"

एक चोर की दशा पर इतनी दया का व्यवहार देखकर सब चोरों का दिल बदल गया। माल तो उन्होंने लौटा ही दिया, साथ ही भविष्य में कभी चोरी न करने की प्रतिज्ञा भी ले ली।

लज्जित होनेपर भी लोग चोरी छोड़ देते हैं। मोरबी शहर में घटित इस घटना से यह बात स्पष्ट होती है :-

एक सेठजी की दूकान पर कोई भिखारी आटा माँगने आया। घर में जाने के लिए दूकान के भीतर ही दरवाजा था। सेठजी आटा लेने भीतर गये। इधर दूकान पर कोई न रहने से भिखारी ने वहाँ किसी ग्राहक की पड़ी हुई तपेली उठाकर अपनी झोली में डाल ली।

सेठजी खोबा-भर आटा लेकर दूकान पर आये। वहाँ तपेली न देखकर भाँप गये कि भिखारी ने ही तपेली चुराया है। सेठजी ने आटे का दान करने के बाद उससे कहा - "भाई! आटे के साथ थोड़ा-सा घी भी लेते जाओ; अन्यथा बाटियाँ कैसे चुपडोगे ?"

भिखारी बोला :- "सेठजी! घी लेने का मेरे पास कोई साधन (बर्त्तन) नहीं है। किस में लूँ ?"

सेठजी ने भिखारी की झोली में छिपी तपेली बाहर निकाल कर कहा :- इस में! और उस में ले जाने के लिए घी भी दे दिया।

इस व्यवहार से अत्यन्त लज्जित होकर भिखारी ने चोरी सदा के लिए छोड़ दी।

बाबा भारती ने तो एक वाक्य से ही डाकू खड्गसिंह को चोरी का माल लौटाने और चोरी छोड़कर सम्माननीय जीवन बिताने के लिए विवश कर दिया था। वह कौनसा वाक्य था ? लीजिये, पूरी घटना सुना देता हूँ :-

बाबा भारती के पास एक अच्छा घोड़ा था। उसकी आकर्षक चाल देखकर डाकू खड्गसिंह उसपर मुग्ध हो गया। जिसपर भी वह मुग्ध हो जाता, उसे वह अपनी ही वस्तु समझता था। मन-ही-मन उसने यह संकल्प कर लिया कि किसी भी तरह इस घोड़े पर अधिकार पाना है। वह चुपचाप अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

एक दिन सायंकाल के धुँधल में बाबा भारती अपने घोड़े पर सवार होकर लौट रहे थे कि सड़क के किनारे बैठे हुए एक लँगड़े पर उनकी नजर पड़ गई। उसकी सहायता करने के लिए उन्होंने घोडा रोक लिया। लँगड़े ने कहा - "बाबाजी! मैं अमुक गाँव से लँगड़ाता हुआ बड़ी मुश्किल से यहाँ तक आ पाया हूँ। अब थकावट इतनी अधिक आ गई है कि एक कदम भीं आगे नहीं चला जाता। कृपा करके आप मुझे इस घोड़े पर बिठा लीजिये और बाजार में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अमुक चौराहे पर उतार दीजिये। मैं अपने घर पहुँच जाऊँगा।''

सहज दयालु बाबा भारती ने लँगड़े को घोड़े पर बिठा दिया और स्वयं पैदल ही लगाम पकड़कर चलने लगे।

आठ–दस कदम आगे बढे होंगे कि सहसा एक झटके से लगाम उन के हाथ से छूट गई। घोड़ेपर सवार आदमी तनकर बैठा था। घोड़े को दौड़ाने से पहले उसने बाबा से कहा कि मैं डाकू खड्गसिंह हूँ। घोड़ा हथियाने के लिए ही मैंने लँगड़े का अभिनय किया था। अब यह घोड़ा मेरा है।

बाबा ने गम्भीरता से कहा :– ''हाँ, अब यह घोड़ा तुम्हारा है; परन्तु तुम से मैं एक प्रार्थना करना चाहता हूँ कि इस घटना का जिक्र किसी के सामने मत करना; अन्यथा अपाहिजों पर कोई विश्वास न करेगा!''

बाबा भारती का यह वाक्य डाकू के मस्तिष्क में छा गया। उसे चिन्तन में डुबो दिया। वह सोचने लगा कि बाबा कितने उदार हैं ! उन्हें अपने घोड़े की चिन्ता नहीं; किन्तु चिन्ता केवल इस बात की है कि भविष्य में अपाहिजों पर यदि कोई विश्वास नहीं करेगा तो परोपकार के लिए कोई प्रेरित न होगा।

डाकू को रात–भर नींद नहीं आई । सूर्योदय होने से पहले ही वह आश्रम में जाकर घोड़ा बाँध आया और डाका डालने का धन्धा छोड़कर एक सज्जन की तरह अचौर्यव्रत को अपना बैठा।

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२. अनासक्ति

विरक्तोपासक सज्जनो !

परमविरक्त प्रभु महावीर ने विरक्ति को मुक्ति के लिए आवश्यक माना है :-

ममत्तं छिन्दए ताए महानागोव्व कंचुयम् ।।

(जिस प्रकार साँप अपनी केंचुल छोड़ देता है, उसी प्रकार साधक को ममता का त्याग करना चाहिये।)

जन्म लेते ही मनुष्य फिर ममताओंसे घिर जाता है। मेरे माँ-बाप, मेरे खिलौने, मेरे पड़ौसी, मेरे मित्र, मेरा शरीर, मेरा परिवार, मेरा घर आदि "मेरा-मेरा" करते हुए ही उसका पूरा जीवन बीत जाता है। जिस वस्तु पर उसकी ममता होती है, उसके विकृत होने, नष्ट होने, खोने या चुरा लिये जाने पर वह निराश हो जाता है - उदास हो जाता है - करुण क्रन्दन करने लगता है। एक कविने यमक अलंकार का सुन्दर प्रयोग करते हुए यह प्रतिपादित किया है:-

यस्मिन् वस्तुनि ममता, मम तापस्तत्र तत्रैव ।
यत्रैवाऽहमुदासे तत्र मुदाऽऽसे स्वभावसन्तुष्टः ।।

(जिस-जिस वस्तु में मेरी ममता होती है, उस-उस से मुझे सन्ताप होता है। इससे विपरीत जिस वस्तु की मैं उपेक्षा करता हूँ, स्वभाव से सन्तुष्ट होकर उसी से मैं प्रसन्न रहता हूँ।)

दो शब्द हैं - अपेक्षा और उपेक्षा। केवल "अ" और "उ" का अन्तर है; किन्तु परिणाम देखा जाय तो दोनों में जमीन आसमान से भी अधिक अन्तर मालूम होगा। अपेक्षा (इच्छा) संसार में जीवको भटकाती है और उपेक्षा (विरक्ति) उस भटकन को समाप्त कर के जीव को मोक्ष की ओर ले जाती है :-

अपेक्षैव घनो बन्धः उपेक्षैव विपेक्तता ।।

(अपेक्षा ही सघन बन्ध है और उमुक्षा ही मुक्ति है।)

दुनिया पर सच्ची विजय वही प्राप्त करता है, जो अपेक्षाओंका दास ही नहीं, मालिक है :-

आशाया ये दासा- स्ते दासाः सर्वलोकस्य ।
आशा दासी येषाम् तेषां दासायते लोकः ।।

जो आशा के दास हैं, वे सारे संसार के दास हैं; परन्तु आशा जिनकी दासी है, वे संसार के स्वामी हैं ।)

महात्मा कबीर ने उसे बादशाह से भी बड़ा शाहंशाह माना है :-

चाह गई, चिन्ता मिटी मनुआ बेपर्वाई ।
जिसको कछू न चाहिये, सो ही शाहंशाह ।।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जहाँ चाह (इच्छा) है, वहीं चिन्ता का निवास होता है। जो व्यक्ति–कुछ भी नहीं चाहता, उसे निश्चिन्तता के कारण शाहंशाही मिल जाती है।

दर्पण के समान होता है उसका मन। जिस प्रकार दर्पण में सेंकड़ों अलग–अलग वस्तुएँ प्रतिबिम्बित होती रहती हैं, परन्तु वह किसी वस्तु का संग्रह नहीं करता, उसी प्रकार विरक्त भी अपने सम्पर्क में आने वाली वस्तुओं का संग्रह नहीं करता; उपयोग करते हुए भी उनसे अनासक्त रहता है।

पानी से भरी हुई बाल्टी में यदि कोई अपना हाथ डाले तो वह भीग जायगा; परन्तु तेल की मालिश करने के बाद यदि हाथ डाले तो वह पानी से अलिप्त रहेगा, थोड़ा भी गीला नहीं होगा। साधक का मन भी विरक्ति की मालिश के कारण संसार से नहीं भीगता। उसमें रहकर भी अनासक्त रह सकता है।

अनासक्ति को आत्मसात् कैसे किया जाय ? भेद विज्ञान के द्वारा। सूत्रकृतांग सूत्रमें प्रभुने प्रतिपादित किया है :–

अन्नो जीवो अन्नं सरीरम् ॥

(जीव अन्य है, शरीर अन्य)

इन्द्रियाँ विषयों की ओर दौड़ती है। इन्द्रियों का सम्बन्ध शरीर से है। जीव शरीर से भिन्न है। शरीर जीव नहीं हैं। और जीव शरीर नहीं है। मृत्यु के बाद शरीर तो यहीं जला दिया जाता है अथवा दफना दिया जाता है; परन्तु जीव कायम रहता है। वह अपने शुभाशुभ कर्मों का फल भोगने के लिए फिर कोई नया शरीर धारण कर लेता है। चौरासी लाख योनियों में भटकने वाला जीव ही है, शरीर नहीं।

जल वाले नारियल को तोड़ा जाय तो भीतर का गोला टुकड़ों में निकलेगा; परन्तु जल सूख जानेपर तोड़ा जाय तो पूरा गोला सुरक्षित निकल आयगा। नारियल की तरह शरीर है, गोले की तरह जीव और जल की तरह आसक्ति। साधक भेदविज्ञान को हृदयंगम करके आसक्ति को सुखाने का प्रयास करता है।

जीव की पहिचान होती है "मैं" के प्रयोग से। प्रयोगों पर ध्यान आकर्षित हुआ। "मैं काना हूँ, मैं अन्धा हूँ, मैं बहरा हूँ, मैं गूँगा हूँ . . ." आदि के आधार पर कुछ लोगोंने इन्द्रियोंको जीव मान लिया। फिर "मैं बिमार हूँ, मैं स्वस्थ हूँ, मैं स्नान करता हूँ, मैं लम्बा हूँ, मैं मोटा हूँ . . ." आदि प्रयोग देख कर कुछ विद्वानोंने शरीर को ही जीव समझ लिया।

और सूक्ष्म खोज हुई। "मैं समझता हूँ, मैं जानता हूँ, मैं पहिचानता हूँ . . ." आदि प्रयोगों से स्पष्ट हुआ कि बुद्धि ही जीव है; परन्तु "मैं सोचता हूँ, मैं मानता हूँ, मैं चिन्तित हूँ, मैं उदास हूँ . . ." आदि प्रयोगों से मन जीव है – ऐसा माना जाने लगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्तमें "मैं हूँ" के प्रयोग ने ऊपर की समस्त मान्यताओं के महल ढहा दिये। अपने अस्तित्व का जो अनुभव करता है, वही वास्तव में जीव है; इन्द्रियाँ, शरीर, बुद्धि या मन नहीं; अन्यथा मेरी इन्द्रियाँ– मेरा शरीरः मेरी बुद्धि, मेरा मन आदि का प्रयोग कौन करता है ?

जीव और शरीर की भिन्नता के इस ज्ञान को ही भेदविज्ञान कहते हैं, जिससे अनासक्ति उत्पन्न होती है।

जो वस्तुएँ हमें बाहर दिखाई देती हैं, उनमें से कोई भी जीव को साथ आने वाली नहीं है :–

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे कान्ता गृहद्वारि जनःश्मशाने ।
देहश्चितायां परलोक मार्गे कर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥

(धन जमीन में (पुराने जमाने में धन जमीन में गाड़ कर रखा जाता था; क्यों कि बैंकोकी व्यवस्था नहीं थी), पशु बाड़े में, पत्नी घरके दरवाजे तक, कुटुम्बी एवँ अन्य जन श्मशान तक, देह चिता तक अपने शुभाशुभ कर्मों के साथ अकेला ही जाता है।

समस्त वस्तुएँ उधार ली हुई हैं। वे भला कब तक अपने साथ रहेंगी ? उधार से उद्धार नहीं होता। स्वर्ग की समृद्धि भी पुण्य द्वारा उधार ले ली जाती है; अतः टिकती नहीं :–

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥

पुण्य के क्षीण होने पर जीवको फिर से मर्त्यलोक में जन्म लेना पड़ता है – स्वर्ग छोड़ना पड़ता है।

आध्यात्मिक गुण ही अन्त तक हमारे साथ रहते हैं; अतः उन्हें विकसित करने का प्रयास ही किया जाना चाहिये। उस प्रयास का मूल है – अनासक्ति।

आसक्ति वस्तुओंके प्रति ही नहीं; व्यक्तियों के प्रति भी होती है, जो अनुचित है। सत्यान्वेषी कभी किसी व्यक्ति का पक्षपात नहीं करता। सुप्रसिद्ध आचार्य श्री हरिभद्रसूरि ने लिखा है :–

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु ।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

(मेरा महावीर प्रभु के प्रति कोई पक्षपात नहीं है और न कपिल मुनि (सांख्यदर्शन प्रणेता) आदि के प्रति कोई द्वेष है। (मेरा तो यही कहना है कि) जिसकी बात तर्कयुक्त हो, वही मानी जाय।)

जिसमें पक्षपात होता है, उसे अपने दोष नही दिखाई देते और दूसरों के गुण भी नहीं दिखाई देते। इस प्रकार पक्षपाती अपने को सुधार नहीं पाता और दूसरों के सद्‌गुणोंको भी अपना नहीं पाता। उसका जीवन व्यर्थ चला जाता है। यही कारण है कि पक्षपात या आसक्ति को समस्त अनर्थों का कारण माना जाता है :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सङ्ग एव मतः सूत्रे, निःशेषानर्थमन्दिरम् ।।

(सूत्रकारोंने संग (आसक्ति) को समस्त अनिष्टों का घर माना है।)

जो व्यक्ति अपने परिवार के प्रति आसक्त होते हैं, उनकी कैसी दुर्दशा होती है ? इसका वर्णन करते हुए एक कविने कहा है :-

पुत्रदाराकुटुम्बेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः ।
सरः पङ्कार्णवे मग्नाः जीर्णाः वनगजा इव ।।

-पद्मपुराणम्

(पुत्र, पत्नी आदि परिवार में आसक्त प्राणी उसी प्रकार कष्ट उठाते रहते हैं, जिस प्रकार तालाब के गहरे कीचड़ में फँसे हुए पुराने (बूढे) जंगली हाथी)

यदि गहराई से विचार किया जाय तो पता चला जायगा कि- धन से अधिक मूल्य वस्तुओंका है; क्योंकि धन देकर हम वस्तुएँ खरीदते हैं। वस्तुओंसे अधिक महत्त्व शरीरका है और शरीर से अधिक महत्त्वपूर्ण आत्मा का है। एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ :-

निपाणी से एक आदमी धन कमाने के लिए बम्बई गया। वहाँ बुद्धिमत्ता और श्रम के सहयोग से उसने लाखों रुपये कमाये। घरका बँगला हो गया। कार आ गई। आराम से जीवन गुजरने लगा; परन्तु एक दिन वह आदमी बीमार पड़ गया। डॉक्टरोंने कहा - "आपको ब्रेन-ट्यूमर हो गया है। इसका ऑपरेशन लन्दन में होता है। शीघ्र जाकर इलाज कराइये; अन्यथा मृत्युका खतरा है।"

आदमी व्याकुल हो गया। उसने सोचा कि- ऑपरेशन के लिए लन्दन जाने पर बैंक बेलेन्स खत्म हो जायगा, लोन लेना पड़ेगा, बँगला भी गीरवी रखना पड़ेगा - सब कुछ करूँगा; क्योंकि शरीरकी तो किसी भी तरह रक्षा करनी ही है; क्यों कि यदि शरीर बच गया तो बुद्धिमत्ता और श्रम से पुनः पूर्ववत् धन कमा सकूँगा।

वह लन्दन गया, इलाज कराया, स्वस्थ हुआ, लौट आया; परन्तु कुछ वर्षो बाद जीवन का अन्तिम दिवस आ पहुँचा। शरीर से जीव निकल गया। परिवार वालों ने बहुमूल्य अलंकार उतारकर उस आदमी के शरीर को जला दिया। उसकी आत्मा के साथ धन नहीं गया। उसके द्वारा किये गये पुण्य-पाप ही साथ गये।

इससे सिद्ध होता है कि- धन से शरीरका और शरीर से आत्मा का अधिक मूल्य है। यदि शरीरके लिए धन की आसक्ति छोड़ी जा सकती है तो आत्मा के लिए क्यों नहीं छोड़ी जा सकती ?

बिहार की बात है। मनोर ग्राम में मैं ठहरा था। रात को जोरदार बरसात हुई। सामने एक आदिवासी की कुटिया थी। वह बुरी तरह भीग गई थी। सुबह खिचड़ी पकाने के लिए

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चूल्हेमें लकड़ी डाली गई। उसे जलाने के प्रयास में फूँक मार मारकर बुढियाका चेहरा लाल हो गया; परन्तु लकड़ी गीली थी; इसलिए उसने आग नहीं पकड़ी। बच्चों को जोरसे भूख लग रही थी। भूख मिटाने के लिए खिचड़ी पकाना जरूरी था। आखिर बुढिया पड़ौस से दो सूखी लकडियाँ माँग लाई। उन लकड़ियों ने आग पकड़ी और खिचड़ी पक गई।

हमारा भी यह कार्य है। साधु प्रवचन क्यों करते हैं ? वे आपके मस्तिष्करूपी तपेले में धर्मरूपी खिचड़ी पकाना चाहते हैं; परन्तु आसक्ति के जल से आपका चित्त भीगा है; इसलिए साधुओं के सारे प्रयत्न व्यर्थ जाते है। अनासक्ति की धूप से चित्त सूखेगा तो प्रवचनों से उस में ऐसी आग लगेगी कि उससे धर्मरूपी खिचड़ी आसानी से पक जायगी।

परिवार की आसक्ति मन को उदास करती है – रूलाती है; किन्तु अनासक्ति उसके आँसू पोंछती है।

विश्वविजेता सिकन्दर जब मरने पर कब्रमें गाड़ दिया गया, तब उसकी माँ रोती हुई वहाँ गई। कब्रिस्तान में वह करूण क्रन्दन करने लगी– "मेरा बेटा कहाँ है ? किसने छिपाया उसे ? बेटा लौटा दो! मेरे प्राण ले लो! बेटे के बिना मैं कैसे जीऊँगी ?"

तभी एक फकीर ने उसे समझाया :– "अरी पगली! तू किसे पुकार रही है ? सिकन्दर तेरा बेटा होता तो तुझे इस तरह रोता–बिलखता छोड़कर क्या कहीं जा सकता था ? संसार मे कोई किसीका नही हैं :–

यह संसार महासागर है, हम मानव हैं तिनके ।
इधर–उधर से बहकर आये, कौन यहाँ पर किनके ?

इस कब्रिस्तान में हजारों बेटे गाड़े जा चुके हैं। कोई भी अपनी माँ की पुकार पर बाहर नहीं निकला। तू भी एक दिन यहीं–कहीं गाड़ दी जायगी! इसलिए बेटे का मोह छोड़कर घर लौट जा।"

इस उपदेश से बुढिया की आसक्ति कम हुई और वह अपने निवास पर लौट गई।

महात्मा बुद्ध के सामने भी ऐसी ही एक बुढिया अपने एक मात्र पुत्र की लाश को छाती से चिपटाकर आ खड़ी हुई। रो–रोकर गिड़गिड़ाती हुई वह बोली कि आप इसे जिन्दा कर दीजिये, आप करूणासागर है– दयालु हैं। मुझ पर थोड़ी–सी दया कीजिये और मेरा दुःख मिटा दीजिये।

महात्मा बुद्धने उसे समझाने के लिए कहा :– "मन्त्र द्वारा मैं तेरे बेटे को अभी जिन्दा कर देता हूँ। चिन्ता मत कर, जा, किसी ऐसे घर से सरसों के कुछ दाने माँग ला, जिसमें पहले कोई मरा न हो।"

बुढिया प्रसन्न होकर सरसों के दाने लेने चली गई। सुबह से शाम तक वह प्रत्येक घरका चक्कर लगा कर थक गई; परन्तु अभिमन्त्रित करने के लिए कहीं से सरसों के दाने नहीं पा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सकी। लौटने पर महात्मा बुद्धने उसे समझाया :– "जो प्राणी जन्म लेता है, वह अवश्य मरता है, प्रत्येक घरमें कोई न कोई मर चुका है; परन्तु संसार का व्यवहार मरने वालों से नहीं रुकता। माली फूलों को तोड़ लेता है। कल जब कलियाँ फूल बन जायेंगी, तब उन्हें भी तोड लेगा। एक दिन सबको मरना है। न तू रहेगी, न मैं रहूँगा।"

बुढिया का पुत्रमोह नष्ट हो गया और महात्मा बुद्ध को प्रणाम करके वह चुपचाप अपने घर लौट गई।

राम को और पांडवों को बनवास के कारण महल छोड़ना पड़ा था, उसी प्रकार आपको भी अपना भव्य भवन छोड़ने का कभी अवसर आ जाय तो क्या वह भवन आँसू बहायगा ? यदि पिस्तौल की नोक पर कोई आपका बटुआ छीन ले तो क्या वह दुःखी होगा ? उसमें रहे हुए सौ–सौ के नोट क्या आपके वियोग में रोएँगे ? भवन और धन की तरह पूरे विश्व की स्थिति निरपेक्ष है। कोई किसी के प्रति आसक्त हैं ? जब आपके लिए कोई दुःखानुभूति नहीं करता, तब आप ही क्यों दुःखानुभूति में गले जा रहे है ?

जब साँप काटता है, तब नीमकी पत्तियाँ मीठी लगती हैं, जो वास्तव में कड़वी हैं। इसी प्रकार आसक्ति वश संसार मीठा लगता है; परन्तु वह केवल भ्रम है।

संसारकी आसक्ति मिटाने के लिए एक महत्त्वपूर्ण सुझाव यह है कि उसें नाटक माना जाय।

रामलीला होती है। एक रावण बनता है। दूसरा हनूमान बनकर उसकी लंका जलाता है। तीसरा राम बनकर उसका वध कर देता है। दर्शक प्रसन्न होकर तालियाँ बजाते हैं। पर्दे के भीतर रावण, हनूमान और राम एक ही बेंच पर बैठकर चाय पीते हैं। रावण के हृदय में न तो राम और हनूमान के प्रतिशत्रुता रहती है और न ताली पीटने वाले दर्शकों के प्रति द्वेष! रावण सोचता है कि मैं तो केवल एक अभिनेता हूँ। मान–अपमान अथवा शत्रुता–मित्रता से मेरा क्या सम्बन्ध ? संसारमें भी रागद्वेष रहित होकर एक अभिनेता की तरह अनासक्त भाव से हम सबको अपने–अपने निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन करते रहना है।

अनासक्ति का एक अन्य साधन है – मरण का स्मरण। भरत चक्रवर्ती की अनासक्ति का यही आधार था। एक दिन समवसरण में प्रभु ऋषभदेव ने उनके अनासक्ति भाव की प्रशंसा कर दी।

दूसरे दिन लोगों से एक सुनार कह रहा था :– "बाप तो बेटे की तारीफ करता ही है; इसमें कौनसी बड़ी बात हो गई ?"

यह वाक्य वेष बदलकर घूमते हुए मन्त्री के कानमें पड़ गया। तीसरे दिन राजसभामें सुनार को बुलाकर मन्त्रीने तेल से भरा हुआ सोने का एक कटोरा देते हुए कहा :– "इसे अपने दोनों हाथों में उठाकर पूरे नगर का चक्कर लगा आओ। यदि एक भी बूँद छलक गई तो तुम्हारा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सिर काटकर फिंकवा दिया जायगा। यदि पूरा तेल सुरक्षित रहा तो यह कटोरा तुम्हें इनाम में दे दिया जायगा।''

सुनार चल पड़ा। मन्त्री की आज्ञा से मार्ग में स्थान–स्थान पर संगीत और नृत्यके विविध कार्यक्रम आयोजित किये गये; किन्तु सुनार एक बूँद छल काये बिना तेल से पूरा भरा हुआ कटोरा लेकर राजमहल में लौट आया।

मन्त्रीने कटोरा पुरस्कार में देते हुए कहा :– ''आपने कल भरतचक्रवर्ती के विषय में जो टिप्पणी की थी उसका उत्तर देनेके ही लिए आज आपको यह कष्ट दिया गया था। जिस प्रकार मृत्यु के भय से आपका सम्पूर्ण ध्यान तेल पर केन्द्रित रहा, उसी प्रकार भरत चक्रवर्तीका ध्यान भी कर्त्तव्यपर केन्द्रित रहता है – मरण का स्मरण सांसरिक सुखों से उन्हें अनासक्त बनाये रखता है; इसीलिए वीतराग ऋषभदेव उनकी प्रशंसा करते हैं। यह पुत्र की नहीं, किन्तु एक अनासक्त राजा की प्रशंसा है।''

सुनार सन्तुष्ट होकर चला गया। उसे अनासक्त रहने का अभ्यास हो गया।

दूसरा उदाहरण राजर्षि जनक का है। उन्हें अनासक्ति के कारण ''विदेह'' कहा जाता है। एक दिन मन्त्रीने उनसे पूछा :– ''महाराज! देहमें रहकर भी आप विदेह (देहरहित) कैसे कहलाते हैं ?''

राजाने कहा– ''कल आप भोजन मेरे साथ करेंगे । वहीं आपको प्रश्नका उत्तर भी दे दिया जायगा।''

दूसरे दिन राजाने सारे नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि मन्त्री का एक ऐसा गुप्त अपराध पकड़ में आया है, जिसके दण्डस्वरूप आज भोजन के एक घंटे बाद उन्हें सूली पर चढा दिया जायगा।

इधर राजाने फीकी मिटाई और बिना मसाले के व्यजन भोजन में बनवाये, यथा समय भोजन कर चुकने के बाद मन्त्री से राजाने पूछा :– ''कैसा लगा भोजन आपको ?''

मन्त्री :– ''महाराज! भोजन आपके आदेशानुसार बना था; इसलिए अच्छा ही बना होगा– इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु मुझे तो एक घंटे बाद सूली पर चढ़ना है; इसलिए मेरी जीभ स्वाद लिये बिना ही भोजन को पेटमें धकेलती रही है; अतः भोजन का स्वाद मैं बता नहीं सकता!''

राजा जनक :– ''आपको अब सूली पर नहीं चढाया जायगा। सूलीका ढिंढोरा तो केवल आपको प्रश्न का उत्तर समझाने के लिए पिटवाया गया था, जिससे आपको विश्वास हो जाय कि मैं निश्चित ही मार डाला जाऊँगा। मृत्यु के विश्वास के साथ ही आपकी जीभ ने स्वाद बताना बन्द कर दिया – यह आपका अपना अनुभव है । मृत्यु तो इस संसार में प्रत्येक प्राणीकी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कभी–न–कभी होने ही वाली हे; परन्तु यह बात किसी को याद नहीं रहती। याद रहे तो सब अनासक्त हो जाएँ। मैं भी निरन्तर मरण का स्मरण करता रहता हूँ; स्वाद नहीं आता। यही कारण है कि देहमें रहते हुए भी मुझे लोग विदेह कहते हैं।''

विदेह बनाने वाली है– अनासक्ति।

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३. अनेकान्त

समन्वय प्रेमी सज्जनो!

अनेकान्त सिद्धान्त के बल पर प्रभु महावीर ने ढाई हजार वर्ष पहले प्रचलित ३६३ (तीन सौ तिरसठ) विभिन्न मतों का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया था।

अनेक दृष्टियों से एक वस्तु को देखना अनेकान्त है। एक ही आदमी किसी का पिता है, किसीका पति है, किसी का मामा है, किसी का पुत्र है और किसी का भाई। इसमें क्या विरोध है ?

"पत्थर छोटा होता है या बड़ा ?" इस प्रश्न के उत्तर में कहना पडेगा – "चट्टान से पत्थर छोटा होता है और कंकर से बड़ा।" इस प्रकार पत्थर छोटा भी होता है और बड़ा भी। इसमें कौनसा विरोध है ?

अनेकान्तवादको संक्षेप मैं स्याद्वाद भी कहते हैं, जिसकी परिभाषा इस प्रकार की गई है:–

एकस्मिन्वस्तुन्यविरूद्धनानाधर्मस्वीकारो हि स्याद्वादः ॥

[एक वस्तुमें अविरोधी अनेक धर्मो (गुणों या विशेषताओं) को स्वीकारना ही स्याद्वाद है।]

प्रभु ने फरमाया है :–

न यासियावाय वियागरेज्जा ॥

–सूत्रकृताङ १४/१९

(स्याद्वाद से रहित अर्थात् एकान्तवादी वाणी न बालें।)

"स्यात्" अपेक्षा भेदका सूचक है; इसलिए स्याद्वाद को. सापेक्षवाद भी कब सकते हैं. जो पाश्चात्य जगत् में "थ्योरी ऑफ रिलेटिविटि" के नाम से जाना जाता है। वैदिक विद्वान् इसीको दृष्टि सृष्टिवाद कहते हैं।

अपेक्षाभेद से वस्तु में अनेक गुण–धर्मो का अस्तित्व मानने वाले अनेकान्तवाद के समर्थक हैं। एकान्तवादी केवल एक ही दृष्टिकोण से वस्तु को देखते है; इसलिए जान नहीं पाते कि किसी अन्य दृष्टिकोण से वही वस्तु अन्य प्रकारकी भी दिखाई दे सकती है। अनेकान्तवादमें ऐसा एकान्त आग्रह, जिसे दुराग्रह कहना चाहिये, नहीं होता।

एकान्तवाद यदि रोग है तो अनेकान्त् वाद उसकी दवा है। बौद्धदर्शक कहता है – **"सर्वं क्षणिकम्"** (सब अनित्य है) और वैदिक दर्शन कहता है – **"सर्व नित्यम्"**(सब नित्य है)। ऐसी स्थितिमें प्रश्न खड़ा होता है कि पदार्थ नित्य है या इससे विपरीत अनित्य ?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनेकान्तावादी कहता है :-

उप्पन्ने वा विगए धुवे वा ।।

यही बात संस्कृत में कही गई है :-

उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं हि सत् ।।

[उत्पत्ति, नाश और स्थिरता–इन तीनों गुणों से युक्त होता है– सत् (पदार्थ)]

द्रव्यदृष्टि से जो वस्तु नित्य है, पर्याय दृष्टि से वही अनित्य भी होती है। कडा तुडवाकर हार बनवा लिया और फिर हार तुडवाकर मुकुट; तो कड़े और हारके रूपमें वस्तु अनित्य होकर भी स्वर्णके रूपमें वह नित्य ही है। जो स्वर्ण कड़ेमें था, वही हार में और फिर मुकुट में मौजूद है। यही बात अन्य सभी विषयो में लागू होती है। भूखे के लिए जो भोजन अच्छा है, वही क्या बीमार के लिए बुरा नहीं है ? है ही ! इस प्रकार एक ही भोजन अच्छा है और बुरा भी।

जो लोग स्याद्वाद को संशयवाद कहते है, उन्होंने स्याद्वाद का केवल नाम ही सुना है। उसे समझने की कोशिश बिल्कुल नहीं की; अन्यथा दोनों का अन्तर ध्यान में आ जाता। अन्तर यह है कि– संशयवाद में दोनों कोटियाँ अनिश्चित रहती हैं। जैसे– "यह साँप है या रस्सी ?" परंतु स्याद्वाद में दोनों कोटियों का निश्चय रहता है। जैसे – "द्रव्य दृष्टि से वस्तु नित्य भी है और पर्याय दृष्टि से अनित्य भी।"

अध्यात्मोपनिषद् में लिखा है :-

उत्पन्नं दधिभावेन नष्टं दुग्धातया पुनः ।
गोरसत्वात् स्थिरं जानन् स्याद्वादद्विड् जनोपिकः ?

(दूध नष्ट हुआ, दहीं उत्पन्न हुआ; परन्तु गोरसत्व दूधमें भी था और दही मैं भी है – ऐसा जानने वाला कोई भी व्यक्ति स्याद्वादका विरोधी नहीं हो सकता।)

इसी ग्रन्थ में अन्यत्र लिखा है :-

जातिवाक्यात्मकं वस्तु वदन्नुभवोचितम् ।
भट्टो वापि मुरारिर्वा नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ।।
विज्ञानस्यैकमाकारम्नानाकारकरम्बितम् ।
इच्छंस्तथागतः प्राज्ञो नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ।।
इच्छन् प्रधानं सत्त्वाद्यै– र्विरूद्धैर्गुम्फितं गुणैः ।
सांख्यः संख्यावतां नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ।।
अबद्धं परमार्थेन बद्धं च व्यवहारतः ।
ब्रुवाणो ब्रह्म वेदान्ती नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ।।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(कुमारिल भट्ट और मुरारि नामक जो विद्वान् वस्तुको सामान्यविशेषात्मक मानते हैं, वे अनेकान्तका खण्डन नहीं कर सकते! विज्ञान के एक आकार को अनेक आकारों से युक्त मानने वाले बौद्ध विद्वान् के द्वारा अनेकान्त का खण्डन नहीं किया जा सकता! बुद्धिमानों में प्रमुख सांख्यदर्शन प्रणेता कपिलमुनि प्रकृति को सत्त्व, रज और तम इन परस्पर विरूद्ध तीन गुणों से युक्त मानते हैं; इसलिए अनेकान्त का वे खण्डन नहीं कर सकते! वेदान्ती विद्वान ब्रह्म को परमार्थ से अबद्ध और व्यवहार से बद्ध मानता है; इसलिए वह भी अनेकान्त का खण्डन नहीं कर सकता!)

इन श्लोकों में यह बताया गया है कि अनेकान्त का खण्डन करनेवाले दार्शनिक स्वयं अपने सिद्धान्तों में परस्पर विरूद्ध बातों को एकत्र मानते हैं; इसलिए वे केवल द्वेषवश अनेकान्त का विरोध करते हैं; अन्यथा उन्हें विरोध करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है।

एक बार मूसलधार वर्षा हुई। पूरा गाँव बह गया। गाँव के बाहर बहने वाली नदी में बाढ आ गई। एक लाठीपर पाँच मेंढक बैठे थे। लाठी पानी की सतह पर भी। मेंढक डूबने से बच गये। उनकी पारस्परिक बातचीत की एक मनोरजक रिर्पोट इस प्रकार है :-

पहला मेंढक :- "हम बह रहे है!"

दूसरा मेंढक :- "नहीं लकड़ी (यह लाठी, जिस पर हम बैठे हैं) बह रही है!"

तीसरा मेंढक :- "गलत! न हम बह रहै हैं, न लाठी बह रही है; किन्तु नदी बह रही है।"

चौथा मेंढक :- "अरे मूर्खो। नदी तो जहाँ थी, वहीं है। वास्तव में जल बह रहा है। जल की सतह पर लाठी बह रही है और लाठी के सहारे हम बह रहे हैं; किन्तु यदि जल न बहे तो न लाठी बह सकती हैं, न हम।"

तीसरा मेंढक :- "कौन कहता है कि जल बह रहा है ? क्या जल बहने में स्वतन्त्र है ? यदि स्वतन्त्र है तो फिर सरोवर का या समुद्र का जल क्यों नहीं बहता ? नदीमें जल को बहना ही पड़ता है; क्योंकि नदी बहती है। केवल सूखी नदी नहीं बहती; परन्तु जिस नदी में हम इस समय हैं, वह सूखी नहीं है; इसलिए मेरा कथन ही ठीक है कि नदी बह रही है।"

पाँचवाँ मेंढक बूढ़ा था, अनुभवी था। उसने अनेकान्तवादी उत्तर दिया :- "भाईयो ! अपने अपने दृष्टिकोण से आप सब का कथन ठीक है; किन्तु दूसरों के दृष्टिकोण से गलत है। नदी भी बह रही है – जल भी बह रहा है – लाठी भी बह रही है और हम भी बह रहे हैं। चारों बातें ठीक है; परन्तु एकान्त आग्रह करने पर चारों बातें गलत भी हैं। कैसे ? देखिये, नदी स्थिर है। पानी भी स्थिर है। वह तो नदी की ढलान के कारण एक ओर जाने को विवश है। लाठी भी स्थिर है। यदि जल न होता तो वह स्थिर ही रहती। जल के कारण वह बहने

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

को विवश है । रही बात हमारी, सो हम तो लाठी पर बैठे हैं, न तैर रहे हैं और न बह रहै हैं।''

अनेकान्त वादी मेंढक की यह बात एकान्तवादी दुराग्रहियोंको सहन नहीं हुई । उन चारों ने मिलकर उस पाँचवे मेंढक को धक्का देकर जल में डूबो दिया। एकान्तवादियों के स्वमत मोहका–दुराग्रह का–कट्टरपनका कुपरिणाम बेचारे समझदार सत्यवादी को भोगना पड़ा!

परन्तु अनेकान्तवादी अपने प्राणों की पर्वाह नहीं करते। जिनके पास तर्क नहीं होता, वे ही तलवार का सहारा लेते है। तर्क के बल पर बड़े मुल्लाने किस प्रकार बादशाह के छक्के छुड़ा दिये, सो सुनने योग्य है।

एक दिन बादशाह ने घोषित कर दिया कि जो असत्य बोलेगा, उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। बड़े मुल्लाने इस चुनौती को स्वीकारते हुए कहा :– ''मै कल आऊँगा । असत्य बोलूँगा; फिर भी आप मुझे प्राण दण्ड नहीं दे सकेंगे!''

दूसरे दिन मुल्लाजी आये। द्वारपाल ने जब आने का प्रयोजन पूछा तो बोले :– ''मैं आज फाँसी पर लटकाया जाने वाला हूँ। बादशाहने मुझे फाँसी पर लटकाने के लिए बुलाया है; इसीलिए मैं उन से मिलने आया हूँ।''

द्वारपालने बड़े मुल्ला का सन्देश बादशाह के पास पहुँचा दिया। बादशाहने उन्हें अपने पास बुलवा तो लिया; परन्तु वे उन्हें फाँसी पर नही लटका सके। द्वारपाल से बड़े मुल्लाने कहा था कि बादशाहने मुझे फाँसी पर लटकाने के लिए बुलाया है–यह बात असत्य थी; इसलिए घोषणा के अनुसार उन्हें फाँसीपर लटकाया जा सकता था; क्योंकि वे असत्य बोले थे; परन्तु कल उन्होंने कहा था कि मैं असत्य बोलूँगा और अपने कथनानुसार वे आज असत्य बोले; इसलिए उनका कथन सत्य ही था! तब सत्यवादी को फाँसी पर कैसे लटकाया जाय ? यह समस्या खड़ी हो गई । आखिर असमंजस में पड़े बादशाह को मन–ही–मन हार मान लेनी पड़ी। मुल्ला अपनी तार्किकता पर मुस्कुराते रहे।

एक और घटना सुनिये। दो पत्नियाँ थीं उनकी। प्रत्येक को एकान्त में वे कहा करते थे कि तुम उससे अधिक सुन्दर हो, जिससे वे खुश रहें। स्त्रियों के पेट में सवा नौ महीने तक शिशु टिक सकता है; परन्तु बात नहीं टिकती। एक ने दूसरी से कहा कि मुल्लाजी मुझे तुमसे अधिक सुन्दर बताते हैं तो दूसरीने कहा कि यही बात वे मुझसे भी कहते हैं। इसका मतलब यह कि हम दोनों को उल्लू बनाते हैं। आज खबर लेती हैं हम। आने दो घर पर उन्हें।

शामको मुल्लाजी घर लौटे। दोनों उन्हें पकड़कर बैठ गई और पूछने लगीं– ''बताइये, हम दोनोंमें से आपको कौन अधिक सुन्दर लगती है ?''

बड़े मुल्लाने मुस्कुराते हुए कहा :– ''बस, इतनी–सी बात ? सुनना ही चाहती हो तो सुनो। मुझे तुम दोनों एक दूसरी से अधिक सुन्दर लगती हो!''

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इस अनेकान्तवादी उत्तर से दोनों पत्नियों का समाधान हो गया। वे पूरी तरह सन्तुष्ट हो गई।

बादशाह अकबर जैनाचार्य श्रीहीर विजयसूरिके प्रति बहुत श्रद्धा रखते थे। एक दिन उन्होंने प्रश्न किया :- "गुरुदेव! आप लोग माला फिराते समय मनके अपनी ओर घुमाते हैं और हम लोग बाहर की ओर, इन दोनोंमे से कौनसी पद्धति ठीक है और क्यो ?"

जैनाचार्यो के उत्तर तो अनेकान्तवादसे सने रहते हैं। वे बोले :- "महानुभाव ! माला फिराने की दोनों पद्धतियाँ ठीक हैं, अपनी ओर मनका घुमाने का मतलब है एक-एक सद्गुण को क्रमशः अपनानेका संकल्प और बाहर की तरफ मनका घुमाने का मतलब है एक-एक दुर्गुण को अपने हृदय से बाहर निकालने का संकल्प। दोनों ही संकल्प अच्छे हैं; किन्तु यह याद रखना जरूरी है कि माला अपने आपमें साध्य नहीं है। वह सद्गुणों की अपनाने और दुर्गुणों को दूर करने का साधन मात्र है। यदि जीवनशुद्धि का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जाय तो माला फिराने का श्रम व्यर्थ चला जायगा। महात्मा कबीरने ठीक ही कहा है -

'कबिरा' माला काठ की, कहि समुझावै तोहि ।
मन न फिरा वै आपणा कहा फिरावै मोहि ॥
माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर ।
करका मनका डारि दै मन का मनका फेर ॥

अन्तिम लक्ष्य है-मन को वश में करना-जीव को शुद्ध बनाना-दुर्गुणों से दूर रहना और सद्गुणों को आत्मसात् करना।"

इससे बादशाह को अपने प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर मिल गया।

आचार्य हीरविजयसूरि के ही एक शिष्य थे - मुनि समय-सुन्दर। उन्होंने कहा कि एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। किसी एक अर्थ से चिपटकर बैठना एकान्तवाद है। उससे संघर्ष उत्पन्न होता है। यदि हम सूक्ष्म विचार करें तो दूसरों के द्वारा किये गये अर्थ भी हमें सूझ जाय और तब कोई संघर्ष न रहे।

राजदरबार में बैंठे अन्य विद्वानोंने इसका प्रतिवाद किया और मुनिजी को एक वाक्य सुनाकर चुनौती दी कि वे उसके अनेक अर्थ करके बतायें। वाक्य था :-

"राजानो ददते सौख्यम् ।।"

मुनिजी ने अपनी प्रतिभा का पूरी शक्ति से उपयोग करते हुए इस वाक्य के दस लाख विभिन्न अर्थ करके सबको मन्त्रमुग्ध कर दिएँ। ये सारे अर्थ एक ग्रन्थ के रूपमें प्रकाशित हो चुके हैं, जिसका नाम है- "अनेकार्थरत्नमञ्जूषा।"

संस्कृत में एक कहावत है :-

सर्वे सर्वार्थवाचका : ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(सब शब्द सारे अर्थ प्रकट करनेवाले हैं।)

जरूरत है– प्रतिभाकी, बुद्धिमत्ता की, चिन्तन की, मनन की। प्रतिभाशाली विद्वान् की अनेकान्तरूपी रत्न के प्रकाश से मत–भेदों का अन्धकार मिटा संकता है। सारे दर्शन अनेकान्त रूपी बाड़ेके पशु हैं। आचार्य हेमचन्द्रसूरि के जीवन की एक घटनासे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

महाराजा सिद्धराजकी राजसभामें एक बार आचार्यजी पधारे। उनके हाथ में डंडा था और कन्धेपर कम्बल। वे जैन श्वेताम्बर साधु की सादी पोशाक में थे। दूरसे ही उन्हें आते देख कर एक ईर्ष्यालु कविने उनकी हँसी उड़ानेकी इच्छासे कहा–

"आगतो हेमगोपालो दण्डकम्बलमुद्वहन् ।"

(डंडा और कम्बल धारण करने वाला यह हेम नामक ग्वाला आ गया है।)

यह पंक्ति आचार्य श्री के कानोंमें जा पहुँची। तत्काल उन्होंने सब कुछ समझ लिया और वह विद्वान् इस श्लोक की अगली पंक्ति बोले, उससे पहले ही उसका समुचित उत्तर देने वाली पंक्ति अपनी ओर से बनाकर इस प्रकार सुनाई :–

"षड्दर्शनपशुप्रायां– श्चारयन् जैनवाटके ।।"

[षड्दर्शन रूपी पशुओं को जैनसिद्धान्त (अनेकान्त) रूपी बाड़े में चराता हुआ (मैं हेमगोपाल आ गया हूँ)]

इसी प्रकार एक ईर्ष्यालु पंडितने सामने से आते किसी जैन साधुकी ओर इंगित करते हुए कहा :– "हे मित्र! जो इन साधुओं को देखता है, वह सीधा नरक में जाता है।"

यह सुनकर जैन साधुने धीरे से मुस्कुराते हुए कहा :– "और जो आपके दर्शन करता है, वह कहाँ जाता है?"

"स्वर्गमें !" पंडित की यह बात सुनकर जैन मुनि बोले :– "तब तो आपके ही कथनानुसार आपके दर्शनों के फलस्वरूप मुझे स्वर्ग मिलना चाहिये और मेरे दर्शनों से आपको क्या मिलना चाहिये ? आप स्वयं सोच लें और यदि आपने गलत सोचा हो तो अपनी मान्यता में सुधार कर लें।"

इस पर लज्जित होकर उस पंडितने अपने शब्द वापिस ले लिये।

एक जगह किसी ईर्ष्यालु विद्वान् ने अपने शिष्योंसे कहा :– "ये जैन मुनि कितने गन्दे रहते हैं ? कभी नहाते तक नहीं! उनकी संगति से बचते रहना।"

यह बात किसी जैन मुनि को सुनाकर उसका दिल जलाने की दृष्टि से ही कही जा रही थी। वह मुनि संयमी था; इसलिए बिल्कुल शान्ति से उसने उत्तर दिया :– "महानुभाव! गाय कभी नहाती नहीं और भैंस पानीमें ही पड़ी रहती है। आप दोनों में से किसे पूज्य मानते है ?"

इससे पंडित निरूत्तर हो गया। एकांगी संकुचित दृष्टिकोण रखने वाले ईर्ष्यालुओं को ईसी प्रकार निरुत्तर और लज्जित होना पड़ता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुनि समयसुन्दर गणि के उदाहरण से हमने जाना था कि एक शब्द के अनेक अर्थ होते है और सब अर्थो का ज्ञान होने पर समन्यवय हो जाता है। उसी प्रकार कभी–कभी अनेक शब्दोंका भी अर्थ एक होता है। जब तक उस अर्थका ज्ञान हो जाय, तब तक मतभेद बना रहता है।

पैसेंजर ट्रेन के डिब्बेमें कुछ यात्री बैठे थे। कौन–सा फल श्रेष्ठ होता है ? इस पर बहस छिड़ गई। अरबी आदमीने कहा :– "एनब को मैं सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ । बहुत स्वादिष्ट होता है वह !"

तुर्कीने कहा :– "मैं तो उजम को अच्छा समझता हूँ। मुँह में रखते ही मजा आ जाता है।"

अंग्रेजने कहा :– "एनब और उजम तो मैंने देखे नहीं; परन्तु जिन फलों कों मैं जानता हूँ, उन सबमें उत्तम फल ग्रेप्स होते हैं।"

भारतीय बोला :– "पता नहीं, आप किस–किस फल की तारीफ कर रहे है; परन्तु मेरी दृष्टि में केवल अंगूर सर्वोत्तम फल है। खट्टा भी और मीठा भी! पचने में आसान।"

इतने में स्टेशन आ गया। एक खोमचे वाले से सबने एक ही फल खरीद कर खाया! तब पता चला कि हम सब एक ही बात अलग–अलग भाषा में कह रहे थे।

किसी प्रश्न का ठीक उत्तर तभी दिया जा सकता है, जब अनेकान्त का सहारा लिया जाय। प्रभु महावीरने तो इसका व्यापक प्रचार किया ही था; परन्तु उनसे पहले भी बुद्धिमान् व्यक्ति उसका प्रयोग करते रहे हैं।

हनूमान्जी को **"बुद्धिमतां वरेण्य:"** (बुद्धिमानों में श्रेष्ठ) कहा जाता है। उनसे एक बार श्री रामचन्द्रजीने अपने पास बुलाकर पूछा :– "आप कौन हैं ? कृपया अपना परिचय दीजिये।" इस पर हनूमान् बोले :–

देहदृष्टया तु दासोहम् जीवदृष्टया त्वदंशकः ।
आत्मदृष्टया त्वमेवाहम् इति मे निश्चिता मति : ।।

(देह की दृष्टि से मैं आपका दास हूँ। जीव की दृष्टि से मैं आपका अंश हूँ। आत्मा की दृष्टि से मुझमें आपमें कोई अन्तर ही नहीं है। यह मेरी निश्चितत मान्यता है!)

क्या हनूमान्जी के इस अन्तर में अनेकान्त सिद्धान्त की झलक नहीं मिल रही है ?

खोंजने पर ऐसे और भी उदाहरण मिल सकते है; परन्तु वे विरल होंगे।

प्रभु महावीर के द्वारा किये व्यापक प्रचार के फलस्वरूप इसका जैनाचार्यो ने तथा अन्य दार्शनिकों ने खुलकर प्रयोग किया और अपने–अपने द्वन्द मिटाये, मत–भेद हटाये, झगड़े दूर किये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्तमें सन्मति तर्क प्रकरण की एक गाथा उद्धृत करके मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ :-

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा न निव्वडइ ।

तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेन्तवायस्स ॥

(जिसके बिना संसार का व्यवहार भी बिल्कुल चल नहीं सकता, उस त्रिभुवन के एक मात्र गुरु अनेकान्तवाद को नमस्कार हो।)

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४. अभिमान

विनीत महानुभावो!

विनय को नष्ट करने वाले जो दुर्गुण है, उसे अभिमान कहते है :–

माणो विणयनासणो ॥

(मान अर्थात् घमण्ड विनय (नम्रता) का नाशक है।)

अहंकार को नष्ट करने के लिए जैन धर्म में नमस्कार महामन्त्र मौजूद है, जिसका संक्षिप्त रूप है :–

नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यः ॥

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सब साधुओं को नमस्कार हो।

किसीने प्रथमाक्षरों के मेल से इस का संक्षिप्त रूप और भी संक्षिप्त रूप बनाकर प्रस्तुत किया :–

"असिआउसाय नमः"

यह रूप भी जपके लिए जब बड़ा मालूम हुआ, तब संक्षिप्ततम रूप सन्धिके आधार पर बना लिया गया :–

"ओम् नमः ॥"

सिद्धके लिए "अशरीरी" और साधु के लिए "'मुनि' पद के आद्याक्षरों को ग्रहण करके सन्धि की गई। इन परिवर्तित शब्दों के आद्याक्षर लेने पर पाँचों पदोंके आद्याक्षर बने :– अ+अ+आ+उ+म् =ओम् (अ+अ=आ, आ+आ=आ दोनों जगह दीर्घ स्वर सन्धि हुई। फिर आ+उ=ओ यहाँ गुण–स्वर सन्धि हुई। अन्तमें म् जुड़ने पर बना गया ओम्।)

ओम् को नमस्कार करने से अथवा ईश्वर के प्रति कृतज्ञ रहने से अहंकार पर अंकुश बना रहता है।

अहंकार से बचने के ही लिए घोर परिश्रम से अर्जित भौतिक सुखसामग्री के लिए मनुष्य कह देता है :– "यह सब तो ईश्वर की कृपा से मुझे मिला है।"

सच पूछा जाय तो वीतराग देव किसी पर कृपा और किसी पर अकृपा नहीं करते। उन के लिए सभी प्राणी समान हैं। सिद्धशिला पर बैठे हुए वे सबको जानते हैं और देखते हैं; फिर भी भक्त अपने अहंकार पर अकुंश लगाने के लिए ऐसी भाषा का प्रयोग करता है।

जो समझता है– मैं ज्ञानी हूँ– बहुत बड़ा विद्धान् हूँ, उसका विकास नहीं हो सकता। खुराक हजम न हो तो खाने का सन्तोष भले ही हो जाय, शक्ति नहीं बढ़ सकती। शक्ति के लिए पाचन की जरूरत होती है। ज्ञानको भी पचाना पड़ता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बहुत से लोग जिज्ञासु बन कर ज्ञान का प्रदर्शन करते हैं। जहाँ प्रदर्शन होगा, स्वदर्शन नहीं हो सकता। जहाँ दिखावे का प्रयास, वहाँ सत्यानाश! ये 'जिज्ञासु' जो प्रश्न करते हैं, उसके मूल में अहंकार होता है। प्रश्न भी इधर–उधर से सुना हुआ होता है, भीतर से निकला हुआ नहीं। यदि किसीका पेट दुखता हो और वह वैद्य के पूछने पर कहे कि मेरा सिर दुखता है तो उसका इलाज कैसे होगा? इलाज के लिए आपको अपनी ही बीमारी बतानी होगी, पड़ौसी की नहीं। पड़ौसी की बीमारी वैद्य को बताने से न आपका इलाज होगा, न पड़ौसी का ही। कहने का आशय यह है कि यदि आपको अपनी शंका का समाधान पाना है तो गुरूदेव के सामने अपनी शंका ही प्रस्तुत कीजिये।

कुछ लोग गुरूदेव को नीचा दिखाने के लिए अथवा उनके ज्ञान की परीक्षा लेने के लिए ऐसे प्रश्न करते हैं, जिनका उत्तर वे जानते हैं। स्पष्ट ही ऐसे प्रश्न के मूल में अभिमान होता है, जिज्ञासा नहीं। उन्हें उनकी जानकारी के अनुकूल उत्तर मिल भी गया तो भी उनके चेहरे पर प्रसन्नता नहीं दिखाई देगी। इससे विपरीत उनका चेहरा उतर जायगा; क्योंकि गुरूदेव को नीचा दिखाने के प्रयास में वे सफल न हो सके – इस बातका उन्हें दुःख होगा। ऐसे अभिमानी दया के पात्र हैं।

स्वस्थ होने के लिए डाक्टर के सामने जिस प्रकार अपने रोग का वर्णन करते हैं, उसी प्रकार जीवन शुद्धि के लिए गुरुदेव के सामने अपने पापों का–अपनी कमियों का– बुराइयों का वर्णन किया जाना चाहिये। जैसा कि प्रतिक्रमणसूत्र में कहा है :–

"निन्दिय गरहिय गुरुसगासे. . ."

[गुरूदेव के सामने (अपने पापों की) निन्दा–गर्हा करनी चाहिये]

यदि कोई डाक्टर के पास जाकर कहें– "मुझे समय पर भूख लगती है । अजीर्ण तो बिल्कुल नहीं है। मैं फल–दूध आदि सात्त्विक भोजन अधिक मात्रा में करता हूँ। शुद्ध हवा में प्रातः काल भ्रमण करता हूँ। शरीर में स्फूर्त्ति है मन में उमंग है. . ." तो डाक्टर क्या कहेगा ?

वह कहेगा :– "आप यहाँ शायद भूल से आ गये हैं। केवल बीमारों के लिए यह स्थान है। आप तो पूर्ण स्वस्थ हैं। जाइये यहाँ से!"

उसी प्रकार गुरूदेव के निकट जाकर यदि आप कहें :– "मैं सुबह–शाम प्रतिक्रमण करता हूँ। अनेक बार सामायिक करता हूँ। वन्दन–दर्शन–पूजन करता हूँ। तीर्थयात्रा भी वर्ष में दो–तीन बार कर आता हूँ। यथाशक्ति दान करता हूँ। धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय करता हूँ। तपस्या करता हूँ। इन्द्रियों को वश में रखता हूँ। कषायोंसे दूर रहता हूँ. . ." तो गुरूदेव कहेंगे :– "फिर आपको यहाँ आने की क्या आवश्यकता है ? केवल पापियों के लिए अथवा जिज्ञासुओं के लिए यह स्थान है। आप तो बड़े पुण्यात्मा हैं–धर्मात्मा हैं–ज्ञानी हैं। जाइये यहाँ से!"

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आत्मप्रशंसा अपने आपमें एक मानसिक बीमारी है। फिर गुरूदेव के सामने आत्मप्रशंसा करना–अपने सद्गुणों का वर्णन करना तो पागलपन है। उसके मूल में केवल अहंकार है; और कुछ नहीं!

अहंकार छोड़कर जो विनीत बनता है, उसी की उन्नति होती है :–

लघुता से प्रभुता मिले प्रभुता से प्रभु दूर ।
चींटी ले शक्कर चली, हाथी के सिर धूर ।।

कुएँ में बाल्टी सीधी डालोगें तो वह भरेगी नहीं; झुकेगी, तभी भरेगी। उसी प्रकार जो नम्र होगा, उसी में ज्ञान का प्रवेश होगा।

आँधी बड़े–बड़े झाड़ों को उखाड़ फेंकती है; परन्तु दूब को ज्यों का त्यों रहने देती है; क्योंकि वह छोटी होती है–नम्र होती है। गुरु नानकदेव कहके है :–

'नानक' नन्हें व्है रहो, जैसे नन्हीं दूब ।
और घास जल जायगी, दूब खूब की खूब ।।

स्टेशन पर गाड़ी तभी प्रवेश करती है; जब सिग्नल झुका हो। ठीक उसी प्रकार जीवन में ज्ञान तभी प्रवेश करता है, जब गुरुचरणों में मस्तक झुका हो।

अहंकार की दीवार ही स्वरूपके परिचय में बाधक है; इसलिए बिना नमस्कार के उद्धार नहीं होता। नमस्कार यदि श्रद्धापूर्वक किया जाय तो एक भी पर्याप्त है :–

इक्कोवि णमुक्कारो जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स।
संसार सागराओ, तारेइ नरं व नारिं वा।।

(जिनवरों में उत्तम वर्धमान स्वामी को किया गया एक नमस्कार भी स्त्री हो या पुरुष सबका संसार सागर से उद्धार कर देता है।)

अहंकार के विपरीत "नाहम्"का भाव पैदा करने के लिए सोचना चाहिये :–

I am nothing - I have nothing

(मैं कुछ नहीं हूँ। मेरा कुछ नहीं है।)

'नाहम्' के बाद "कोऽहम्" (मैं कोन हूँ ?) यह जिज्ञासा और फिर "सोऽहम्" [मैं वही (परमात्मस्वरूप) हूं।] यह समाधान होगा। सुनने में यह बात सरल लगती है; परन्तु इसकी साधना कठिन है। महर्षि अरविन्द घोष चालीस वर्ष की लम्बी अवधि तक योग साधना द्वारा परमात्मतत्त्व की खोज करते रहे; फिर भी अन्त में उनके मुँह से यही उद्‌गार प्रकट हुए कि अब तक मेरी खोज अधूरी है। यह जानते हुए भी यदि कोई अपने ज्ञान का अहंकार करता है तो उससे अच्छा पागल कहाँ मिलेगा ?

हिन्दी में कहावत हैं :– "घमण्डी का सिर नीचा!" इंग्लिश में भी :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

Pride goes before it falls

ऐसा कहा गया है। घमण्डी का अन्त में पतन होता है।

विवेक ही वास्तविक आँख है, जिससे हमें स्वपरभावोंका बोध होता है; परन्तु अभिमान से वह आँख बन्द हो जाती है :-

लुप्यते मानतः पुँसाम् विवेकामललोचनम्

(अभिमान से मनुष्यों की विवेकरूपी निर्मल आँख बन्द हो जाती है!)

स्थायी तत्त्व पर अभिमान हो तो बात दूसरी है; परन्तु लोग जन (परिवार, मित्र आदि), धन और यौवन का अभिमान करते हैं, जो अस्थायी है – नश्वर हैं। शंकराचार्य कहते हैं :-

मा कुरु धन जन यौवन गर्वम्।
हरति निभेषात्कालः सर्वम्॥
मायामयमिदमखिलं हित्वा।
ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा॥

[धन, जन और यौवन का गर्व मत कर। पलभर में काल इन सबका अपहरण कर लेगा। इस सम्पूर्ण माया (अज्ञान) से युक्त संसार का त्याग करके मोक्ष के स्वरूप को समझने के बाद उस में प्रवेश कर]

युद्ध का हृदय के भीतर छिपे अहंकार से जन्म होता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रणेता हिटलर की मृत्यु किस प्रकार हुई, वह सुनकर आपको भी उस पर दया आएगी। अत्यन्त करूणाजनक अन्त हुआ उसका। अपने ही हाथों से गोली मार लेनी पड़ी उसे! अन्तिम साँस छोड़ने से पहले अपने विश्वास पात्र नौकर से कहा :- "प्राण छूटने के बाद मेरी लाश को पेट्रोल डाल कर तत्काल भस्म कर देना!" दुनिया को जीतने वाला अभिमानी इतनी बुरी हालत में अपने ही हाथों मरा!

अभिमान जीवन का फुल स्टॉप (पूर्ण विराम) है। उस से प्रगति रूक जाती है। प्रगति रोक कर– जीवन को हानि पहुँचा कर अभिमान भी चला जाता है। लक्कड़ की अक्कड़ कब तक टिकेगी ? जब तक आँधी का आक्रमण न हो जाय, तभी तक!

अहम् (मैं) का अर्थ बताने के लिए इंग्लिश में आई (I) शब्द है। यह वाक्य में किसी भी स्थान पर रहे, केपीटल ही लिखा जाता है। उसी प्रकार अहंकारी व्यक्ति कहीं भी चला जाये – कहीं भी रहे, उसका मस्तक ऊँचा रहता है। वह सोचता है– "मैं चौड़ा हूँ, बाजार सँकड़ा है– मैं ऊँचा हूँ, दुनिया नीची है– मैं लम्बा हूँ, बाकी सब लोग ठिगने है।"

एक दिन की बात है। शरीर के सारे अंग अहंकार से फूल कर अपने को सबसे बड़ा बताने लगे :-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पाँव :– "हम चलते है; दौड़ते हैं, फुटबाल खेलते हैं, सारे शरीर के आधारस्तम्भ हैं; इसलिए सबसे बड़े हैं।"

पेट :– "भोजन का पाचन करके शरीरके समस्त अंगों का पोषण मैं ही करता हूँ। मेरे ही लिए लोग श्रम करते हैं। यदि मैं न होता तो लोग महान् आलसी बन जाते।"

हाथ :– "सारे काम हम करते है* मित्रों का आलिंगन हमारे बिना नहीं हो सकता। नमस्कार भी हमारी सहायता से ही किया जा सकता है; इसलिए हम से बड़ा कोई नहीं है।"

मुँह :– "मैं दो महत्त्वपूर्ण कार्य करता हूँ– खाना पीना और बोलना। जीभ ही विविध फलों एवं मिटाइयों का स्वाद लेती है। दाँत चबाते हैं और जीभ की रक्षा करते है। बोलने के अतिरिक्त गाने का काम भी मैं करके लोगों को मन्त्रमुग्ध कर देता हूँ।"

नाक :– "चेहरे की शोभा मेरे कारण है। यदि मैं न रहूँ तो लोग नकटे कहलायें। सुगन्ध और दुर्गन्ध की जानकारी मुझ से होती हैं। यदि मैं साँस लेना बन्द कर दूँ तो शरीर मुर्दा बन जाय।"

आँखे :– "शरीर को मार्गदर्शन तो हम ही करती हैं।. सुन्दर दृश्य, फिल्म, टी.वी., चित्र, मित्र आदि दिखाकर लोगों का हम मनोरंजन करती हैं। हमारे अभाव में लोग अन्धे बन जाएँगे– दूसरों की दया पर पलने वाले दयनीय प्राणी बन जाएँगे; इसलिए हमारा महत्त्व सब से अधिक है।"

कान :– "हमारे अभाव में लोंग बहरे कहलायेंगे। संगीत, उपदेश, भाषण और कहानियाँ हमारे ही द्वारा सुनी जाती हैं; इसीलिए स्वर्णालंकारों से हमें सजाया जाता है।"

मस्तिष्क :– "तुम सब मेरे ही निर्देश से अपने–अपने कार्य सम्पन्न करते हो। तुम्हारे कार्यों से होनेवाले सुख–दुःख का अनुभव मैं करता हूँ। यदि मैं बीमार हो जाऊँ तो लोग पागल कहलायें। मेरा महत्त्व समझकर ही कुदरत ने शरीर में सबसे ऊँचे स्थान पर मुझे स्थापित किया है।"

अन्तमें शेठ आत्माराम ने नोटिस भेज दिया कि तुम सब अपना–अपना कार्य करते रहो। यदि तुमने मेरा आदेश नहीं माना तो मैं अन्यत्र चला जाऊँगा। यह मेरा अल्टीमेटम है।

शरीर के अंगोने तत्काल इमर्जैन्सी मीटिंग (आपातकालीन बैठक) बुलाई, नोटिस की भाषा समझाने की कोशिश की गई। यदि ये शेठ आत्माराम चले गये तो हमारा क्या मूल्य ? हम को तो कोई घर में भी रखना पसंद नहीं करेगा। श्मशान में ले जाकर हमें जला दिया जायगा। आखिर सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित करके शेठ आत्माराम के पास भेज दिया गया कि आज से हम घमण्ड नहीं करेंगे और आपकी आज्ञा के अनुसार मिल जुलकर रहेंगे।

शेठ आत्माराम उस प्रस्ताव से सन्तुष्ट हो गये। तब से शरीर के सारे अंग मिल जुलकर रहते हैं। एक–दूसरे की सहायता करते हैं। पाँव में काँटा लग जाय तो आँख उसे दिखायगी–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हाथ सुई की सहायता से उसे निकालने का प्रयत्न करेगा। काँटा निकलने पर सारे अंग कहेंगे कि बहुत अच्छा हुआ–पाँव की खुशी हमारी ही खुशी है।

अहंकार एक दुर्गुण है; फिर भी कभी–कभी वह ज्ञान का कारण बन जाता है। जैसा कि कहा गया है :–

अहंकारोऽपि बोधाय ॥

आचार्य हरिभद्र सूरि की जीवनी इस बात को प्रमाणित करती है।

चित्तौड़ गढ़ में हरिभद्र नामक एक राजपुरोहित था। वह चौदह विद्याओंमें निपुण समस्त शास्त्रोंका विशेषज्ञ विद्वान था। उसने अहंकार का शिकार होकर यह प्रतिज्ञा कर डाली कि यदि मैं किसी के द्वारा कही गई कोई बात नहीं समझ पाया तो उसका शिष्य बन जाऊँगा। एक दिन नगर में भ्रमण करते हुए उसने याकिनी नामक साध्वी के मुँह से यह गाथा सुनी :–

चक्किदुगं हरिपणगं पणगं चक्कीण केसवो चक्की।
केसव चक्की केसव, दुचक्की अ केसवो चक्की ॥

[दो चक्री (चक्रवर्त्ती), पाँच हरि (वासुदेव), पाँच चक्री, एक केशव (वासुदेव), एक चक्री, एक केशव, एक चक्री, एक केशव, दो चक्री, एक केशव और एक चक्री– इस प्रकार वर्तमान चौवीसी में क्रमशः उत्पन्न होने वाले कुल बारह चक्रवर्त्ती और नौ वासुदेव हो चुके हैं]

साध्वी याकिनी कंठस्थ गाथाओं की पुनरावृत्ति कर रही थी। हरिभद्र को इस गाथा का कुछ भी अर्थ समझ में नहीं आ सका। हरि और केशव तो फिर भी ठीक हैं, पर यह "चक्की" क्या है ? सो भी एक ही पद्य में छह बार ?

चकित होकर हरिभद्र ने निकट जाते ही व्यंग्य किया :–

"चक्रवाकीव किं चकचकायते मातः ?"

हे माता! चकवी के समान आप चकचक क्यों कर रही हैं ?

याकिनी साध्वीने उत्तर दिया :–

"नूतन एव चकचकायतेहन्तु प्रत्ना !"

[जो नया होता है, वही चकचक करता है (चमकता है) मैं तो पुरानी (वृद्धा) हूँ।]

हरिभद्र ने इस उत्तर से ही अपने को पराजित महसूस करते हुए प्रणाम करके गाथा का अर्थ पूछा।

याकिनी महत्तरा ने कहा– "आप इसका अर्थ मेरे गुरूदेव से समझ लेंगे तो अधिक अच्छा रहेगा।"

"कहाँ हैं गुरुदेव ? मुझे जल्दी से उनके पास ले चलिये।"

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हरिभद्र के इस वाक्य को सुनते ही साध्वी चल पड़ी। आगे–आगे साध्वी और पीछे–पीछे हारे हुए खिलाड़ी की तरह हरिभद्र! उपाश्रय में पहुँचके ही साध्वी ने गुरुदेव को वन्दन किया। हरिभद्र समझ गये कि जिन्हें वन्दन किया जा रहा है, वे ही गुरुदेव हैं।

जिज्ञासा व्यक्त करने पर उन्होंने विस्तार से गाथा का अर्थ समझाया। अर्थ समझकर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उन्होंने शिष्यत्व अंगीकार किया। दीक्षा ले ली। क्रमशः जैनशास्त्रों का गुरूदेव से अध्ययन किया। विशिष्ट बुद्धिमत्ता के कारण वे बहुत जल्दी जैनशास्त्रज्ञ बन गये। सुयोग्य समझकर गुरुदेव ने उन्हें आचार्यपद पर प्रतिष्ठित किया। वे जैनाचार्य श्री हरिभद्रसूरि के नाम से विख्यात हुए। उन्होंने एक हजार चार सौ चवालीस जैनग्रन्थों की रचना की। आवश्यक निर्युक्ति की वृत्ति (संस्कृत टीका) लिखते समय **'चक्किदुगं हरिपणगं'** इस गाथा का विस्तार के साथ भावविमोर होकर अर्थ लिखा; क्योंकि इसी गाथाने उनके जीवन को परिवर्तित किया था। गाथा भी सबसे पहले साध्वी याकिनी महत्तरा से सुनने में आई थी; इसलिए उन्हें मातृवत् पूज्य मानते रहे। अपने को जीवन–भर उनका पुत्र माना। प्रत्येक ग्रन्थ में अपने नाम से पूर्व **"याकिनीमहत्तरासूनुः हरिभद्रसूरिः"** ऐसा लिखकर उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त की:–

विद्या ददाति विनयम् विनयाद् याति पात्रताम् ॥

[विद्या से विनय और विनय से पात्रता (योग्यता) प्राप्त होती है।]

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः॥

(ज्यों–ज्यों फल निकलते हैं, त्यों–त्यों वृक्ष झुकते जाते है।)

इसी प्रकार ज्यों–ज्यों ज्ञानादि सद्गुण प्राप्त होते हैं, त्यों–त्यों सज्जन पुरुष नम्र होते जाते हैं।

रामने लक्ष्मण को रावण के पास राजनीति की शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा। रावण उस समय रणक्षेत्र में घायल होकर मृत्युकी प्रतीक्षा कर रहा था। वह लेटा हुआ था। लक्ष्मण ने कहा :– "मैं राम की आज्ञासे आपके पास शिक्षा लेने आया हूँ। मुझें राजनीति की शिक्षा दीजिये।"

रावण ने कहा :– "मैं अपात्र को शिक्षा नहीं देता!"

लक्ष्मण लौट गये। राम के पूछने पर बोले :– "भाई साहब! आपने वहाँ मुझे शिक्षा लेने भेजा या अपमानित करने के लिए ?"

राम :– "क्यो ? क्या कहा उन्होंने ?"

लक्ष्मण :– "मुझ से कहा कि मैं अपात्र को शिक्षा नहीं देता!"

राम :– "तुम बैठे कहाँ थे ?"

लक्ष्मण :– "मैं उस घायल रावण के मस्तक के पास बैठा था, जिससे उसके मुँह से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निकला उपदेश सीधा मेरे कानों में पहुँचे।''

राम :– ''परन्तु इसी व्यवहार से तुम अपात्र प्रमाणित हुए। शिक्षार्थीमें विनय होना चाहिये। फिर से जाओं और उनके चरणों के पास बैठो। अपने अशिष्ट व्यवहार के लिए क्षमा माँगो और उनके चरणों में मस्तक झुकाकर शिक्षा की प्रार्थना करो।''

आज्ञाकारी लक्ष्मण ने वैसा ही किया और रावणने भी प्रसन्नतापूर्वक उसे राजनीति की अनुभवपूर्ण शिक्षा दी। किसी इंग्लिश विचारकने लिखा है :–

Be humble if you would attain to wisdom. Be humbler still when wisdom you have mastered.

(यदि तुम ज्ञान पाना चाहते हो तो नम्र बनो और जब ज्ञान प्राप्त हो जाय तो और भी अधिक नम्र बन जाओ)

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५. अक्रोध

शान्तस्वभावी भव्यात्माओ!

शान्ति ही आत्मा का स्वभाव है, क्रोध नहीं। जल जिस प्रकार शीतल होता है, आत्मा भी वैसी ही शीतल है। आग के सम्पर्क से जल गरम भले हो जाय; परन्तु धीरे-धीरे वह फिर से ठंडा हो जाता है। उसी प्रकार बाहर से निमित्त पाकर आत्मा क्रुद्ध भले ही हो जाय; परन्तु धीरे-धीरे फिर शान्त हो जाती है। क्रोध विभाव है, स्वभाव नहीं। विभाव अचिरस्थायी होता है, स्वभाव चिरस्थायी।

क्रोध विनय और विवेक को खा जाता है, समझदारी को बाहर निकाल कर मन के द्वार पर चटखनी लगा देता है, जिससे कोई भी सद्गुण भीतर न आ सके।

क्रोध करने का अर्थ है- दूसरे के अपराधका बदला स्वयँ अपने से लेना; क्योंकि क्रोध से क्रोधी का खून जलता है- स्वास्थ्य नष्ट होता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि साढे नौ घंटे तक शारीरिक श्रम करने से जितनी शक्ति क्षीण होती है उतनी केवल पन्द्रह मिनिट तक क्रोध करने से नष्ट हो जाती है।

क्रोध काँटे से अधिक भयंकर होता है; क्योंकि काँटां जिसे चुभता है, उसी को कष्ट देता है; चुभाने वाले को नहीं; परन्तु क्रोध दोनों को कष्ट देता है - क्रोधी को भी और जिस पर क्रोध किया जाता है उसे भी!

क्रोध को समुद्र की तरह बहरा माना गया है; क्योंकि वह किसी की सलाह मानता ही नहीं- किसी का उपदेश सुनता ही नहीं; बल्कि उपदेश देने से क्रोधी का क्रोध बढ़ जाता है:-

उपदेशो हि मूर्खाणाम् प्रकोपाय न शान्तये।
पयःपानं भुजङ्गानाम् केवलं विषवर्धनम् ॥

[मूर्खों को उपदेश देने से उनका गुस्सा बढ़ता है, शान्त नही होता। जैसे साँपों को दूध पिलाने से उन का जहर बढ़ता ही है (घटता नहीं)]

क्रोधी को आग की तरह उतावला कहा गया है; क्योंकि क्रोधी बिना सोचे-समझे दूसरों को मनमाना कष्ट जल्दी से जल्दी दे डालता है।

क्रोध आता क्यों है ? अहंकार के कारण। जो जितना अहंकारी होगा, उसे उतनी ही जल्दी गुस्सा आ जायगा; क्योंकि किसी कारण जब उसके अहंकार को चोट लगती है, तब वह असह्य हो जाती है और जब तक अपने को अपमानित करनेवाले से वह बदला नहीं ले लेता, तब तक शान्त नहीं हो सकता- चुप नहीं रह सकता- बदला लेने की कोई-न-कोई योजना सोचता ही रहता है। क्रोधी जिससे बदला लेता है, वह भी बदला लिये बिना नहीं रहता। इस

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकार परस्पर बदला लेने की परम्परा चल निकलती है, जो पीढियों तक चलती रहती है।

जहाँ क्रोध है, वहाँ प्रेम नहीं रह सकता। प्रभु महावीर ने कहा था :–

कोहो पीइं पणासेइ ॥

(क्रोध प्रीति को नष्ट कर देता है।)

क्रोधी को मरने के बाद भी कोई सद्गति नहीं मिलती :–

अहो बयइ कोहेणं ॥

[क्रोध से प्राणी अधोगति (दूर्गति) प्राप्त करता है।]

किसी विचारकने कहा है :–

"क्रोध मूर्खता से शुरू होता है और पछतावे पर खत्म"

जो क्रोध करता है, वह मूर्ख ही है– चाहे उसने कितने भी ग्रन्थ पढ़ लिये हों। क्रोध का जब नशा उतर जाता है, तब क्रोधी पछताता हैं; परन्तु क्रोध की दशामें जो काम बिगड़ गया, वह सुधर नहीं सकता। उसका पछताना व्यर्थ जाता है।

एक कविने बुखारसे क्रोध को कई गुना हानिकर बताते हुए अपने संस्कृत श्लोक में कहा है :–

हरत्येकदिनेनैव ज्वरं षाण्मासिकं बलम्
क्रोधेन तु क्षणेनैव कोटि पूर्वार्जितं तपः ॥

(बुखार एक ही दिनमें छह महीनों तक अर्जित शारीरिक शक्ति को नष्ट कर देता है; परन्तु क्रोध तो एक ही क्षण में करोड़ो पूर्व के अर्जित तपोंको नष्ट कर देता है।)

"क्रोध आ गया" – ऐसा हम प्रायः कहा करते हैं; परन्तु सन्त विनोबा भावे के अनुसार क्रोध भीतर ही रहता है और निमित्त पाकर प्रकट होता है। सरोवर के स्वच्छ जल में पत्थर फेंकने पर गन्दगी ऊपर आ जाती है; क्योंकि वह पहलेसे ही वहाँ मौजूद रहती है। इससे विपरीत शहरोंमें जो तरणताल बने हैं, उनमे पत्थर क्या ? चट्टान डालनेपर भी भीतर से कोई गन्दगी प्रकट नहीं होती; क्योंकि वहाँ गन्दगी है ही नहीं। सच्चे साधु–सन्तोंका ह्रदय भी कषायोंसे रहित होता है; इसलिए बाहरसे कैसा भी निमित्त मिले (कोई गाली दे या अपमान करे), उन्हें क्रोध आता ही नहीं।

एक कविने बहुत ही अनोखे ढंग से क्रोध छोड़ने की प्रेरणा दी है। :–

"अपकारिषु कोपश्चेत् कोपे कोपः कथं न ते ?"

[यदि तू अपकारी पुरुषोंपर क्रोध करना चाहता है तो (सबसे बड़ा अपकारी स्वयं क्रोध ही है; इसलिए) अपने क्रोध पर ही क्रोध क्यों नहीं किया करता ?]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्रोधपर ही क्रोध करनेका अर्थ है – उसे मारना

स्थानाङ्ग–सूत्र में क्रोध की उत्पत्ति क्यों होती है ? इस पर विचार किया गया है:-

चउहिं ठाणे हिं कोहुप्पत्ति सिया
तंज हा–खेत्तं पडुच्च, वत्थुं पडुच्च,
सरीरं पडुच्च, उवहिं पडुच्च ॥

[चार कारणों से क्रोध की उत्पत्ति होती है– (१) क्षेत्र (२) वस्तु अर्थात् घर, मकान, दुकान, बिल्डिग आदि (३) शरीर और (४) उपधि अर्थात् उपकरण या उपयोगी वस्तुओं के कारण]

आज के विचारकोंकी दृष्टिमें क्रोध की उत्पत्ति के पाँच कारण हैं :–

(१) **दुर्वचन–** कोई कठोर वचन कह दे या गाली दे तो क्रोध आ जाता है।

(२) **स्वार्थ में बाधा–** अपनी स्वाथपूर्ति में जो व्यक्ति बाधा डालता है, उस पर क्रोध आता है।

(३) **अनुचित व्यवहार–** यदि कोई अपमानजनक व्यवहार करे तो अहं को चोट लगने से क्रोध उमड़ पड़ता है।

(४) **भ्रम–** गलतफहमी के कारण जो अयथार्थ है, उसे यथार्थ मान लेने के कारण (जैसे पत्नी को किसी पुरुष से बात करती हुई देख लेने पर उसके चरित्र पर आशंका हो जाना या पतिको किसी स्त्री से बात करते देख कर उसके चरित्र पर शंका करना आदि।)

(५) **विचार एवं रूचि में भेद–** पिता और पुत्र, सास और बहू, भाई और भाई आदि में मत–भेद तथा रूचिभेद के कारण परस्पर भीषण क्रोध लहराने लगता है।

क्रोध की स्थिति भी पात्रके अनुसार भिन्न–भिन्न होती है:–

उत्तमस्य क्षणं कोपम् मध्यमस्य प्रहरद्वयम् ।
अधमस्य त्वहोरात्रम् नीचस्यामरणं स्मृतम् ॥

[उत्तम पुरूषका क्रोध क्षणिक होता है– क्षणभर में चला जाता है। मध्यम श्रेणी के पुरुष में क्रोध दो प्रहर (आठ प्रहर एक दिन रातमें होते है; इसलिए दो प्रहर = छह घंटे) तक रहता है। अधम श्रेणी के पुरुषमें अहोरात्र पर्यन्त (चौवीस घंटो तक) क्रोध टिका रहता है, वे नीच पुरुष होते हैं।]

जो क्रोध करता है, उसमें विचार नहीं होता और जिसमें विचार होता है, उसमें क्रोध नहीं होता ।

महात्मा कन्फ्यूशियसने विचार पर जोर देते हुए कहा था :–

"जब क्रोध उठे, उसके नतीजोंपर विचार करने बैठ जाओ!"

इससे क्रोध नष्ट हो जायगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हजरत मुहम्मद पैगम्बरने भी क्रोधसे बचनेका एक उपाय बताते हुए कहा है :–

"यदि गुस्सा आ रहा हो तो खड़े मत रहो, बैठ जाओ! और यदि तेज गुस्सा हो तो लेट जाओ!"

क्रोध का सबसे बड़ा इलाज विलम्ब है। इसके लिए कहा गया है :–

"यदि गुस्सा आ जाय तो कुछ भी बोलने से पहले दस तक गिनो और यदि तेज गुस्सा हो तो १ से १०० तक गिनती करो।"

मन अन्यत्र लग जाने पर गुस्सा शान्त हो जायगा।

महात्मा ईसाने भी कहा है :– "क्रोध में विलम्ब करना विवेक है और शीघ्रता करना मूर्खता है!"

क्रोध करते समय न भोजन भाता है, न पचता हैं, इसलिए बिल्कुल शान्तचित्त होने पर ही भोजन करने की सलाह दी जाती है।

माताओं को डाक्टर कहा करते हैं कि क्रोध में शिशुओं को स्तन पान न करायें; क्योंकि क्रोध से दूध विषैला हो जाता है– खून जहरीला हो जाता है।

एक स्त्रीने पड़ौसन से झगड़ते–झगड़ते शिशुको स्तनपान कराया और थोड़ी ही देर बाद वह शिशु चल बसा।

एक डाक्टर ने क्रुद्ध मनुष्यके खून का इंजेक्शन खरगोश के शरीर में लगाया और देखा कि थोड़ी ही देर बाद वह तड़प–तड़प कर मर गया।

इन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि दूध और खून में क्रोध से जहर उत्पन्न होने लगता है– हो जाता है; अतः यथाशक्ति क्रोध से दूर रहने में ही सबका कल्याण है।

एक पंडित स्नान करके घर लौट रहा था। मार्ग में झाड़ू लगाने वाले एक मेहतर के शरीर से उसका स्पर्श हो गया। क्रुद्ध होकर पंडितने कहा :– अरे बेवकूफ! अन्धे! तुझे सूझता नहीं कि मैं कौन हूँ और कहाँ से आ रहा हूँ ? मैं ब्राह्मण हूँ और गंगा स्नान करके आ रहा हूँ। तूने मुझे छूकर अपवित्र कर दिया! अब मुझे दुबारा वहाँ जाकर स्नान करना पड़ेगा!

मेहतर ने कहा :– "और मुझे भी गंगास्नान करना पड़ेगा!"

पंडित :– "तुझे क्यों करना पड़ेगा ?"

मेहतर :– "क्योंकि महाचाण्डाल के स्पर्श से आज मेरा शरीर बहुत अपवित्र हो गया है!"

पंडित :– "क्या बात कर रहे हो ? मैं तो ब्राह्मण हूँ ब्राह्मण!"

मेहतर :– "शास्त्रों में क्रोध को महाचाण्डाल कहा गया है। गुण से गुणी सदा अभिन्न होता है। आप मुझपर क्रोध करके महाचाण्डाल बन गये हैं और आपके स्पर्श से मेरा शरीर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भी अपवित्र बन चुका हैं; इसलिए अब तो गंगास्नानसे ही इसकी शुद्धि हो सकेगी।''

पंडितने अपनी भूल स्वीकार की और बात ही बातमें आँखें खोलने के लिए उस मेहतर का आभार माना।

उवसमेण हणे कोहम् ॥

(क्रोध को उपशम से मारना चाहिये।)

महात्मा बुद्ध का एक क्षत्रियने अपमान किया, गालियाँ दीं; किन्तु बुद्ध एकदम शान्त रहे। क्षत्रिय थक गया। उसे आश्चर्य हुआ कि इतनी गालियों का महात्माजी पर कोई असर क्यों नहीं हुआ। कारण बहुत सोचा। समझ में न आने पर महात्माजी से ही पूछा। वे बोले– ''भाई ! यदि कोई चीज तुम मुझें भेंट देना चाहो और मैं उसे न लूँ तो वह चीज किसके पास रहेगी ?''

क्षत्रिय :– ''मेरे ही पास रहेगी।''

महात्माजी :– ''इसी प्रकार तुमने मुझे गालियाँ दीं और मैंने नहीं ली तो वे भी तुम्हारे पास रहेंगी। मैं यदि गालियाँ स्वीकार करता तो मुझपर असर होता!''

इस उत्तर से प्रभावित क्षत्रिय ने प्रणाम करके महात्माजी से बिदा ली।

नीतिकारोंने ठीक ही कहा है :–

अतृणे पतितो वन्हिः स्वयमेवोपशाम्यति ॥

(घासरहित स्थल पर गिरा हुआ अंगारा स्वयं ही बुझ जाता है)

कल्पना कीजिये, एक आदमी बहुत गुस्से में टेलीफोन पर किसीको गालियाँ दे रहा हो और उधर से कोई बोले **Wrong number** ! तो क्या होगा ? उसका सारा गुस्सा एक दम शून्य डिग्री पर आ जायगा ? सुनने वाला यदि न हो तो गालियाँ सुनाने वाला किसे और क्यों सुनाएगा ?

संन्यास लेने के बाद महाराज भर्तृहरि को जब लोग गालियाँ देने लगे तो जरा भी गुस्सा न करते हुए उन्होंने उनके प्रति अपने महत्त्वपूर्ण उद्‌गार इन शब्दों में प्रकट किये:–

ददतु ददतु गालिं गालिमन्तो भवन्तः
वयमपि तदभावाद् गालिदानेसमर्थाः
जगति विदितमेतद् दीयते विद्यामानम्
नहि शशक विषार्ण कोऽपिकस्मै ददाति ॥

(आपके पास गालियाँ हैं; इसलिए आप गालियाँ दीजिये–दीजिये। हमारे पास गालियाँ नहीं हैं; इसलिए हम गालियाँ देनेमें असमर्थ हैं; संसारमें यह सब लोग जानते हैं कि जो पास में होता है, वही दिया जा सकता है। खरगोश का सींग कोई किसीको नहीं दे सकता।)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सन्त एकनाथ काशीयात्रा के समय गंगास्नान करके घाट की सीढियाँ चढ़ रहे थे कि ऊपर से एक युवक ने उन पर थूँक दिया। सन्त फिर सीढ़ियाँ उत्तर कर दुबारा नहायें। नहा कर ज्यों ही ऊपर चढ़ने लगे, युवक ने फिर से थूँका। सन्तने बिना यह देखे कि कौन थूँक रहा है, चुपचाप सीढियाँ उत्तर कर तीसरी बार स्नान किया। इसी क्रम से उन्हें कुल पचास बार नहाना पड़ा; परन्तु थूँकने वाले के प्रति मनमें जरा भी क्रोध पैदा नहीं हुआ।

आखिर युवक थक गया। उसकी आँखोंमें पश्चात्ताप के आँसू निकल पड़े कि मैंने व्यर्थ ही एक सन्तको सताया। वह सन्त के चरणों में गिर पड़ा और बार–बार क्षमा मांगने लगा। सन्त ने युवक को प्रेम से उठाया– अपनी छातीसे लगाया और कहा :– "भाई! क्षमा कैसी ? तुमने तो मुझपर महान उपकार किया है। तुम्हारी कृपासे ही तो आज मुझे पचास बार पवित्र गंगा मैया की गोदमें बैठने का अवसर मिला। तुम धन्यवाद के पात्र हो।"

युवक सन्त एकनाथ का सदाके लिए भक्त बन गया। सहिष्णुता ही मनुष्यको महान बनाती है। "दहींबड़ा" तो देखा ही होगा आपने। एक कविने भी उसे देखा और उसके बड़प्पन का रहस्य पूछा कि आपके नामके साथ "बड़ा" जुड़ा है, सो बताइये कि आप बड़े कैसे बने ?

इस पर बड़ेने जो उत्तर दिया, उसे समझकर कविने अपने शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त किया :–

पहले हम मर्द मर्द से नार कहाये
करके गंगास्नान मैल सब दूर कराये
कर पत्थर से युद्ध तेल में गये डुबाये
निकल गये जब पार तभी हम बड़े कहाये

उड़द या मूँग पुँल्लिग है। उसकी दाल स्त्रीलिंग है; इसलिए वह कहता है कि मैं पुरुष से स्त्री बना। दाल पानीमें गलाई जाती है। फिर पत्थर पर पीसी जाती है; इसलिए वह कहता है कि गंगास्नान करके पत्थर से युद्ध किया। फिर गर्म तेलमें उसे तला जाता है। इतनी सारी तपस्याएँ करने के बाद उसे "बड़ा" कहलाने का सौभाग्य मिलता है।

इससे विपरीत जिसमें सहिष्णुता नहीं होती, उसे बात–बात पर गुस्सा आ जाता है। गुस्से से कभी–कभी इतनी अधिक हानि हो जाती है कि उसकी पूर्त्ति जीवन भर नहीं हो पाती।

छह वर्ष की एक पुत्री के साथ माँ किसी बाजार से गुजर रही थी। रास्तेमें एक गुब्बारे वाला खड़ा था। पुत्री गुब्बारा दिलाने के लिए माँ से कहने लगी। गुब्बारा दस पैसे में मिलता था। माँ के पास दस रुपयेका बँधा नोट था। गुब्बारे वालेसे दस रू. के एकैक रुपए मिलने की संभावना नहीं थी। माँ के पास दस पैसेका सिक्का एक भी नहीं था। माँने कहा:– "अभी रेचकी नहीं हैं बेटी! बादमें गुब्बारा दिला देंगे।"

माँ की मजबूरी बेटी क्या समझे ? उसे तो रंग–बिरंगे गुब्बारे आकर्षित कर रहे थे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वह समझी कि माँ पैसे बचाने के लिए बहाना बना रही है; अतः वह बार-बार कहने लगी और जिद करने लगी। माँ को गुस्सा आ गया। उसने उठाकर एक थप्पड़ जमा दी। लड़की सड़क पर गिर पड़ी और उधर से आती हुई कार से कुचल जाने के कारण सदा के लिए लँगड़ी हो गई!

पुलिस का इशारा पाते ही आप कार रोक देते हैं; परन्तु प्रभु महावीर का उपदेशः-

"नो कुज्झे ।।"

(गुस्सा मत करो।)

-सूत्रकृतांगसूत्र

सुनकर भी ऑप गुस्सा नहीं रोक सकते ! क्या आप प्रभु से पुलिस के आदमी को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं ? सोचिये।

विवेकी क्रोधपर किसी तरह काबू पाते हैं ? इसका एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ।

अमेरिका की बात है। वहाँ एक प्रोफेसर रहते थे। उनका स्वभाव बहुत चिड़चिड़ा था। बात-बात पर उन्हें गुस्सा आ जाता था। अपनी इस आदत से वे बहुत परेशान थे। क्रोध के विरोध में वे भाषण दे सकते थे; परन्तु स्वयं अपने क्रोध से पिण्ड नहीं छुड़ा पा रहे थे।

एक मित्र से उन्होंने अपनी इस परेशानीका जिक्र किया और कहा कि क्रोधसे बचनेका कोई उपाय बतायें। मित्र ने सुझाया कि सौ कोरे लिफाफों का एक पैकेट खरीदकर अपने नौकर को दे दीजिये। उसे कह दीजिये कि जब भी मुझे गुस्सा आ रहा हो, तभी इनमें से एक लिफाफा लाकर मेरे सामने रख देना। बस, इससे आपकी आदत छूट जायगी।

प्रोफेसरने ऐसा ही किया। क्रोध आते ही कोरा लिफाफा सामने आ जाता और उनकी विचार धारा मुड़ जाती। वे क्रोध पर ही विचार करने लग जाते। मैं क्रोधी हूँ-क्रोध कर रहा हूँ-क्रोध एक दुर्गुण है- मैं शिक्षक हूँ-दूसरोंको क्रोध से बचने की शिक्षा देता हूँ; इसलिए मुझे स्वयं भी इस दुर्गुण से दूर रहना है. . . . ऐसा विचार चलते रहने पर धीरे-धीरे क्रोध हट जाता। वे शान्त स्थिर और पूर्ववत् प्रसन्नचित बन जाते।

पहले दिन में दस बार गुस्सा आता था; परन्तु अब उस संख्यामें कमी होने लगी। दिन-भरमें एक बार ही गुस्सा आने लगा और फिर वह भी समाप्त हो गया। पचास-साठ लिफाफों में ही उनकी आदत सुधर गई और वे परम शान्तस्वभावी बन गये।

क्या लिफापों में कोई जादू था ? नहीं। केवल विचारों को जगाने की वह एक प्रक्रिया थी। यह सारा चमत्कार विचारोंका था। जो विचार करताहै, वह विकार का शिकार नहीं बन सकता।

क्रोध किसी निमित्त से तो आता ही है; परन्तु जो क्रोधी स्वभाव के होते हैं, उन्हें बिना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किसी निमित्त के भी क्रोध आता रहता है। इससे विपरीत सन्त एक नाथ के उदाहरण से हमने जाना कि कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिन्हें हजार निमित्त मिल जायँ तो भी वे गुस्सा नहीं करते– परम शान्त बने रहते हैं; परन्तु ऐसे साधक सन्त करोड़ो में दो–चार मिलते हैं :–

नाकारणरुषां संख्या संख्याताः कारणक्रुधः।
कारणेपि न क्रुध्यन्ति ये ते जगति पञ्चषाः।।

[अकारण क्रोधी असंख्य हैं (उनकी गणना नहीं की जा सकती) कारण से क्रोध करने वाले संख्यात हैं (उनकी गिनती हो सकती है।); परन्तु कारण उपस्थित होने पर भी जिन्हें क्रोंध नहीं आता–ऐसे पुरुष संसार में पाँच या छह हैं।]

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

६. अहिंसा

अहिंसा प्रेमियो!

धर्मका सार यदि तीन अक्षरों में प्रकट करना हो तो हम कहेंगे –अहिंसा। जैन धर्म में उसे भगवती कहा गया है :–

एसा सा भगवई अहिंसा जा सा
भीयाणं पिव सरणं, पक्खीणंपिव गमणं,
तिसियाणंपिव सलिलं, खुहियाणंपिव
असणं, समुद्दमज्झे व पोतवहणं, चउप्पयाणं
व आसयपदं, दुहट्टियाणं व ओसहिबलं,
अडवीमज्झे व सत्यगमणं ए त्तो विसिट्ठ–
तरिया अहिंसा तसथावरसव्वभूय खेमंकरी।

–प्रश्नव्याकरण

[यह वह भगवती अहिंसा हैं, जो डरे हुए प्राणियों को शरण देने वाली है। इसी प्रकार पक्षियों को गति, प्यासों को जल, भूखों को भोजन, समुद्र के बीचमें जहाज, पशुओंके लिए आश्रय स्थल, रोगियों के दवा का बल तथा जंगल में भटके हुओंके लिए सार्थ (कारवाँ)– इन सबसे भी अधिक कल्याण त्रस–स्थावर सब जीवों का करने वाली है।]

हिन्दूधर्म में उसे श्रेष्ठ धर्म प्ररूपित किया गया है :–

अहिंसा परमो धर्मः ।।

–महाभारतम्

परंम धर्म श्रुतिविदित अहिंसा ।।

–रामचरितमानस

मा हिंस्यात् सर्वभूतानि ।।

–यजुर्वेद

(सब प्राणियों की हिंसा मत करो)

ईसाई धर्म कहता है :–

Thou shall not kill

–बाइबिल

(तुझे किसीका वध नहीं करना है।)

इस्लाम धर्म में हाजियों (तीर्थयात्रा करने वालों) के लिए हुक्म फरमाया गया है कि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जिस दिनसे हज (तीर्थयात्रा) करने का विचार उठे, उस दिनसे मक्का (तीर्थस्थल) पहुँचने तक किसी जीव की हत्या मत करो। यदि जूँ भी काटती हो तो उसे मत मारो; केवल हटा दो।

एक मुस्लिम महात्मा शेखसादी ने लिखा है :–

"तुम्हारे पाँव के नीचे दबी हुई चींटीका वही हाल होता है, जो हाथी के पाँव के नीचे दबने से तुम्हारा!"

इस प्रकार सभी धर्मोने अहिंसा की प्रेरणा दी है। यदि अहिंसा को थोड़ी देर के लिए निकाल दिया जाय – अलग कर दिया जाय तो "धर्म" में कुछ बचता ही नहीं। धर्म के सारे उपदेश हमें अहिंसा की ओर ले जाते हैं। अहिंसा ही वह समुद्र है, जहाँ विभिन्न धर्मों की सरिताएँ आकर मिल जाती है :–

सव्वाओवि नईओ, क्रमेण जह सायरम्मि निवडन्ति ।
तह भगवईमहिंसां, सव्वे धम्मा सम्मिलन्ति ।।

– सम्बोधसत्तरी

[सारी (पृथ्वी भरकी) नदियाँ जिस प्रकार क्रमसे बहती हुई समुद्रमें जा मिलती हैं, उसी प्रकार भगवती अहिंसा में समस्त धर्म सम्मिलित हो जाते हैं।]

आज कल सर्वधर्मसम्मेलन करने का एक फैशनही चल पड़ा है। हर धर्म वाला विश्वधर्मसम्मेलन आमन्त्रित करता है। उसमें प्रत्येक धर्म के प्रतिनिधि वक्ता आकर अपनी–अपनी डफलीपर अपना–अपना राग सुनाने के बाद चले जाते हैं। आयोजकों के लाखों रूपये खर्च हो जाते हैं और परिणाम शून्य रहता है; क्योंकि जब तक अहिंसा की जीवनमें प्रतिष्ठा न हो, तब तक ऐसे खर्चीले आयोजनों से आयोजकों का अहं भले ही प्रतिष्ठित हो जाय, परन्तु धर्म प्रतिष्ठत नहीं हो पाता। संबोधसत्तरी की जो गाथा अभी आपने सुनी, उसके चौथे चरण में–

"सव्वे धम्मा सम्मिलन्ति"

इन शब्दों के द्वारा सर्व धर्मसंमेलन का उल्लेख किया गया है। धार्मिक–द्वन्द्व, साम्प्रदायिक विद्वेष, मजहबी कट्टरता और आपसी नफरत केवल तभी मिट सकती है, जब जीवनमें अहिंसा की प्रतिष्ठा हो। अहिंसा में ही वास्तविक सर्वधर्मसंमेलन के दर्शन होते हैं– वैरविरोध शान्त होते है– पारस्परिक प्रेम प्रकट होता है :–

अहिंसा प्रतिष्ठयां तत्सन्निधौ वैरत्याग : ।।

–पातंजल योगदर्शन

(यदि किसी व्यक्ति के जीवन में अहिंसा प्रतिष्ठित हो जाय तो उसके सान्निध्यमे रहने वाले सहज वैरी प्राणी भी वैरका त्याग कर देते हैं।)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

"ज्ञानार्णव" ग्रन्थमें इसका और भी विस्तार से वर्णन किया गया है :-

सारङ्गी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नन्दिनी व्याघ्रपोतम्
मार्जारी हंसबालं प्रणयपरिव शात् केकिकान्ता भुजङ्गम् ।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोन्ये त्यजन्ति
श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमितकलुषम् योगिनं क्षीणमोहम् ।।

(कषायों से अकलुषित समभावी निर्मोह योगीका आश्रय पाकर हिरणी सिंहशिशु का, गाय व्याघ्रशिशुका, बिल्ली हंस-शिशु का तथा मोरनी सर्पशिशुका प्रेम से इस प्रकार स्पर्श करती है, मानो कोई माता अपने शिशुका स्पर्श कर रही हो। इस तरह अन्य प्राणी भी गर्वरहित होकर जन्मजात वैर तक छोड़ देते हैं।)

यह है - अहिंसा का फल। आफ्रिका में एक जगह भाषण देने के बाद गाँधीजी अपने निवास की ओर चले जा रहे थे। एक विरोधी हाथमे तेज छुरा लेकर अपने पींछे-पीछे चलता रहा। महात्मा गाँधी ने रक्षक समझ कर उससे कहा :- "भाई! मेरी रक्षाके लिए आप छुरा लेकर क्यों चल रहे है ? स्वयं अहिंसा भगवती ही मेरीं रक्षा करना चाहेगी तो करेगी। आपको इसके लिए कष्ट उठाने की जरूरत नहीं है।"

छुरे वाले आदमीने चरणों में गिर कर कहा :- "मैं दूसरे लोगों के कहने से छुरा लेकर आपकी हत्या करने आया था; परन्तु मेरा हाथ ही आप पर नहीं उठा। क्षमा करें।"

यह है - अहिंसा की साधना का चमत्कार। सच पूछा जाय तो सत्य, शील, व्रत आदि सब अहिंसा से ही प्रकट होते हैं :-

सत्यशीलव्रतादीनामहिंसा जननी मता।।

-शुभचन्द्राचार्य

(सत्य, शील, व्रत आदि की माता मानी गई है -अहिंसा।)

जितने भी यम, नियम, व्रत, आराधना, उपासना आदि के विधान धर्मशास्त्रों में मिलते हैं; उन सबके मूल में अहिंसा है- प्राणतिपात से विरमण है :-

एक्कंचिय एत्थ वयं निद्दिट्ठं जिणवरेहिं सव्वेहि।
पाणाइवाय विरमण मवसेसा तस्स रक्खट्ठा।।

-जैनसिद्धान्तबोलसंग्रह

[सब जिनेश्वरों ने यहाँ एक मात्र प्राणातिपात विरमण व्रत (अहिंसा)का ही निर्देश किया है। शेष समस्त व्रत उसी की रक्षा के लिए बताये गये हैं।]

प्रत्येक जीव स्वतन्त्र होना चाहता है- बन्धन से छूटना चाहता है- मुक्त होना चाहता है। अहिंसा उसकी इस इच्छा की पूर्त्ति का अचूक साधन है। जो अहिंसक है, उसका मोक्षमें रिजर्वेशन हो जाता है :-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मोक्षं ध्रुवं नित्यमहिंसकस्य ।।

—सूक्तिमुक्तावली

(जो नित्य अहिंसक बना रहता है, उसके लिए मोक्ष निश्चित हो जाता है।)

इस दुनिया में हिंसा के साधन अनेक हैं और वे एक से एक अधिक भयंकर हैं– अधिक संहारक हैं! पत्थर, लाठी, तलवार, भाला, तीर, बन्दूक, तोप, अणुबम, न्यूट्रान बम, परमाणु (हाइड्रोजन)बम, आदि क्रमशः अधिक से अधिक हानिकर शस्त्रों का आविष्कार मनुष्य ने मनुष्योंकी हत्या के लिए किया है। सन् १९१४ और १९३९ के दो विश्वयुद्धों का घोर दुष्परिणाम दुनिया देख चुकी है; फिर भी तीसरे विश्वयुद्ध की तैयारी चल रही ही है। आज दुनिया में इतने शस्त्रास्त्रों का भण्डार है कि उनके उपयोग से किसी एक प्रदेश या राष्ट्र को नहीं, सम्पूर्ण पृथ्वी के प्राणियों को कम से कम सौ बार नष्ट किया जा सकता है! फिर भी शस्त्रास्त्र निर्माण की प्रक्रिया चालू है।

इस समय दुनिया में जितने आणविक अस्त्र मौजूद हैं, उनमें से पिच्यानवे प्रतिशत (९५) केवल रूस और अमेरिका – इन दो राष्ट्रों के अधिकार में हैं और शेष पाँच प्रतिशत में अन्य समस्त राष्ट्रों के कुल शस्त्रास्त्र हैं।

एक सर्वेक्षण के अनुसार लगभग एक अरब रूपये प्रतिदिन शस्त्रास्त्र भंडार मे वृद्धि के लिए खर्च किये जा रहे हैं। यदि यह सारी राशि किसी अस्पताल, शिक्षा, परोपकार आदि विधायक कार्य में खर्च की जाय तो मनुष्य समाज अधिक सुखी हो सकता है; परन्तु स्वार्थी राष्ट्रों के नायकों को समझाये कौन ?

इन समस्त शस्त्रों के विरूद्ध अशस्त्र केवल एक है– अहिंसा। इसमें कोई तरतमता नहीं पाई जाती।

आचारांग सूत्र में प्रभु महावीर ने फरमाया है :–

अत्थि सत्थं परेण परं।
नत्थि असत्थं परेण परं ।।

[शस्त्र तो एक से एक बढ़कर हैं, परन्तु अशस्त्र (अहिंसा) एक से एक भी बढ़कर नहीं है।]

शस्त्रोंके प्रयोग में अशान्ति है– युद्ध है– क्रूरता है; परन्तु अहिंसा के प्रयोग में ऐसा नहीं है। वहाँ तो केवल शान्ति है– सहयोग हैं– दयालुता है। हमें कौनसी वस्तु उपादेय लगती है– शस्त्र या अशस्त्र ? शान्ति से सोचिये।

सुप्रसिद्ध अहिंसक महात्मा गाँधी के पिता वैष्णव थे और उनकी माता जैन थी। अन्तर्धर्मीय विवाह हुआ था उनका। गुजरात में ऐसे विवाह होते रहते हैं। उसमें कोई बाधा नहीं आती। जब महात्मा गाँधी को विशेष अध्ययन के लिए विलायत भेजने का प्रश्न खड़ा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हुआ तो एक जैन साधु के कहने से माता ने उनसे तीन प्रतिज्ञाएँ करवा ली :- (क) शराब नहीं पिऊँगा (ख) मांस नहीं खाऊँगा और (ग) परस्त्रीगमन नहीं करूँगा। आत्मकथामें गाँधीजी ने यह स्वीकार किया है कि इन तीन नियमों के प्रभाव से ही मैं अहिंसक बना। अहिंसा के विषय में महात्मा गाँधी के महत्त्वपूर्ण विचार ये है :-

* धर्म के निचोड़का दूसरा नाम ही अहिंसा है।

* अहिंसा का अर्थ है- ईश्वर पर भरोसा।

* जैसे हिंसा की तालीम में मरना सीखना जरूरी होता है, वैसे ही अहिंसा की तालीम में मरना सीखना पड़ता है।

* मेरी अहिंसा का मतलब है- सबसे प्रेम करना।

* उस जीवन को नष्ट करनेका हमें कोई अधिकार नहीं है, जिसे हम बना नहीं सकते।

इन अनुभवपूर्ण उद्‌गारोंसे हमें अहिंसा के स्वरूप को समझने में कोई कठिनाई नहीं रहेगी। अहिंसा की भावना से किये गये कार्य से तिर्यञ्च भी किसी प्रकार प्रभावित होते हैं: इसका प्रत्यक्ष उदाहरण किसी दैनिक पत्र में छपा था :-

दाहोद से रतलाम की ओर जाने वाली लाईन पर आलावाड नामक एक स्टेशन आता है। वहाँ सिग्नल मैन सिग्नल देने के लिए निकला । आने वाली गाडी पूरे वेग पर थी। उसी लाइन पर एक मालगाड़ी भी खड़ी थी। यदि आने वाली गाड़ी की लाइन न बदली जाय तो उससे मालगाड़ी की भिडंत हो सकती थी। इस भयंकर दुर्घटना से हजारों स्त्री पुरुषों और बच्चों के प्राण जाने की सम्भावना थी।

सिग्नलमैन यथासमय यथास्थल अपना काम करने के लिये पहुँचा; परन्तु सिग्नल देने के लिये जहाँ उसे पाँव रखना था, वहाँ एक कोबरा नाग फन फैलाकर बैठा था। अब क्या किया जाय ? इतना समय नहीं था कि किसी उपाय से कोबरे को हटाने के बाद काम किया जाय। थोड़ा-सा विलम्ब हजारों की मृत्युका कारण बन सकता था। उसने फौरन विचार करके निर्णय ले लिया कि मेरे मरने से हजारोंकी जान बच जाय इससे बढ़कर परोपकार का अवसर और क्या होगा ? उसने नाग के फन पर पाँव रखकर सिग्नल ऑन कर दिया। इससे पटरी बदल गई। गाड़ी दूसरी पटरी पर होकर निकल गई- सब यात्री बच गये।

उधर अहिंसक भावना से रखे गये पाँव पर नागने भी दंश नहीं दिया। बिना किसी उपद्रव के वह पाँव के आघात को सहकर चुपचाप दूर चला गया। इस प्रकार अहिंसा के पुण्य का उस आदमी को तत्काल फल यह मिला कि वह खुद भी बच गया और विभिन्न दैनिक पत्रों में उसकी प्रशंसा छपी-नाम हुआ- प्रसिद्धि मिली, सो अलग।

अहिंसा से हिंसा पर भी विजय पाई जा सकती है :-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महाराज प्रसेनजित डाकू अंगुलिमाल के उपद्रवों से परेशान थे। प्रजाजन उसके नाम से थर-थर काँपते थे। करूणासागर महात्मा बुद्ध ने अपनी अहिंसक शक्ति से उसे सुधारने का निश्चय किया।

धीरे-धीरे चलते हुए वे अटवी में पहुँचे, जहाँ डाकू अपने साथियों के साथ रहा करता था। दूरसे महात्माजी को अपनी ओर आते देखकर डाकू ने अपनी तलवार सँभाली; परन्तु आगन्तुक के हाथ में तो लाठी तक नहीं थी। वह बड़े विचार में पड़ गया कि यह कौन व्यक्ति है, जो मेरा नाम नहीं जानता। उसने कड़क कर कहा :- "ऐ बटोही! तू किधर मौतके मुँह में घुसा चला आ रहा है ? क्या तुझें अपनी उँगलियाँ प्यारी नहीं हैं ? तुझे शायद पता नहीं कि यह डाकुओंकी बस्ती है। मैं डाकुओं का सरदार अंगुलिमाल हूँ। मैं मुसाफिरों के हाथों की उंगलियाँ काट कर उनकी माला बना लेता हूँ और हमेशा ऐसी एक नई माला अपने गले में धारण करता हूँ; यही कारण है, जिससे मेरा नाम अंगुलिमाल पड़ गया है। आजा, आज तेरे हाथों की उँगलियोंसे ही अपनी माला प्रारम्भ करूँ।"

महात्मा बुद्ध :- "भाई! हाथों को उँगलियां काम करने लिए मिली हैं, काटने के लिए नहीं।"

डाकू :- "मुझे उपदेश देता है ? ठहर अभी चखाता हूँ तुझे इसका मजा।"

बुद्ध :- "मैं तो विश्वप्रेम की भावना में ठहरा ही हुआ हूँ और आत्मरमण का आनन्द चखता रहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरी तरह तुम भी ठहर जाओ। जगत् को रूलाने को नहीं, उसके आँसू पोंछने का प्रयास करो, जिससे तुम्हारा जीवन निर्भय और सुखी बने। जैसे तुम्हें अपनी उँगलियाँ प्यारी हैं, वैसे ही सब लोगोंकी प्यारी हैं। उँगलियाँ काटने पर तुम्हें जितना दुःख होता है, उतना ही उससे दूसरों को भी होता है ; इसलिए यह क्रूर कार्य बन्द कर दो। शक्ति का निवास दूसरों को आतंकित करने में नहीं, किन्तु दूसरों का भला करने में- सेवा करने में हैं।"

इससे प्रभावित होकर अंगुलीमाल महात्मा बुद्ध का शिष्य बन गया। दूसरे दिन दर्शनार्थ आये महाराज प्रसेनजितने स्वयं भी अंगुलिमाल मुनि को वन्दन किया। अहिंसा धर्म की स्वीकृति ने उसे वन्दनीय बना दिया था।

दयालु अहिंसक सिर्फ मनुष्यों पर ही नहीं, पशुओं पर भी दया का व्यवहार करता है। वह निरामिष-भोजी होता है।

विश्वविख्यात नाटककार बर्नार्डशा शाकाहारी थे और शाकाहार का प्रबल शब्दों में सर्वत्र समर्थन भी किया करते थे। एक दिन उन्हें कहीं से भोजका निमन्त्रण मिला। वे चले गये। भोजन सामिष था, जो शाँ की रूचिके अनुकूल नहीं था। वे परोसे हुए भोजन की मेज छोड़करअन्यत्र बैठ गये। अन्य लोगों ने जब शाँको चुपचाप बैठे हुए देखा तो उनमें से किसीने

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कहा :– "मिस्टर शाँ! जहाँ निरामिष भोजन की व्यवस्था न हो वहाँ कभी–कभी सामिषभोजन करने में कोई हर्ज नहीं। आप घर पर कुछ भी खाइये; परन्तु भोजमें इस बात की छूट रखिये कि यदि निरामिष भोजन कहीं न बना हो, तो सामिष भोजन भी कर लिया जाय।"

इस पर अहिंसा प्रेमी शाँने तत्काल दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया :– "मेरा पेट पेट ही है, कब्रिस्तान नहीं कि इसमें मुर्दो को भी स्थान दिया जाय!"

उस दिन शाँ भूखे ही घर लौट गयें; परन्तु अपने एक वाक्य से सब सुनने वालों के मस्तिष्क में उन्हों ने खलबली जरूर मचा दी।

एक बार सड़क के किनारे कुछ गायें खड़ी थी। वे बादशाह अकबर की ओर देख रही थीं। अकबर ने बीरबल से पूछा :– "ये गायें मेरी ओर देखकर क्या कह रही हैं ?"

समयनुसार वाणी का सदुपयोग करने में कुशल बीरबल ने कहा :– "जहाँपनाह! हम घास खाकर निर्वाह करती हैं। हम किसी को नहीं सताती। न झूठ बोलती हैं, न चोरी करती हैं और न विश्वासघात ही करती हैं। हम दूध देती है, जिससे मनुष्यों का पोषण होता है। हमारे बछड़े बैल बनकर खेतोंमें काम आते हैं। मरने के बाद भी हमारी चमड़ी जूतियों के रूप में हिन्दू–मुस्लिम का भेदभाव किये बिना सबके पाँवो की समानरूपसे रक्षा करती हैं; फिर कसाई हमारा बध किस अपराध में करते हैं ? न्याय कीजिये हमारे साथ! – ऐसा ये गायें अपनी मूक–भाषा में आपसे कह रही हैं।"

यह सुनते ही बादशाह ने बूचड़खानों में गौवधबन्दी का कानून बना दिया। गौवध करने वाले के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की; परन्तु आज स्वतंत्र भारतमें भी गौवध बन्दी का कोई कानून नहीं बन पाया है! कौन कह सकता है कि यह वही देश है, जिसे अहिंसात्मक आन्दोलन के द्वारा अहिंसा के पुजारी महात्मा गाँधीने स्वतन्त्रता दिलाई थी ?

अहिंसक वही बन सकता है, जिसके दिलमें दया हो– सहानुभूति हो। महाराज समुद्रविजय और महारानी शिवादेवी के सुपुत्र थे– कुमार अरिष्टनेमि । वे द्वारकानरेश महाराज उग्रसेन की सुन्दर कन्या राजीमती से विवाह करने के लिए बरात लेकर द्वारका पहुँचे।

रथ में बैठे कुमार नगर में प्रवेश कर ही रहे थे कि सहसा उनकी दृष्टि एक बाड़े में घिरे जंगली पशुओंके झुण्डपर पड़ गई।

कारण पूछने पर पता चला कि विवाहोत्सवमें सम्मिलित होने वाले सामिषाहारी अतिथियों का भोजन तैयार करने के लिए उन पशुओं को बाँधकर रखा गया है।

कुमार का संवेदनशील ह्रदय यह सुनकर करूणा से भर गया। इस भावी विशाल हत्याकाण्ड का कारण विवाह था; इसलिए कुमारने अपने को ही इस हिंसा का जिम्मेदार माना। बाड़ा खुलवाकर उन्होंने तत्काल सभी पशुओंको मुक्त करवा दिया।

फिर रथ लौटाने का आदेश देकर सारथी से कहा :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

"अब मैं राजीमती से नहीं, मोक्षलक्ष्मी से ही विवाह करूँगा।"

महापुरुषों की कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं पाया जाता। वे प्रव्रजित होकर तपस्या करने चले गये। कर्मों का क्षय करके उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद चतुर्विध संघ की स्थापना करके भव्य जीवों को मुक्तिमार्ग बताते रहे। इस प्रकार जैन धर्मकी वर्तमान चौवीसी में बाईसवें तीर्थंकर बने।

तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवन की घटना भी अहिंसा से ही सम्बन्धित है। दीक्षित होने से पूर्व वे पार्श्वकुमार कहलाते थे।

अपनी माता वामादेवी के साथ हाथी पर सवार होकर वे बनारस के बाहर पंचाग्नि तप करने वाले एक तापस के निकट जाकर बोलें :– "जहाँ हिंसा है, वहाँ धर्म का नाटक हो सकता हैं, धर्म नहीं। तुम्हारे सामने ही अग्नि में नाग– जल रहा है और तुम इसे धर्म समझते हो ?"

फिर चाकरों से लक्कड़ फड़वाकर उसमें से मृतप्राय नाग निकाल बताया। इससे लोग तापस को धिक्कारते हुए अपने घर लौट गये।

एवं खु णाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणं।।

[ज्ञानी के ज्ञान का यही सार है कि वह किसी प्राणी की हिंसा नहीं करता। इस प्रकार अहिंसक बनकर रहता है।]

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

७. आचरण

सदाचारी सज्जनो!

जैन धर्म ने आचरण पर सब से अधिक जोर दिया है। उसके बत्तीस सूत्रों अथवा पैंतालीस आगमों में सबसे पहले आगम का नाम ही "आचारांग सूत्र" है।

ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः।।

(ज्ञान और क्रियासे ही मोक्ष प्राप्त होता है।)

ऐसा जिसने कहा है, उसने आचरण को ज्ञान से अधिक महत्त्वपूर्ण घोषित किया है। संसारमें भी दुराचारी विद्वान् की अपेक्षा सदाचारी अविद्वान्‌को ही अधिक अच्छा माना जाता है।

दुराचार से आत्मा कलुषित होती है और सदाचार से शुद्ध। यही कारण है कि महर्षियोंने घोषित किया था :-

आचारः प्रथमो धर्मः ।।

(आचरण ही पहला धर्म है।)

निस्सन्देह ज्ञान की सबसे पहले आवश्यकता है; परन्तु धार्मिकता का प्रारम्भ आचरण से ही होता है। अत्याचार आत्मा का शोषक है तो सदाचार पोषक।

किसी इंग्लिश विचारक के अनुसार धन गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ गया; परन्तु यदि सदाचार गया तो सब कुछ चला गया! ऐसा समझना चाहिये।

इसीसे मिलती-जुलती सूक्ति संस्कृत में भी प्रसिद्ध है :-

अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।।

[जिसका वित्त (धन) नष्ट हो गया, उसका कुछ भी नष्ट नहीं हुआ; परन्तु जिसका वृत्त (आचरण) नष्ट हो गया, वह तो मानो मर ही गया!]

आचरण को शुद्ध रखने के लिए बहुत कुछ त्याग करना पड़ता है- सहना पड़ता है। कष्ट बिना इष्ट नहीं मिल सकता! क्षणिक सुख देने वाली चंचल लक्ष्मी के लिए यदि आप कष्ट सहने को तैयार रहते हैं - सहते हैं तो स्थायी सुख देने वाले सदाचार के लिए- आचरण को शुद्ध बनाये रखने के लिए भी आपको कष्ट सहने के लिए सहर्ष तैयार रहना चाहिये।

साधारण विधायक या सांसद का पद पाने के लिए भी आपको चुनाव लड़ना पड़ता है, पसीना बहना पड़ता है- धन खर्च करना पड़ता है तो क्या परमात्मपद सहज ही मिल जायगा? उसके लिए भी क्रोध, मान, माया, लोभ जैसे आत्मशत्रुओं से लड़ना पड़ेगा। तपस्या करनी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पड़ेगी!! परोपकार में धनदौलत का त्याग करना पड़ेगा!!

तानपूर में चार तार होते हैं। उनसे क्रमशः ''प–सा–सा–सा''की ध्वनि निकलती रहे तभी शुद्ध संगीत का गायक को आधार मिलता है; उसी प्रकार जीवन में भी दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य और तप का सन्तुलन बना रहे तभी जीवको शुद्ध धर्म का आधार मिलता है।

सारंगी में विभिन्न तारों का मेल हो तभी उससे उत्पन्न संगीत कानों को प्रिय लगता है, उसी प्रकार जीवन में सदाचार का मेल हो तभी उससे उत्पन्न सद्व्यवहार लोगों को प्रिय लगता है। यही कारण है, जिससे सदाचारी शीघ्र लोकप्रियता अर्जित कर लेता है।

लोग समाजसुधारकी बात करते हैं; लेकिन व्यक्तियोंसे ही समाज बनता है; इसलिए यदि व्यक्ति अपने को सुधार ले तो समाज–सुधार अपने आप हो जायगा।

बड़ोके आचरण का प्रभाव छोटों पर पड़ता है। घर में होनेवाले हर बुरे भले व्यवहार को बच्चे तत्काल अपना लेते हैं। किसी घर के बच्चों का आचरण देखकर आसानी से यह पता लगाया जा सकता है कि उस घर में रहनेवाले कुटुम्बी कैसे हैं; क्योंकि ब्लाटिंग पेपर की भाँति बच्चे बड़ों के प्रत्येक भले बुरे आचरण का अनुसरण करते हैं।

आप क्या जानते हैं अथवा क्या मानते हैं– उसका उतना मूल्य नहीं है, जितना आप क्या करते हैं– इस बातका मूल्य है। मतलब यह कि ज्ञान और विश्वास की उपेक्षा आचरण ही अधिक मूल्यवान् है।

यथासमय रूढिपालन के रूपमें किये जाने वाले प्रतिक्रमण, सामायिक आदि धार्मिक क्रिया है; और उसी सामायिक और प्रतिक्रमण को घर और दुकान के प्रत्येक व्यवहारमें जीवित रखना आचरण है।

सदाचारी आत्मश्लाघा से सदा दूर रहता है। उसे ''अपने मुँह मियाँ मिट्ठू'' बनने की जरूरत नहीं पड़ती। इत्र का परिचय देने के लिए सौगन्द नहीं खानी पड़ती। ढोल नहीं पीटना पड़ता!!! सुगन्ध स्वयं इत्रका परिचय देने में समर्थ है, जो इत्र के अन्दर रहती है।

उसी प्रकार व्यक्ति के जीवन में रहने वाला आचरण ही उसका स्वयं परिचायक है।

ज्ञान मस्तिष्क में रहता हैं; किन्तु आप गुरूदेव के मस्तिष्क को वन्दन नहीं करते। वन्दन केवल चरणों में किया जाता है, जो आचरण के प्रतीक हैं; क्योंकि चलने का काम चरण ही करते हैं। हमें ज्ञानके अनुसार चलना है।

एक इंग्लिश सूक्ति के अनुसार आचरणकी शुरूआत घरसे होती है। प्रत्येक मनुष्य अपने ही पाँवों से चलकर लक्ष्य तक पहुँचता है। दूसरों के पाँवो से आप ही नहीं चल सकते। दूसरों को चलते हुए देखकर आप चलने का तरीका जान सकते हैं; परन्तु पहुँच नहीं सकते

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपना लक्ष्य पा नहीं सकते। लक्ष्य पाने के लिए तो आपको स्वयंही चलना पड़ेगा :-

अरिहन्तो असमत्थो तारिउं लोआण भवसमुद्दम्मि ।

मग्गे देसण कुसलो तरन्ति जे मग्गि लग्गन्ति ॥

[लोगों को भवसागर से तारने में अरिहन्तदेव असमर्थ हैं। वे केवल मार्गदर्शन करने में कुशल हैं। भवसागर से पार तो वे ही पहुँचेगे जो मार्ग पर लग जायँगे–चलना (तैरना) अर्थात् आचरण प्रारंभ कर देगे।]

ज्ञान का जो आचरण नहीं करते, वे पढे–लिखे मूर्ख कहलाते हैं :-

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः

यस्तु क्रियावान् पुरुषःस विद्वान् ॥

[शास्त्रों का अध्ययन करके भी कई बार कई लोग मूर्ख ही रहते हैं। जो आचरणशील पुरुष हैं, वही सच्चा विद्वान है।]

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन् ने कहा था कि भारत को शिक्षा की नहीं, चारित्र की आवश्यकता है।

इंग्लिश कविता की दो पंक्तियाँ बहुत सुन्दर है :-

A man of words and not of deeds
Is like a garden full of weeds

[जो मनुष्य बोलता है; परन्तु आचरण नहीं करता, वह उस बगीचे के समान है, जिसमें केवल घास ही घास है।]

आचरण पर जोर देने का तात्पर्य यह नहीं कि ज्ञान, धारणा या शास्त्र महत्त्वहीन हैं। महत्त्व उनका भी कम नहीं है; क्योंकि वे सब आचरण के लिए प्रेरक हैं; परन्तु तरतमता की दृष्टि से विचार करें तो शास्त्र, धारणा और ज्ञान का महत्त्व क्रमशः अधिक से अधिक है और आचरण का सबसे अधिक! कहा भी है :-

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठाः ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ।

धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठाः ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ॥

–मनुस्मृतिः

[अज्ञानियों से शास्त्रों का अध्ययन करनेवाले श्रेष्ठ हैं। शास्त्रों का अध्ययन करनेवालों से वे श्रेष्ठ हैं, जो शास्त्रों को कण्ठस्थ कर लेते है। शास्त्रों को कंण्ठस्थ करनेवालों से वे श्रेष्ठ हैं, जो मनन–चिन्तन करके उस शास्त्रीय ज्ञान को आत्मसात् कर लेते हैं– पचा लेते हैं और स्वयं ज्ञानी बन जाते हैं। ऐसे श्रुतज्ञानियों की अपेक्षा वे लोग श्रेष्ठ हैं, जो ज्ञान के अनुसार व्यवसाय (व्यवहार या आचरण) करते हैं।]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उपदेश देना सरल है –आचरण बहुत कठिन है। दूसरों का कुटुम्बी मर जाय तो हम सान्त्वना और धीरज देने का काम आसानी से कर सकते हैं। परन्तु अपने ही घरमें कोई मर जाय तब आँसुओंको नहीं रोक पाते – मनको नहीं समझा पाते – धीरज नहीं रख पाते।

यह स्थिति केवल श्रावक–श्राविकाओं के घरों में ही नहीं होती, साधुओं तक मे पाई जाती है; क्योंकि हम लोग भी साधक ही हैं, सिद्ध नहीं। चौदह हजार साधुओंके नायक प्रभु महावीर के प्रथम गणधर गौतम–स्वामी की महावीर–निर्वाण के बाद क्या स्थिति हुई थी ? सो आप सब लोग जानतें ही है। एक साधारण गृहस्थ की तरह वे चिल्ला–चिल्लाकर रोने लग गये थे। दस–पन्द्रह मिनिट तक नहीं, रातभर आँसू बहाते रहे– विलाप करते रहे; परन्तु चौथे प्रहर में उनकी विचार धाराने पलटी खाई। सोचने लगे– "महावीर का शरीर नश्वर था। वह तो छूटने ही वाला था; परन्तु उनका उपदेश तो मौजूद है और वही प्राणियों के लिए कल्याणकारी है। व्यर्थ ही मोहवश मैं रोया! रोनेसे लाभ क्या हुआ ? महावीरके उपदेश को धारण करता रहा; परन्तु आचरण से दूर हो गया! धिक्कार है मुझे। मैं महावीर प्रभुका प्रथम शिष्य था; परन्तु उनके शरीर के वियोग में विलाप ने प्रमाणित कर दिया कि मैं अयोग्य शिष्य था। नहीं–नहीं. . . अब मैं अपने को सुयोग्य शिष्य के रूपमें प्रमाणित करूँगा...."

ऐसे चिन्तनसे ही उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो पाया। महावीर प्रभु के शरीर के प्रति उनका जो अनुराग था, वही केवलज्ञान की प्राप्ति में बाधक बन गया था, सो बाधा हटते ही वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन गये।

पर उपदेश कुशल बहुतेरे।
जो आचर हिं ते नर न घनेरे॥

–रामचरितमानस

(दूसरों को उपदेश देनेवाले तो बहुतसे हैं; परन्तु जो आचरण करते हैं– ऐसे व्यक्ति बहुत कम पाये जाते हैं।)

स्वामी विवेकानन्द अमेरिका गये। वहाँ उनकी सादी पोशाक देखकर हँसनेवाले एक सज्जन को उन्होंने कहा :– "आपके देशमें सभ्यता का निर्माता दर्जी है, परन्तु मैं जिस देश का निवासी हूँ, उसमें सभ्यता का निर्माता चरित्र (आचरण) हैं!"

मूल्यवान् पोशाक से यही मालूम होता है कि आप धनवान् हैं। सभ्यता का पोशाक से क्या सम्बन्ध ? चोर, डाकू, जेबकतरे, व्यभिचारी और अत्याचारी भी अच्छी से अच्छी पोशाक पहिनकर घूमते हुए दिखाई दे जाएँगे; किन्तु इसीसे वे सभ्य अथवा सज्जन नहीं माने जा सकते।

आचरण का महत्त्व बताते हुए शास्त्रकार कहते हैं :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पढमं नाणं तओ दया।।

(पहले ज्ञान और फिर दया।)

दया का मतलब है –आचरण। ज्ञान के अनुसार आचरण न होनेपर कैसी दुर्दशा होती है, सो एक उदाहरण से भलीभाँति समझमें आ जायगी :–

किसी गाँव मे एक सुन्दर भवन था। रातको उसके एक कमरे मे पतिपत्नी सो रहे थे। आधी रातके बाद एक चोर खिड़की तोड़कर कमरे में घुस आया। खटखटाहट से पत्नी की नींद खुल गई। पतिदेव को जगाकर उसने धीरे–धीरे कहा :– "अजी! जगते हो ?"

पति :– "हाँ–हाँ, जग रहा हूँ। कोई खास बात है क्या ?"

पत्नी :– "घरमें चोर घुस आया है !"

पति :– "जानता हूँ।"

पत्नी :– "वह तिजोरी की तरफ बढ़ रहा है।"

पति :– "जानता हूँ।"

पत्नी :– "उसने तिजोरी खोल ली है।"

पति :– "जानता हूँ।"

पत्नी :– "वह नोटोंकी गड्डियाँ निकाल रहा है।"

पति :– "जानता हूँ।"

पत्नी :– "उसने सारे नोट निकालकर अपने ब्रीफकेसमें भर लिये हैं।"

पति :– "जानता हूँ।"

पत्नी :– "अब वह जाने के लिए खिड़की से कूद रहा है।"

पति :– "जानता हूँ।"

पत्नी :– "बाहर निकलकर अब तो वह बहुत दूर चला गया होगा।"

पति :– "हाँ जानता हूँ।"

पत्नी :– "क्या जानता हूँ–जानता हूँ कहना ही जानते हो या धन की रक्षा करना भी ? अपनी आँखोके सामने धन चुराया गया और फिर भी तुमने कुछ नहीं किया !"

तोड़ तिजोरी धन लियो, चोर गयो अतिदूर।
जाणूँ–जाणूँ कर रह्यो, जाणपणामें धूर ।।

बड़ौदा (जिसे गुजराती में वडोदरा कहते हैं) की बात हैं। वहाँ सर सयाजीराव की अध्यक्षता में एक सभा हुई। उसमें एक मद्रासी विद्वान् का तर्कपूर्ण अत्यन्त रोचक भाषण हो रहा था। प्रतिपाद्य विषय था– "अहिंसा और उसका जीवन में महत्त्व !"

बोलने की शैली इतनी आकर्षक थी कि सभी श्रोता मन्त्रमुग्ध से होकर सुनते रहे। तभी अकस्मात् वक्ता के चेहरे पर पसीनेकी बूंदें आ गई। उन्हें पोंछने के लिए विद्वान् ने अपनी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जेबमें हाथ डालकर रूमाल बाहर निकाला; किन्तु जल्दी में ध्यान न रहनेसे दो अण्डे भी जेब से रूमाल के साथ बाहर निकल कर फर्श पर गिर पड़े और फूट गये!

श्रोताओं को यह दृश्य देखकर अत्यन्त खेद और आश्चर्य हुआ कि अहिंसा धर्म पर धूआँधार भाषण झाड़नेवाला आदमी स्वयं अंडे किस प्रकार खाता होगा ?

वक्ता महोदय लज्जित होकर एक ओर बैठ गये। अध्यक्षपद से बोलते हुए सर सयाजीरावने कहा :– "ऐसे ही लोगों ने देश का सर्वनाश किया है, जिनकी कथनी और करनी में एकता नहीं पाई जाती!"

कहते सो करते नहीं, मुँह के बड़े लबार ।
काला मुँह हो जायगा साई के दरबार।।

एक कथावाचक ने अपने प्रचन में बैंगन खाने की बुराई बताई

प्रवचन समाप्त हुआ। श्रोता अपने–अपने घर पहुँचे। वे भी अपने घर जा रहे थे। कि मार्ग में सब्जीमंडी आई।

गोल–गोल छोटे छोटे ताजा नीले सुन्दर बैंगनों के ढेर पर उनकी नजर पड़ी। दक्षिणा में मिले पैसों से उन्हें सब्जी खरीदने की इच्छा हुई तो बैंगन ही तुलवाने लगे। एक श्रोता भी वहाँ सब्जी खरीदने आया था। उसने पंडितजीको रंगे हाथों पकड़ लिया था। श्रोताने कहा :– "अरे! आप यह क्या कर रहे हैं ? अभी कुछ समय पहले ही तो प्रवचनमें आपने बैंगन छोड़ने की सबको प्रेरणा दी थी और आप खुद बैंगन खरीदकर घर ले जा रहे हैं! ऐसा क्यों ?"

पंडितजी बोले :– "भाई! असल में बात यह है कि जिनकी बुराई मैं कर रहा था, वे तो पोथी के बैंगन थें; परन्तु ये बैंगन तो खाने के हैं। दोनों एक कैसे हो सकते हैं ? फिर पोथी में तो बात लिखी होती है, जो कुछ पोथी में लिखा होता है, उसे सुनाना हमारा कर्तव्य है।कर्तव्य का ईमानदारी से पालन करने पर ही हम दक्षिणा पाने का अधिकारी बनते हैं।प्रंवचन के समय मैंने यही तो कहा था कि सबको बैंगन का त्याग करना चाहिये। मैं बैंगन नहीं खाता अथवा मैं बैंगन नहीं खाऊँगा–ऐसा तो मैंने कहा नही था!"

उवएसा दिज्जन्ति हत्थे नच्चाविऊण अन्नेसिं।
जं अप्पणा न कीरइ किमेस विक्काणुओ धम्मो?

[हाथ नचा–नचाकर दूसरों कों उपदेश दिये जाते है; किन्तु उपदेशक स्वयं यदि उन उपदेशों का पालन नहीं करता तो क्या धर्म केवल बेचने की वस्तु नहीं बन जाती ? (वह उपदेश देता है और बदले में दक्षिणा लेता है जैसे बाजार में हम रूपये लेकर कोई वस्तु बेचते हैं, वैसा ही वह करता है।इस प्रकार धर्मोपदेशक को वह बिक्री की वस्तु बनाता है, जो सर्वथा अनुचित है।)]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जो व्यक्ति स्वयं आचरण से दूर भागते हैं, उन्हें उपदेश के लिए मुंह खोलने का कोई अधिकार नहीं मिलना चाहिये।

कबीर साहब ने कहा था :–

करनी करै सो पूत हमारा कथनी कथै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरु हमारा हम रहणी के साथी।।

गुरूजी ने कौरवों और पाण्डवों को पढाया :–

"सत्यं वद। धर्मचर।।"

(सच बोलो। धर्म का आचरण करो।)

दूसरे दिन सबने अपना–अपना पाठ याद करके सुना दिया; परन्तु युधिष्ठिर को पाठ याद नहीं हो सका। गुरुजीने उन्हें डाँट दिया; परन्तु तीसरे दिन भी जब युधिष्ठिर ने यही कहा कि मुझे अभी पाठ याद नहीं हुआ है, तब गुरूजीने उनके गालों पर दो थप्पड़ें जमा दीं।

थप्पड़ें खाने के बाद युधिष्ठिरने मुस्कुराते हुए कहा :–

"आपकी कृपासे अब मुझे पाठ याद हो गया है!"

गुरुजी :– "अच्छी बात है। सुनाओं।"

युधिष्ठिर :– "गुरूदेव! सुनाऊँ क्या ? मैं तो परीक्षा भी दे चुका हूँ और उसमें उत्तीर्ण भी हो गया हूँ।"

गुरुजीने आश्चर्य से पूछा कि तुम्हारी बात पहेली की तरह समझ में नहीं आ रही है। जरा विस्तार से कहो।

युधिष्ठिर :– "गुरूदेव ! क्रोध न करना धर्म है। मुझे संशय था कि क्रोध का अवसर आने पर मैं शान्त रह भी सकूँगा या नहीं; इसलिए "सत्यं वद" इस पाठ की शिक्षा के आधार पर मैं सच बोल रहा था कि मुझे पाठ याद नहीं हुआ है; किन्तु अभी–अभी दोनों गालों पर आपकी थप्पड़ें खाकर भी जब मुझे बिल्कुल क्रोध नहीं आया, तब संशय मिट गया और मैंने स्वीकार लिया कि मुझे पाठ याद हो गया है।"

इस उत्तर से गुरूजी बहुत प्रसन्न हुए। बचपन में सिखायें हुए पाठों को इसी प्रकार आचरण में उतार–उतार कर वे "धर्मराज युधिष्ठिर"के रूपमें प्रसिद्ध हुए।

एक दिन लम्बें प्रवास से थके हुए मुहम्मद साहब अपने शिष्यों के साथ किसी गाँव की सीमापर आराम कर रहे थे कि उधर से किसी आदमी की शबयात्रा निकली।

तत्काल पैगम्बर साहब उसके सम्मान में खड़े हो गये। शिष्यों ने कहा :– "हजरत! यह तो किसी यहूदी की शबयात्रा थी।"

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इस पर वे बोले :– "यहूदी होने से क्या कोई मनुष्य नहीं रहता ? उसके सम्मान में खड़े होकर हमने मानवता को सम्मानित किया है।"

महापुरुषों पर आचरण का अधिक दायित्व होता है; क्योंकि अन्य लोग उन्हीं का अनुसरण करते हैं।

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

८. ईर्ष्या

स्पर्द्धालु सज्जनो!

ईर्ष्या और स्पर्द्धाका रूप मिलता–जुलता है; परन्तु उनमें उतना ही अन्तर है, जितना नमक और शक्कर में!

दूसरों को सुखी देखकर जलना ईर्ष्या है; परन्तु स्पर्धा में ऐसी जलन नहीं होती। स्पर्द्धालु दूसरों के समान बनने का प्रयास करता है। यह अच्छा गुण है। अपनाने योग्य है।

जिस प्रकार क्रोध से क्रोधीका भी खून जलता है, उसी प्रकार ईर्ष्या से ईर्ष्यालु का खून जलता है, उसका मन दुःखी रहता है। अपने दुःखोको मिटाने के लिए वह सुखियों को कष्ट पहुँचाने का प्रयास करता है। इस प्रकार स्वयं भी दुःख पाता है और दूसरोंको भी दुःख देता है। यह एक दुर्गुण है, जो छोड़ने योग्य है।

हेतावीर्ष्युः फले नेर्ष्युः॥

—चरकसंहिता

[हेतु में ईर्ष्या करनी चाहिये (इसी को स्पर्द्धा कहा जाता है।); फल में नहीं।]

किसी को यदि सुख सामग्री प्राप्त हुई है तो हमें उसके हेतुओं पर विचार करना चाहिये कि उसने कितनी बुद्धिमत्ता और परिश्रम के द्वारा वह सामग्री अर्जित की थी। उसके समान सुख–सामग्री अर्जित करने के लिए हमें भी उतनी बुद्धिमत्ता और परिश्रम से काम लेना चाहिये। इतना ही नहीं; बल्कि उसके कुछ अधिक सुखसामग्री प्राप्त करनेका भी प्रयास किया जा सकता है।

दूसरों के धन पर ललचाने वाला उसे छीनने की कोशिश कर सकता है– इस प्रकार ईर्ष्या उसे इन्सान से शैतान बना सकती है, बना देती है।

लोगों में ईर्ष्या के भाव पैदा न हों– इसके लिए विचारकों ने सलाह दी है– सादा जीवन बिताने की। महर्षि ताओ (चीन के महात्मा) कहते है :–

"लोगों के बीच अपना बड़प्पन दिखाना छोड़ दो; ईर्ष्या रुक जायगी।"

लोग यदि समृद्धि देखकर जलते हैं– बहुमूल्य आभूषण देखकर जलते हैं– भड़कीली पोशाक देखकर जलते हैं तो आप इनका त्याग कर दीजिये। "सादा जीवन उच्च विचार" का आदर्श अपनाइये, जिससे वे ईर्ष्या की आग में न जलें।

यह तो हुई दूसरों की बात; परन्तु अपने आपको ईर्ष्या की आग से बचाना तो आपके ही हाथ की बात है। किसी भी स्थिति में आप अपने भीतर ईर्ष्या पैदा मत होने दीजिये। वह पैदा हो गई तो आपका विवेक नष्ट हो जायगा :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी।।

(ईर्ष्या विवेक की दुश्मन है।)

और अविवेक संकटों का कारण है :-

अविवेकः परमापदां पदम्।।

(विवेक न रहने पर बड़ी-बड़ी आफतें आ खड़ी होती हैं।) अतः अविवेक से बचने के लिए ईर्ष्या से बचे रहना पड़ेगा। प्रभु महावीर ने कहा था :-

सव्वत्थ विणीय मच्छरे।।

—सूत्रकृतांगसूत्र

(सब जगह ईर्ष्याभाव से दूर रहो।)

ईर्ष्या से ठीक उल्टी प्रमोदभावना है। दूसरों को सुखी देखकर जलना यदि ईर्ष्या है तो दूसरों को सुखी देखकर प्रसन्न होना प्रमोद है। कहा है :-

सुरम्यान् कुसुमान् दृष्ट्वा यथा सर्वः प्रसीदति।
प्रसन्नानपरान् दृष्ट्वा तथा त्वं सुखमाप्नुयाः।।

—रश्मिमाला ८/७

[सुन्दर फूलों को देखकर जिस प्रकार सब लोग प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार दूसरे लोगों को प्रसन्न देखकर तू भी सुख का अनुभव कर।]

यदि दूसरों की प्रसन्नता से हम प्रसन्न रहें और हमारी प्रसन्नता से दूसरे प्रसन्न रहें तो किसीको स्वर्ग पाने की इच्छा ही न रहे। यह दुनिया ही स्वर्ग बन जाय। दुनिया को स्वर्ग बनाने के लिए– सब जगह सुख का अनुभव करने के लिए प्रमोद भावना को अधिक से अधिक परिणाम में अपनाने की जरूरत है। वह दिन धन्य होगा, जब प्रत्येक मनुष्य के हृदय में प्रमोद-भावना लहराती दिखाई देगी।

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदः।।

[प्राणियों से मित्रता और गुणियों को देखकर प्रमोद भावना मनमें उत्पन्न होनी चाहिये।]

स्पर्द्धालु में महत्त्वाकांक्षा होती है। वह अपने से अधिक गुणी, समृद्ध या कलाकार को देखकर स्वयं भी उससे अधिक गुणी अधिक समृद्ध और अधिक उच्च कला बनने की चेष्टा करता है। इससे विपरीत ईर्ष्यालु उससे जलता है और अपनी जलन मिटंने के लिए उसकी टाँग खींचकर उसे भी नीचे गिराने की कोशिश करता है।

ईर्ष्यालु बहुत असहिष्णु होता है। वह अपने से छोटों के बीच ही रह सकता है। वह सदा हीन-भावना (इन्फीरियोरिटी काम्प्लेक्स) का शिकार रहता है; क्योंकि वह जिससे ईर्ष्या करता है, उसे अपनेसे बड़ा मान लेता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ईर्ष्यालु को दुश्मन भले ही छोड़ दे– माफ कर दे; परन्तु स्वयं ईर्ष्या उसे नहीं छोडती– उसका सर्वनाश करके ही वह दम लेती है।

ईर्ष्या एक ऐसा रोग है, जिसका कोई अन्त नहीं होता–कोई इलाज नहीं होता–कहा है:–

य ईर्ष्युः परिवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये।
सुख–सौभाग्य–सत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः॥

–विदुरनीतिः

[जो व्यक्ति दूसरों के धन, रूप, शक्ति, वंश, सुख, सौभाग्य और सत्कार पर ईर्ष्या करता है (जलता है) उसका रोग अनन्त (असाध्य) है।]

लक्ष्मी की बहिन है – दरिद्रता। ईर्ष्या से मनुष्य दरिद्र क्यों होता है ? इसका कारण बताते हुए सुप्रसिद्ध विचारक तिरुवल्लुवर कहते हैं :–

"लक्ष्मी ईर्ष्यालु के पास नहीं रहती। ईर्ष्यालुको वह अपनी बहिन दरिद्रता के हवाले कर देती है।"

यद्यपि दरिद्रता कोई नहीं चाहता; परन्तु उसे पैदा करने वाली ईर्ष्या को छोड़ने के लिए भी कोई तैयार नहीं होता।

ईर्ष्या लोगों की आदत बन गई है। अगर एक व्यक्ति को सरकार की ओर से कोई पुरस्कार या पदक अथवा पद मिल जाता है तो दूसरे उससे जलने लगते हैं। यदि एक व्यापारी कुछ अधिक कमाई कर लेता है तो पड़ौसी दूकानदार जलभुन कर राख बन जाता है। यदि देवरानी और जेठानी में से किसी एक का जेवर खो जाय अथवा चोरी चला जाय तो दूसरी अपने जेवर के लिए नहीं रोती; किन्तु इस विचार से रोती है कि– अरे रे! उसका क्यों रह गया ? वह क्यों नहीं गुमा ? उसे चोरने क्यों छोड़ दिया ?

एक आदमी गुलाब के फूलोंको खरल में पीस रहा था। किसी दार्शनिक ने पूछा :– "यह किस अपराध का दण्ड दिया जा रहा है आपको ?"

एक फूलने उत्तर दिया :– "भाई साहब! दुनिया बड़ी ईर्ष्यालु है। उससे हमारा हँसना–मुस्कुराना देखा नहीं गया; इसलिए हमें पीस रही है, किन्तु हम तो पहले जब जीवित थे, तब भी दूसरों को अपनी खुशबू दे रहे थे, आज भी इस पीसने वाले को खुशबू दे रहे हैं और भविष्य में इत्र बनने पर भी खुशबू देते रहेंगे!"

एक कहावत है :– "देने वाला देता है और भंडारी का पेट दुखता है।" यदि मालिक स्वयं अपना धन दान करता है तो इसमें भंडारी को दिल छोटा करने की क्या जरूरत है ? उसे क्यों बुरा लगना चाहिये ? ईर्ष्यालु स्वभाव ही उसका एक मात्र कारण है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

राजस्थानी एक कहावत इस प्रकार है :– "पराये दुःख दुबला थोड़ा! पराये सुख दुबला घणा!"

स्पष्ट ही इसमें ईर्ष्या पर चोट की गई है। नीतिकारोंने जिन छह दुःखी व्यक्तियों की सूची प्रस्तुत की है उनमें ईर्ष्यालु को सबसे पहले याद किया गया है। सूची देखियें :–

इर्ष्यो घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।
परभाग्योपजीवीच षडेते दुःखभागिनः॥

–महाभारतम् ५/१०५६

(ईर्ष्यालु, घृणा करने वाला असन्तुष्ट, क्रोधी, शङ्काशील और परावलम्बी–ये छह व्यक्ति दुःख भोगते रहते हैं।)

एक सेठजी थे। उनके घर पर एक दिन दो पंडित आये। दोनों को अपने–अपने पाण्डित्य पर अभिमान था। उनकी पारस्परिक चर्चाएँ सुनकर सेठजी बहुत चकित हुए; क्योंकि दोनों तर्क के बल पर एक दूसरे की बात का खण्डम कर रहे थे। उधर घर में रसोई बन चुकी थी; इसलिए सेठजी ने प्रार्थना की, कि–आप पहले स्नान–ध्यान से निवृत्त हो लीजिये। फिर भोजनके बाद खुशीसे दिन–भर वाद–विवाद करते रहियेगा।'

एक पंडित बाल्टी उठाकर नहाने के लिए कुएँ पर गया। उसके जाने पर दूसरे ने सेठजी से कहा कि नहाने से क्या होता है ? मछलियाँ चौवीसों घंटे जल में रहती हैं तो क्या इसीसे वे पवित्र हो जाती हैं ? जल से आत्मा की शुद्धि माननेवाला पंडित नहीं, गधा है!

यह बात सुनकर सेठजी कुएँ पर चले गयें और वहाँ नहाने वाले पंडित से कहा कि घर पर जो पंडितजी बैठे हैं, उन्होंने मछली के उदाहरण से यह प्रतिपादित किया है कि जल से आत्मशुद्धि नहीं हो सकती। आपका क्या उत्तर है इस पर ?

ईर्ष्या से जले–भुने पंडित ने कहा :– "अरे वह तो पूरा बैल है! क्योंकि बैल स्वयं नहीं नहाता। उसे उसका मालिक ही जबर्दस्ती नहलाता है। नहाने का महत्त्व मनुष्य समझ सकता है, बैल नहीं।"

वहाँ से सेठजी रसोईघर की तरफ बढ़े। वहाँ अपनी लडकी से कुछ कान में कहा और फिर वहाँ से बैठक रूम में चले आये। टेंबल के तीन ओर तीन कुर्सियाँ लगी थीं। एक पर सेठजी वैठ गये और शेष दोनों कुर्सियों में से प्रत्येक पर एक–एक पंडित बैठा।

सेठजी के इशारे पर उनकी कन्याने एक थाली में घास और दूसरी में भूसा परोस कर दोनों के सामने एक-एक थाली रख दी। फिर सेठजी की थाली में भोजन परोस कर उनके सामने रख गई।

सेठजीने कहा :– "खाइये!"

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दोनों पंडितों को सेठजी पर बड़ा क्रोध आया। बोले :– "क्या यही खिलाने के लिए आपने हमें आमन्त्रित किया था?"

सेठजी :– "मैंने तो भोजन खिलाने के ही लिए आपको आमन्त्रित किया था; परन्तु आपने एक–दूसरे का जो परिचय दिया था, उसीके अनुसार मैंने भोज्य पर्दाथ परोसवाया है।"

दोनों पंडित :– "कौनसा परिचय?"

सेठजी :– "इतनी जल्दी भूल गये ? जब ये नहाने गये तब आपने कहा था कि वह गधा है और जब मैं कुएँ पर गया, तब इन्होंने कहा कि वह तो बैल है; इसलिए गधेकी खुराक घास और बैलकी खुराक भूसी आपको परोसी गई।"

दोनों पंडित इससे लज्जित हुए और वहाँ से उठकर चलते बने। कहा गया है :–

पण्डितो पण्डितं दृष्ट्वा श्वानवद् गुर्गुरायते ॥

(एक पंडित दूसरे पण्डित को देखकर कुत्ते की तरह गुर्राता है।)

इसका कारण क्या है? केवल ईर्ष्या। उसी दुर्गुण के कारण उस दिन उन्हें लज्जित अपमानित और क्षुधित रहना पड़ा। ईर्ष्यालुओं की ऐसी दुर्दशा का वर्णन सुनकर भी क्या हम ईर्ष्यावृत्ति को निर्मूल करने का कोई संकल्प नहीं लेंगे ?

एक और उदाहरण सुनिये– हेमू श्रावक का। किसी बादशाहके यहाँ उन्हें वित्तमन्त्रीका पद मिल गया।

बादशाह हिसाब की जाँच करते थे और यदि कोई भूल उसमें निकल आती तो दण्डस्वरूप हिसाब का वह पूरा पन्ना खाने का आदेश देते थे; इसलिए लोग वित्तमन्त्रीका पद लेने को तैयार नहीं होते थे। हेमू ने यह बात सुन रक्खी थी, अतः वे पूरी सावधानी से आय–व्यय का विवरण तैयार करके बादशाहको बताया करते थे। एक दिन किसी कामसे उन्हें बाहर जाना था। उस दिन अपने बूढे सचिव को हिसाब बताने का कार्य सौंप गये। हिसाब में गलती की सम्भावना से भयभीत सचिव को वे एक उपाय भी सुझा गये।

दूसरे दिन सचिव बताने गया। गलती पकड़ी गई। हिसाब का पन्ना खाने का आदेश मिला। सचिव बड़े आराम से उसे खा गया। खाते समय उसके चेहरे पर कोई शिकन न देखकर चकित बादशाह ने उसका जब कारण पूछा तो उसने बताया कि हेमूजी की सलाह से मैंने पन्ने के आकार की रोटी बनवाकर उस पर हिसाब लिखा था; इसलिए उसे बहुत आराम से मैं खा गया। रोटी खाने में भला क्या परेशानी होती?

बादशाहने भरी सभा में जब हेमूजी की प्रशंसा की तो उससे मुल्ला लोग जल–भुन गये। बोले – "ऐसे समाधान तो हम भी कर सकते हैं। आप हमारी परीक्षा लेकर देखियें।"

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बादशाहने कहा :– "अच्छी बात है। मैं आपसे एक प्रश्न करता हूँ। देखता हूँ कि कौन उसका ठीक उत्तर देता है। जिसका उत्तर ठीक होगा, मैं उसीको प्रधानमन्त्री का पद दे दूँगा। इस प्रतियोगिता– परीक्षा मे हेमूजी भी शामिल होंगे। यद्यपि वे आज छुट्टी पर हैं; परन्तु कल तो वे आएँगे ही। वही प्रश्न उन्हें भी पूछ लूँगा।"

सब मुल्ला बोले :– "ठीक है। हमें मंजूर है। आप फौरन अपना सवाल पेश कीजिये। हम अभी उसका ठीक उत्तर देकर प्रधानमन्त्री पद हथिया लेते हैं।"

बादशाह,– "मैं जानना चाहता हूँ कि ऐसा कौनसा कार्य हैं ? जिसे मैं तो कर सकता हूँ; लेकिन खुदा नहीं कर सकता! बताइये।"

सवाल सुनते ही सबके चेहरे नीचे लटक गये; क्योंकि न बादशाह को अपमानित किया जा सकता था और न खुदा को! बड़ा पेचीदा सवाल था। उत्तर सूझ नहीं रहा था; उन्होंने चौबीस घंटे तक सोचने की मोहलत माँग ली। बादशाहने मोहलत दे दी।

मुल्ला रात–भर कुरानका पारायण करते रहे; परन्तु उन्हें कहीं भी इस सवालका माकूल जवाब नहीं मिला। आखिर परेशान होकर उन्होंने जवाब ढूँढने की कोशिश बन्द कर दी और मन–ही–मन इस कल्पना से प्रसन्न होने लगे कि हेमूजी इस जालमें बुरी तरह फँस जायेंगे; क्योंकि खुदा का या बादशाह का–किसीका भी उनके उत्तर से अपमान हुआ तो उन्हें फाँसी पर लटकवा देंगें; इस प्रकार हमारे बीचका काँटा हमेशाके लिए साफ हो जायगा।

दूसरे दिन इसी खुशी को मनमे दबाये हुए वे राजदरबार में जा पहुँचे। हेमूजी वहाँ पहले से ही मौजूद थे। बादशाहने कहा :–

"चौबीस घंटेकी मोहलत खत्म हो चुकी है। मेरे सवालका जवाब किसी को सूझा हो तो पेश करे।"

किसीको सूझा होता तो पेश करता! सबके सब खामोश रहे।

आखिर हेमूजी से वही सवाल पूछा गया। उन्होंने सवाल सुनते ही जवाब दिया :– "जहाँपनाह! आप किसीको देश निकाला दे सकते हैं; परन्तु खुदा यह कार्य नहीं कर सकता; क्योंकि आपकी सल्तनत सीमित है, खुदा की नहीं। सारी दुनिया उसी की है। किसीको वह निकालकर कहाँ भेजेगा ? भेज ही नहीं सकता।"

हेमूजी की बुद्धिमत्ता से प्रसन्न होकर उन्हें पदोन्नत कर दिया गया। वित्तमन्त्री से उन्हें प्रधानमन्त्री बना दिया गया।

वित्तमन्त्री का पद रिक्त हुआ। उस पर किसी मुल्ला को बिठाया गया। हेमू श्रावक की पदोन्नति से जले–भुने मुल्लाओंने वित्तमन्त्री से मिलकर एक कठोर प्रस्ताव बादशाह से पारित करवा लिया। उसके अनुसार हिन्दुओं पर और खास करके जैन श्रावकों पर बहुत–सारे टैक्स लाद दिये गये। जो टैक्स नहीं चुका पाते, उन्हें जेलमें डाल दिया जाता। इस प्रकार श्रावकों

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से जेलें भर गईं।

श्रावक हेमूको यह सब देखकर बहुत दुःख हुआ। पीड़ितोंको अत्याचार से बचाना उसका धर्म था। कर्त्तव्य था। अपने श्रावक बन्धुओं को बचाने का वह उपाय सोचने लगा।

ईर्ष्यालु मुल्लाओंने सोचा कि हेमू अच्छा कैंचीमें फँस गया है। यदि वह अपने समाज के भाईयों को बचाने के लिए कुछ नहीं करता तो वे सब इससे नाराज होंगे कि प्रधानमन्त्री होकर भी हमें बचा नहीं सका! कितना खुदगर्ज है? और यदि उन्हें बचाने के लिए कुछ भी किया तो उससे बादशाह सलामत नाराज होंगे और इसे पद से हटा देंगे।

बादशाह जब शिकार खेलने जाते थे, तब अपनी राजमुद्रा प्रधानमन्त्री को सौंप जाते थे। एक दिन जब वे शिकार खेलने गये तो पीछे से एक कागज पर राजमुद्रा लगाकर बादशाह की ओर से हेमूजीने यह फरमान निकाल दिया कि टैक्स न चुकाने के अपराधमें जिन–जिनको जेलमें डाला गया है, उन सबको छोड़ दिया जाय।

किसकी ताकत थी? जो राजमुद्रा से निकले फरमान को अमल में लाने से इन्कार करता? सबके सब जेल से छोड़ दिये गयें।

उधर बादशाह जब शिकार से लौटा तो ईर्ष्यालुओंने कहा :– "जहाँपनाह! आपकी गैरहाजरी में आपकी राजमुद्रा का दुरुपयोग करके हेमूने सभी श्रावकों को जेल से रिहा करवा दिया। अब इस बात की उसे क्या सजा दी जाय? सो आप सोचें।"

यह सुनकर सचमुच बादशाहको गुस्सा आ गया। उन्होंने प्रधानमन्त्री हेमू को बुलाकर तेज आवाजमें कहा,– "क्या हमने तुम्हें राजमुद्रा इसलिए दी थी कि हमारी गैरहाजरी में तुम टैक्स न चुकाने वाले गुनहगारों को भी रिहा कर दो? जानते हो, इसका नतीजा क्या होगा? प्रधानमन्त्रीपद से ही नहीं, तुम्हें अपने प्राणोंसे भी हाथ धोना पड़ेगा! अपनी सफाई में तुम कुछ कहना चाहते हो तो कहो।"

हेमूने कहा :– "जहाँपनाह! मैंने आपका नमक खाया है। मैं आपको धोखा नहीं दे सकता। आपका बुरा नहीं सोच सकता। जो लोग जेलमें डाले गये थे, वे सब आपको बददुआ दे रहे थे। खुदासे कह रहे थे कि आपकी सल्तनत का सत्यनाश हो। मैं आपका सेवक हूँ। आपके सल्तनत की रक्षा करना मेरा फर्ज है; इसलिए मैंने उन सब को रिहा करवा दिया। रिहा होते ही वे खुदासे आप के लिए दुआएँ माँगने लगे। कहने लगे कि हमारे बादशाह बहुत अच्छे हैं। उन्हें सदा सलामत रखना। अब आप ही सोचिये, मैंने क्या बुरा किया!"

यह सुनकर बादशाह खुश हो गये और हेमू का वेतन उन्होंने और बढ़ा दिया। बुद्धि से ईर्ष्या इसी तरह हारती है।

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

९: उदारता

विशाल ह्रदयी महानुभावो!

ह्रदय की विशालता में उदारता का निवास होता है और संकुचितता में कंजूसीका:–

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

(यह अपना हैं– यह पराया है; ऐसी बात छोटे मनवाले सोचते हैं। जिनका चरित्र उदार है, उनके लिए तो सारी पृथ्वी ही एक कुटुम्ब के समान है।)

पेड़को देखिए। वह पशु–पक्षियों को आश्रय देता है। मुसाफिरों को अपनी छायामें विश्राम देता है। पत्थर फेंकने वालोंको भी उदारतापूर्वक फल देता है।

तिरूवल्लुवरका कथन है :–

"उदार आदमीका वैभव गाँव के बीचों बीच उगे हुए फलों से लदे वृक्षो के समान है।"

जिस प्रकार उस फलदार वृक्षके फलों का उपयोग गाँव के सब लोग आसानी से कर सकते हैं, उसी प्रकार उदार सज्जन की सम्पत्तिका उपभोग भी सब लोग आसानी से कर सकते हैं।

उदारता अधिक से अधिक दे डालने मे नहीं; किन्तु समझदारी के साथ देने मैं है। उदार उड़ाऊ नहीं होता। वह फिजूलखर्ची से दूर रहता है। जहाँ देना अत्यन्त जरूरी समझता है, वहीं देता है।

उदारता अपराधी पर भी करूणा बरसाती है :–

कृतापराधेऽविजने, कृपामन्थरतारयोः।
ईषद्बाष्पार्द्रयोर्भद्रम् श्रीवीरजिननेत्रयोः॥

[अपराध करने वाले (उपसर्ग करके कष्ट देनोले संगम नामक देव) पर भी करूणा से मन्थर (मन्दगतिवाली) कनीनिकाओं से युक्त आँसुओंसे कुछ भीगे प्रभु महावीर के दोनों नेत्रोंका कल्याण हो।]

यहाँ प्रभुकी आँखों में आँसू कष्टों के कारण नहीं आये; परन्तु इस कारण आये कि यह कष्ट देनेवाला बेचारा दुर्गति पायेगा–नरकमें जायगा और वहाँ असह्य कष्टों से तड़पेगा! उन आँसुओं के पीछें थी– उनकी करूणा, वत्सलता और उदारता!

उदार व्यक्ति सहज हितकारी होता है। याचक से उसकी तुलना करते हुए कहा गया है :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देहि देहीति जल्पन्ति त्यागिनोऽप्यर्थिनोऽपिव।
आलोकयन्ति रभसा दस्ति नास्तीति न क्वचित्

–शाङ्गधरपद्धतिः

["दे दो, दे दो" ऐसा त्यागी और याचक दोनों कहते हैं; परन्तु हड़बड़ी में यह नहीं देखते कि (जिस चीज को देने के लिए कहा जा रहा है) वह है भी या नहीं!]

याचक तो यह सोचता ही नहीं कि जो वस्तु मैं माँग रहा हूँ, वह दाता के पास मौजूद है या नहीं; परन्तु दाता भी इस बातका विचार नहीं करता। इस प्रकार दोनों समान सिद्ध हुए।

त्यागी की उदारता का कारण एक कवि के शब्दों में इस प्रकार है :–

उत्पादिता स्वयमियं यदि तत्तनूजा
तातेन वा यदि तदा भगिनी खलु श्रीः ।
यद्यन्य संगमवती च तदा परस्त्री
तत्त्यागबद्धमनसः सुधियो भवन्ति।।

–भर्तृहरिः

(यदि लक्ष्मीका स्वयं हमने उत्पादन किया है तो वह हमारी पुत्री है। यदि पिताजीने उसका उत्पादन किया है तो वह बहिन है। यदि लक्ष्मी दूसरों की है तो वह परस्त्री है; इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति हमेशा उसका त्याग करने की बात सोचते रहते हैं।)

उदार व्यक्ति दूसरों को माँगनेका भी अवसर नहीं देते। किसी तरह आवश्यकता का पता चलते ही सहायता के लिए दौड़ पड़ते हैं :–

आकारमात्रविज्ञान सम्पादितमनोरथाः।
ते धन्या ये न शृण्वन्ति दीनाः प्रणयिनां गिरः।।

–सुभाषितावलिः।।

[आकार मात्र (चेहरे) से (याचक या अर्थी की) आवश्यकताको जानकर उसका मनोरथ पूर्ण करनेवाले वे लोग धन्य हैं, जो प्रेमियों के कातर वचन नहीं सुनते।]

त्याग और भोग करनेवाला ही वास्तव में धनवान् है; अन्यथा :–

त्याग भोगविहीनेन, धनेन धनिनो यदि।
भवासः किं न तेनैव, धनेन धनिनो वयम्।।

–शाङ्गधरपद्धतिः

[त्याग और भोग से रहित धन से यदि कोई धनवान् है तो उसी धन से हम धनवान क्यों नहीं हैं ? (अवश्य हैं।)]

जो त्याग और भोगसे दूर रहता है– बचता है, वह कृपण (कंजूस) कहलाता है। एक कविने उसके व्यवहार पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा है :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शरणं किं प्रपन्नानि? विषवन्मारयन्ति किम्?
न त्यज्यन्ते न भुज्यन्ते कृपणेन धनानि यत् ॥

—सुभाषितावलिः

(कृपण धनका त्याग नहीं करता तो क्या वह शरण आ गया है? धनका वह भोग नहीं करता तो क्या वह जहर की तरह मार डालता है?।)

कंजूस के पास धन होता है तो उदारता नहीं होती और निर्धन के पास उदारता होती है, पर धनका अभाव होने से वह उदारता का उपयोग नहीं कर पाता। एक निर्धन कविने ब्रह्मा से प्रार्थना की है :–

धनं यदिह मे दत्से विधे! मा देहि कर्हिचित्।
औदार्यं धनिनो देहि यन्मदीये हृदि स्थितम्॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारम्

[हे विधाता! यदि तू मुझे धन देना चाहता हो तो बिल्कुल मत देना। मेरे हृदय में जो उदारता है, वह तू धनवानों को दे देना! (बस, इससे सारा काम ठीक हो जायगा।)]

कंजूस की भला दाता से क्या समानता? परन्तु "जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि" वाली उक्ति को चरितार्थ करने वाला एक सुभाषित प्रस्तुत है :–

लुब्धो न विसृजत्यर्थं, नरो दारिद्रयशङ्कया।
दातापि विसृजत्यर्थं, ननु तेनैव शङ्कया ॥

—कुवलयानन्दः

(गरीबीकी आशंका से लोभी धनका त्याग नहीं करता; किन्तु इसी आशंका से दाता धनका त्याग करता है।)

दाता सोचता है कि पूर्वजन्म में दिये गये दान के प्रभावसे ही इस जन्म में धन मिला है; इसलिए यदि इस जन्म में दान न किया तो अगले जन्म में निर्धन बनना पड़ेगा! एक कवि ने तो कंजूस को ही सबसे बड़ा दानी मान कर इस श्लोक द्वारा अपनी बात सिद्ध की है :–

कृपणेन समो दाता, न भूतो न भविष्यति।
अस्पृशन्नेव वित्तानि यः परेभ्यः प्रयच्छति॥

—कवितामृतकूपः

[कंजूस से बड़ा दाता न तो हुआ है और न होगा; जो बिना स्पर्श किये ही अपना (सम्पूर्ण) धन दूसरों को दे देता है!]

आशय यह है कि– वह अपना धन अपने हाथ से नहीं देता; परन्तु मरने के बाद वह सम्पूर्ण धन दूसरों के पास चला जाता है। पाई–पाई जोड़ी उसने, कष्ट उठाया उसने; किन्तु मालिक दूसरे ही बन जाते हैं :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ते मूर्खतरा लोके येषां धनमस्ति नास्ति च त्यागः।
केवलमर्जन्रक्षण वियोगदुःखान्यनुभवन्ति।।

–सुभाषितावलिः

[जिन के पास धन है, फिर भी उसका जो त्याग नहीं करते, वे लोग इस दुनियामें अधिक मूर्ख हैं; क्योंकि वे केवल धन के अर्जन, रक्षण और वियोग (चुरा लिये जाने पर होने वाले विरह) के दुःखोंका अनुभव करते हैं।]

पृथ्वी भी ऐसे ही लोगों से भार का अनुभव करती है–ऐसा श्री हर्ष कवि का कथन है :–

याचमान– जन– मानसवृत्तेः पूरणाय बत जन्म न यस्य।
तने भूमिरतिभारवतीयम् न द्रुमैर्न गिरिभिर्न समुद्रैः।।

–नैषधीय चरितम्

याचक की मनःकामना पूर्ण करने में जिसका जीवन नहीं लगता, उसी से यह भूमि भारवती है– न पेड़ोंसे न पहाड़ों से और न समुद्रों से!)

उदार सज्जन समझते हैं कि दूसरों की भलाईमें ही अपनी भलाई है :–

The best way to do good
to ourselves, is to do it to
others; the right way to
gather is to scatter.

(आत्मकल्याणं का सबसे अच्छा तरीका है– दूसरोंका कल्याण करना; एकत्र करनेका ठीक उपाय है– बिखेरना!)

भीनमालनगरी में उत्पन्न हुए महाकवि माघ, कवित्वसे भी अधिक अपनी उदारता के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी पत्नीका नाम था लक्ष्मी। जैसा कि कहा है :–

तस्याभूद् गेहिनी लक्ष्मीर्लक्ष्मीर्लमीपतेरिव।।

[लक्ष्मीपति (विष्णु)की लक्ष्मी के समान उन (माघ कवि) की गृहिणी का नाम लक्ष्मी था।]

उदारता में वह भी अपने पतिदेव से पीछे नहीं रहती थी।

एक दिन की बात है। किसी याचक ने उनके निवास पर आकर प्रार्थना की :– "महोदय! मुझे अपनी कन्या का विवाह करना है। यदि आप कुछ सहायता कर देंगे तो बड़ी कृपा होगी। बहुत दूर से मैं आपका नाम सुनकर आया हूँ।"

महाकवि के पास उस दिन एक भी स्वर्णमुद्रा नहीं थी; परन्तु याचक को निराश करना उनकी प्रकृति के विरूद्ध था। वे उठे। घरमें गये। पत्नी पलंगपर लेटी थी। उसे निद्रा आ रही

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

थी। धीरे–धीरे कविने उसके हाथ से सोने का कंगन निकाला और बाहर खड़े याचक को दे दिया।

कंगन निकालते समय ही पत्नी की नींद खुल गई थी; फिर भी वह आँखें बन्द किये लेटी रही– यह देखने के लिए कि कवि कंगन का क्या करते हैं? बाहर जाकर कविने जब याचक को कंगन देते हुए कहा :– "जाओ। इस कंगन से अपनी कन्या का विवाह कर दो!" तब सब कुछ समझकर लक्ष्मी देवी तत्काल बाहर आकर लौटनेवाले याचक से बोली :– "ठहरो! यह एक कंगन और ले जाओ। एक कंगन से भला शादी कैसे होगी?"

यह कहते हुए उसने अपने दूसरे हाथ से दूसरा कंगन निकालकर उसे सहर्ष दे दिया।

याचक दोनों को प्रणाम करके बिदा हुआ; परन्तु बहुत कुछ सोचनेपर भी उसकी समझ में यह नहीं आ सका कि उदारता में किसे आगें माना जाय– पतिको या पत्नी को!

उन दिनों एक बार घोर अकाल पड़ा। अकाल को दुर्भिक्ष भी कहते हैं :– **"दुःखेन भिक्षा लभ्यते यस्मिन् काले स दुर्भिक्षः"** (बहुत कठिनाईसे जिसमें भिक्षा प्राप्त हो, उस काल को दुर्भिक्ष कहते हैं।)

उस दुर्भिक्ष से व्यथित महाकवि माघने अपनी पत्नी से कहा :–

न भिक्षा दुर्भिक्षे पतति दुरवस्थाः कथमृणम्
लभन्ते कर्माणि द्विजपरिवृढान्कारयतिकः?
अदत्त्वैव ग्रासं ग्रहपतिरसावस्तमयते
क्व यामः? किं कुर्मो? गृहिणि! गहनो जीवनविधिः

[इस दुर्भिक्षकाल में भिक्षा नहीं मिलती। हम जैसे निर्धनों को कर्ज कैसे मिल सकता है? (नहीं मिलता; अन्यथा उसीसे कुछ दिन काम चला लिया जाता) हमारे जैसे श्रेष्ठ ब्राह्मण को कोई काम पर भी नहीं रखता (अन्यथा नौकरी करके ही गुजारा कर लेते) यह सूर्य हमें ग्रास दिये बिना ही अस्ताचल की ओर चला जा रहा है (दिन–भर से हम दोनों भूखे बैठे हैं।) कहाँ जायें? क्या करें? हे पत्नी! जीवित रहने की विधि बड़ी गम्भीर है।]

यह सुनकर पत्नीने सुझाव दिया कि हम यह स्थान छोड़ कर कुछ वर्षो के लिए धारा नगरी में चलें। वहाँ राजा भोज बड़े उदार हैं और वे कवियोंका बहुत सम्मान करते हैं। वहाँ दुर्भिक्ष के ये दिन बड़े आराम से गुजर जायँगे।

सुझाव मान लिया गया। दोनों धारा नगरी जा पहुँचे। नगर के बाहर एक बगीचे में दोनों ठहरे। दूसरे दिन कविने अपनी पत्नी के साथ एक श्लोक महाराज भोज के पास भेजा। महाराज ने उसे पढ़ा :–

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डम् त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तम् हतविधिलसितानां ही विचित्रो वपाकः।।

–शिशुपालवधम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

[कुमुदों (चन्द्र से विकसित होने वाले कमलों)का समूह शोभाहीन हो गया है और अम्भोजोंका (सूर्यकिरणों से विकसित होनेवाले कमलों का) समूह खिल रहा है–सुशोभित हो रहा हैं। उल्लू की प्रसन्नता नष्ट हो रही है (क्योंकि उसे रातको ही दिखाई देता है) और चक्रवाक प्रसन्न है– सूर्यका उदय हो रहा है और चाँद अस्ताचल को जा रहा है। दुर्भाग्यशालियोंकी बहुत विचित्र स्थिति हो जाती है!]

इस श्लोक में प्रातःकालका वर्णन करने के बहाने यह प्रकट कर दिया गया था कि आप सौभाग्यशाली हैं और हम दुर्भाग्यशाली। आप आराम से भोजन करते हैं और हम भूखें है। इस प्रकार राजा के साथ अपनी विषमता का विवरण था। यह आश्चर्यकी बात भी थी और खेद की भी! आश्चर्य और खेद–दोनों अर्थ रखने वाले अव्यय "ही"का अन्तिम पंक्तिमें जो अछूता अनोखा प्रयोग किया गया था, उससे भी महाराज भोज बहुत प्रसन्न हुए। उन्हों ने तत्काल एक लाख स्वर्णमुद्राएँ लक्ष्मीदेवी को पुरस्कार स्वरूप दे दीं और कहा कि कल मैं स्वयं महाकविके दर्शन करने आऊँगा।

लक्ष्मीदेवी मुद्राओंका थैला किसी राजमहल के भृत्यसे उठवाकर चली आ रही थी और मार्ग में आनेवाले याचकों को दोनों हाथों से स्वर्णमुद्राएँ दान भी करती जा रही थी।

परिणाम यह निकला कि जब वह बगीचे में पहुँची, तब देखने पर पता चला कि थैले में एक भी मुद्रा नहीं बची है।

कविने पूछा :– "क्या राजा भोजको मेरा काव्य पसन्द नहीं आया ?"

लक्ष्मी :– "आपका काव्य भला कौन पसन्द नहीं करेगा ? राजा भोज उसे पढ़ कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कल स्वयं आपके दर्शनार्थ यहाँ आनेका वचन भी दिया है।"

कवि :– "जब वे इतने प्रसन्न हुए, तब कोई पुरस्कार क्यों नहीं दिया ? हमने तो उनके विषय में सुना था :–

प्रत्यक्षरं लक्षमदत्त भोजः।।

(यदि राजा भोज को कोई श्लोक पसंद आ जाय तो वे उसके प्रत्येक अक्षर पर एक लाख स्वर्णमुद्राएँ दे देते हैं; किन्तु तुम्हें तो कुछ भी नहीं दिया!"

पत्नी :– "दिया कैसे नहीं ? उन्होंने तो एक लाख स्वर्णमुद्राएँ इस थैलेमें भरकर दी थी; परन्तु मार्ग में आपका नाम ले–लेकर अनेक याचक मिलतें रहे और मैं उन्हें मुद्राएँ देती रही; इसलिए घर आते–आते एक भी नहीं बच पाई!"

माघ :– "शाबाश! तुम मेरे लायक ही पत्नी हो। पत्नी सह धर्मिणी होती है। पति के धर्म में सहयोगिनी होती है। दान मेरा धर्म है। उस धर्म के पालन में सहयोग देकर तुमने एक सहधर्मिणी का ही कर्त्तव्य निभाया है।"

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हम कई दिनों से भूखे हैं। एक दिन और रह लेंगे तो कौनसा भारी पहाड़ टूट पडेगा? दरिद्रतारूपी आग को बुझाने के लिए हमारे पास सन्तोष है। वही वास्तविक धन है। तुम्हारी उदारतासे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है; फिर भी एक दुःख जरूर है :–

दारिद्रयानलसन्तापः शान्तः सन्तोषवारिणा।
याचकाशा विघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यतु?

[गरीबीकी आगका दुःख तो सन्तोष–जल से शान्त हो गया है; परन्तु घर आये याचकों की आशा टूटने का जो दुःख मनमें होगा, वह किससे शान्त किया जायेगा? (यह मुझें कुछ समझ में नहीं आ रहा है।)]

अगले दिन महाराज भोज उस बगीचे में आये। शिशुपालवधम् शीर्षक एक महाकाव्य रचा जा रहा था। उसके कुछ अध्याय महाकविने सुनाये। महाराज भोज ने अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। महाकवि के लिए उसी बगीचेमें एक सुन्दर भवन बना दिया और उनसे निवेदन किया कि आप इसमें बैठकर निश्चिन्ता पूर्वक अपनी रचना पूर्ण करें। यह एक ही पुस्तक आपकी प्रशंसा को दिग्दिगन्त में फैला देगी। आपका यश अमर हो जायगा। संस्कृत कवियों के हृदय में आपका स्थान सदा ऊँचा बना रहेगा।

महाराज प्रणाम करके राजमहल में लौट गये।

कुछ दिनों बाद माघ ने पत्नी से कहा :–

"क्षुत्क्षामः पथिको मदीयभवनं पृच्छन् कुतोऽप्यागतः
तत्किं गेहिनि! किञ्चिदस्ति यदयं भुङ्क्ते बुभुक्षातुरः?"

(भूख से दुबला–पतला कोई पथिक कहीं से मेरे भवनको पूछता–पूछता चला आया है। हे गृहिणि! क्या घरमें कुछ खाने की चीज है, जिसे भूख से पीड़ित यह व्यक्ति खा सके?)

इस प्रश्न के उत्तर में :–

वाचास्तीत्यभिधाय नास्तिच पुनः प्रोक्तं विनैवाक्षरैः।
स्थूल स्थूल विलोल लोचनभवैर्बाष्पाम्भसां बिन्दुभिः॥

(वाणी से "है" ऐसा कहकर "नहीं है" ऐसा बिना ही बोले लम्बी–लम्बी चंचल आँखों से निकले आँसुओंकी टपकाई गई बूँदोंसे कह दिया!)

क्योंकि उदारतावश "नहीं है" ऐसा कभी उनके मुँह से कहा ही नहीं गया था।

पत्नी की उस चेष्टा को देखकर कविने कहा :–

अर्था न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा
त्यागान्न संकुचति दुर्ललितं मनो मे!
याच्ञा च लाघवकरी स्ववधेच पापम्
प्राणाः! स्वयं व्रजत किं नु विलम्बितेन?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

[मेरे पास धन नहीं और दुराशा मुझे छोड़ती नहीं है (मेरे काव्य से प्रसन्न होकर लोग मुझे धन भेंट करते रहेंगें– ऐसी आशा मेरे मनमें बैठी रहती है) लाड़–प्यार से बिगड़ा मेरा मन त्याग से कभी संकुचित नहीं होता! (पीछे नहीं हटता!) याच्ञा (याचना) से लघुता उत्पन्न होती है (महत्त्व घटता है) और आत्महत्या में पाप लगता है; इसलिए हे प्राणो! तुम स्वयं ही चले जाओ। विलम्ब करने से क्या लाभ ?]

यह हार्दिक उद्गार सुनकर वह भूखा आदमी चुपचाप चला गया। उसे जाते हुए देखकर महाकविके हृदय से यह श्लोक प्रस्फुटित हुआ :–

व्रजत व्रजत प्राणाः! अर्थिनि व्यर्थतां गते।
पश्चादपि हि गन्तव्यम् क्व सार्थः पुनरीदृशः?

[याचक निराश लौट जाने पर हे प्राणो! तुम भी चले जाओ–चले जाओ! बादमें भी तो तुम्हें (कभी–न–कभी आयु पूरी होने पर) जाना ही है; परन्तु तब इतना अच्छा साथ कहाँ मिलेगा ?]

और सचमुच इस अन्तिम श्लोक के साथ ही महाकविने अन्तिम साँस छोड़ दी! उदारता का ऐसा उत्तम उदाहरण सारे विश्वमें दीपक लेकर ढूंढनेपर भी नहीं मिलेगा–ऐसा मैं समझता हूँ। इस उदारताका शतांश भी जीवन को आनन्द की सुगन्ध से भर सकता है।

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१०. कर्त्तव्य

कर्त्तव्य प्रेमियो!

जितने भी सद्‌गुण माने जाते हैं, उन सबका लक्ष्य है– कर्त्तव्यपालन। महात्मा गाँधी का कथन है :–

"कर्त्तव्य में मधुरता है।"

इस मधुरता का जो अनुभव करता है, वह सदा कर्त्तव्य परायण बना रहता है। कर्त्तव्य और प्रेम में संघर्ष होने पर वह कर्त्तव्य को ही चुनता है। कर्त्तव्य के लिए वह प्रेम का बलिदान कर देता है। वह फल की चिन्ता नहीं करता; क्योंकि उसे कर्त्तव्य में ही आनन्द की अनुभूति होने लगती है।

यदि हम प्रकृति की ओर दृष्टिपात करें तो पता चलेगा कि वहाँ सभी अपने–अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं। पृथ्वी सब प्राणियों को धारण कर रही है– जल सबकी प्यास बुझा रहा है– आग भोजन पका रही है– हवा सबको श्वासोच्छ्‌वास द्वारा जीवित रख रही है– वृक्ष फल और छाया दे रहे हैं– चन्द्र रात को जगमगाकर अँधेरे को भगा रहा है और सूर्य सर्वत्र प्रकाश फैलाकर सभी प्राणियों को जगा रहा है; तो फिर मनुष्य ही क्यों हाथ पर हाथ धर कर बैठा रहे? उसे भी अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये।

यदि हम ईमानदारी से अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं तो निश्चय ही हमारा भविष्य उज्ज्वल होगा।

'कृ' धातु में कृदन्त का "तव्य" प्रत्यय जुड़ने पर कर्त्तव्य बनता है, जिसका अर्थ है– करने योग्य कार्य अर्थात् जो कुछ हमें करना चाहिये, वह कर्त्तव्य है।

हमें क्या करना चाहिये? इस प्रश्न का एक उत्तर नहीं हो सकता; क्यों कि यह प्रश्न जिस परिस्थिति में पूछा जा रहा है, उसी के आधार पर कर्त्तव्य निर्धारित होगा। परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न होती है; इसलिए कर्त्तव्य भी भिन्न–भिन्न होंगे। उदाहरणार्थ :

गन्तव्यम् राजपथे॥

[राजमार्ग (सड़क) पर चलना चाहिये।]

परन्तु श्री हर्षकवि के अनुसार इसका अपवाद भी है :–

घनाम्बुना राजपथे हि पिच्छिले।
क्वचिद्बुधैरप्यपथेन गम्यते॥

–नैषधीयचरितम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(मेघ के जल से यदि राजमार्ग रपटीला हो जाय तो विद्वान् भी कभी–कभी वह मार्ग छोड़कर चलते हैं।)

त्याग भी एक कर्त्तव्य है; परन्तु कैसी कौनसी चीज का त्याग किया जाना चाहिये ? यह जानने के लिए "चाणक्य नीति" का यह श्लोक देखिये :–

त्यजेद्धर्मं दयाहीनम् विद्याहीनं गुरुं त्यजेत्।
त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्याम् निःस्नेहान् बान्धवांस्त्यजेत्।।

(दयारहित धर्म का, विद्यारहित गुरु का, क्रोधमुखी पत्नी का और प्रेमरहित बन्धुओं का त्याग कर देना चाहिये।)

धर्म का पालन कर्त्तव्य है; परन्तु जिस धर्म में क्रूरता के विधान हों– यज्ञों में पशुबलि की अनिवार्यता हो अथवा देवी के मन्दिर में बकरे या भैंस का बलिदान करना पड़ता हो, ऐसे धर्म का त्याग करना ही कर्त्तव्य होगा।

गुरूदेव की सेवा करना कर्त्तव्य है; परन्तु जो गुरु विद्वान न हो– हमारे प्रश्नों का उत्तर न दे सकता हो – जिज्ञासाओं का समाधान करने में सर्वथा असमर्थ हो, उस गुरु का त्याग ही कर्त्तव्य हो जायगा।

पत्नी का पालन करना कर्त्तव्य है; किन्तु जो पत्नी चिड़चिड़ी हो–दिनभर मुँह फुलाये बैठी रहती हो जरा–जरासी बातपर झगड़ने बैठ जाती हो; उसका त्याग कर देना कर्त्तव्य हो जायगा।

इसी प्रकार जिन कुटुम्बियों में हमारे प्रति स्नेह न हो, उनका भी त्याग करने की सलाह दी गई है।

आव नहीं आदर नहीं नहीं नयन में नेह।
'तुलसी' तहाँ न जाइये, कंचन बरसे मेह।।

"नीतिवाक्यामृत" नामक ग्रन्थ में निर्दिष्ट कुछ कर्त्तव्य इस प्रकार हैं :–

* **त्रीण्यवश्यं भर्त्तव्यानि माता**
* **कलत्रमप्राप्तव्यवहाराणि चापत्यानि।।**

(माता, पत्नी और जब तक कमाने–खाने योग्य न हो जाय, तब तक सन्तान–इन तीनों का भरणपोषण अवश्य करना चाहिये।)

* **आयानुरूपो व्ययः कार्यः।।**

(आमदनी के अनुसार ही खर्च करना चाहिये।)

हिन्दी में भी एक कहावत प्रसिद्ध है :–

"ते ते पाँव पसारिये जेती लम्बी सौर।।"

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सौर का अर्थ है–, चादर। हमें उतने ही पाँव फैलाने चाहियें, जितनी लम्बी चादर हो; अन्य था पाँव खुले रहेंगे। आशय यह है कि आय के अनुरूप ही व्यय करना चाहिये; अन्यथा उधार लेना पड़ेगा। उधार लेने से माल हल्का और महँगा मिलता है; इससे विपरीत नकद खरीद ने वालों को माल बढिया और सस्ता मिलता है; क्योंकि वे किसी दूकानदार से बँधे नहीं रहते। दस दूकानों पर माल देखकर अच्छे से अच्छा और सस्ता खरीद सकते हैं।

* **धनश्रद्धानुरुपस्त्यागोऽनुसर्त्तव्यः॥**

(धन और श्रद्धा के अनुरूप त्याग का अनुसरण करना चाहिये।)

इसका आशय यह है कि दान की मात्रा उतनी ही रखनी चाहिये, जिससे घर का आर्थिक सन्तुलन गड़बड़ा न जाय। जैसा कि महात्मा कबीर दासजी ने कहा है :–

साई इतना दीजिये, जाये कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भुखा जाय ॥

दूसरों की ठंड मिटाने के लिए अपनी झोपड़ी में आग लगाना उचित नहीं है। श्रद्धा में भावुकता होती है और भावुकता शक्ति से अधिक त्याग करने को प्रेरित कर सकती है, इसलिए विवेक से उसे अंकुश में रखने की जरूरत है।

* **प्रतिपाद्यानुरूपं वचनमुदाहर्त्तव्यम्॥**

(अपने प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप हो बात कहनी चाहिये।)

कुशल वक्ता वही है, जो अपने विषय का पूरी शक्ति से प्रतिपादन करता है– अपने विषय की पुष्टि करने वाले वचन ही मुँह से निकालता है– उटपटाँगं नहीं बोलता। ऐसा वक्ता ही सभा में जमता है– श्रोताओं के दिल जीतता है– सर्वत्र सम्मान पाता है। कहा भी है :–

तास्तु वाचः समायोग्याः याश्चित्ताकर्षणक्षमाः।
स्वेषां परेषां विदुषाम् द्विषामविदुषामपि॥

–प्रसारङ्गाभरणम्

(जो वाणी अपनों के, दूसरों के, विद्वानों के ईर्षालुओं के और अनपढ़ों के भी चित्त को आकर्षित करने में समक्ष हो, वही सभा में बोलने योग्य है)

वाणी में कोमलता होनी चाहिये, मधुरता होनी चाहिये। कठोर वाणी से मित्र दूर भागते हैं; क्योंकि :–

अग्निदाहादपि विशिष्टं वाक्यारूष्यम्॥

(कठोर वाणी आग से भी अधिक जलाती है।)

आग का जला तो मरहमपट्टी से ठीक हो सकता है, किन्तु कठोर वाणी से ह्रदय में जो आग लग जाती है, उसका इलाज बहुत कठिन है। सन्त तुसलीदास ने भी सुझाव दिया है:–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रोष न रसना खोलिये बरु खोलिय तरवारि।
सुनत मधुर परिनाम हित बोलिय क्चन विचारि।।

तलवार भले ही निकाल लो (क्योंकि उसके प्रहार का उपचार सम्भव है।) परन्तु क्रोध को जीभ से प्रकट मत करो। सोच–समझकर ऐसी वाणी बोलो, जो सुनने में मधुर हो और उसका परिणाम हितकर हो। एक अन्य सन्त कविने कहा है :–

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करे आपहु सीतल होय।।

आपा का अर्थ है– अहंकार। उसीसे वाणी कठोर होती है; इसलिए अहंकार को दूर करके नम्रतापूर्वक ऐसी वाणी बोलने की सलाह दी गई है, जो दूसरोंको भी शान्त करे और अपनेको भी।

ऐसी वाणी बोलने के लिए कुशलता चाहिये। जीवन के प्रत्येक कार्य में कुशलता अपेक्षित है। गीता में लिखा है :–

योगः कर्मसु कौशलम्।।

(कुशलतापूर्वक अपने कर्त्तव्यका पालन करना ही योग है।)

महात्मा टालस्टाय ने जीवन को संघर्षमय बताते हुए कहा है :–

Life of a man is a field of battle
(मानवजीवन एक युद्धक्षेत्र है।)

युद्ध के मैदान में जितना सावधान रहना पड़ता है, उतना ही सावधान जीवन में रहनेवाला सफल होता है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट करना चाहता हूँ :–

अंग्रेजों का जमाना था। एक अंग्रेज अफसर का घोड़ा कहीं खो गया था। उसके आदेश से सिपाही उसे खोजने के लिए बाजार में घूम रहे थे। एक दूकानदार से उन्होंने पूछा :–

"क्या तुमने इधर से किसी घोड़े को जाते हुए देखा है ?"

दूकानदारने सहानुभूतिपूर्वक यर्थाथ उत्तर दिया :– "जी हाँ, अभी थोड़ी देर पहले एक घोड़ा इधर से निकला था।"

सिपाही :– "तो चलो हमारे साथ और बताओ कि घोड़ा इस बाजार में किधर मुड़ा था और कौन–सी गली में गया था ?"

दूकानदार दूकान सूनी छोड़कर जाना नहीं चाहता था; क्योंकि वह अकेला ही दूकानपर था। उसने अपनी मजबूरी बताई; परन्तु उस जमाने में अंग्रेजों के सिपाही भी अपने को अंग्रेज अफसर से कम नहीं समझते थे। वे संख्यामें चार थे। उनके हाथों में डंडे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

थे। कड़ककर उन्होंने कहा :– "तुम्हें हमारे साथ चलना ही होगा, अन्यथा डंडोसे ऐसी धुलाई करेंगे कि तुम्हारे शरीर की सारी हड्डियाँ तड़ाक्–तड़ाक् टूट जायँगी!"

दूकानदारने सोचा कि मेरी सहानुभूति का इन्हों ने कोई मूल्यांकन ही नहीं किया। उल्टे मुझे धौंस दे रहे हैं। इन्हे दूसरों की सुविधा–असुविधा का कोई विचार ही नहीं आ रहा है। केवल अपना स्वार्थ सूझ रहा है; अतः इनसे पिण्ड छुड़वाना चाहिये। बोला :– "अच्छा, मैं चलता हूँ; परन्तु पहले आप यह तो बताइये कि क्या आप जिसे खोज रहे हैं, वह घोड़ा सफेद था ?"

सिपाही :– "हाँ, हाँ सफेद ही था।"

दूकानदार :– और उसके सिर पर दो लम्बे–लम्बे सींग भी थे ?

सिपाही:– "सींग ? अरे मूर्ख! घोड़े के कभी सींग नहीं होते। तूने जरूर कोई बैल देख लिया होगा!"

यह कहते हुए सिपाही आगे बढ़ गये। दूकानदारने राहत की साँस ली। इस प्रकार स्वार्थ की रक्षाके लिए बुद्धिमत्ता का उपयोग किया। अत्याचारियों को उल्लू बनाकर अपना उल्लू सीधा किया।

जो व्यक्ति स्वार्थ (स्व+अर्थ=आत्मकल्याण) सिद्ध करना चाहता हो, उसे अपनी दृष्टि निर्मल रखनी पड़ेगी। उसकी दृष्टि अपने दोष देखेगी और दूसरों के गुण।

द्वारका नगरी की बात है। एक सड़क पर मरा हुआ कुत्ता पड़ा था। पांडवों के साथ श्रीकृष्ण उधर से निकले। कुत्ते का शरीर सड़ गया था। उसमें कीड़े बिल–बिला रहे थे। ऐसी दुर्गन्ध उसमें से निकल रही थी कि पाण्डवों को रूमाल से अपनी नाक बन्द करके आगे बढ़ना पड़ा; परन्तु श्रीकृष्ण कुत्ते के पास ही कुछ देर खड़े रहे और फिर प्रसन्न होकर आगे बढ़े।

पाण्डवों ने प्रसन्नता का जब कारण पूछा तो बोले :–

"मैं तो कुत्ते के दाँत देख रहा था। कितने उज्ज्वल! कैसे चमकीले! मानो मोती के दाने हों। दुर्गन्ध की ओर तो मेरा ध्यान ही नहीं गया।"

जो कुछ दुनियामें दिखाई देता है, उसे अपने अनुकूल मानकर प्रसन्न रहना बुद्धिमत्ता का कार्य है और प्रतिकूल मानकर रोना मूर्खता का!

निर्मल और विमल दोनों भाई थे। बगीचे में घूम रहे थे। थोड़ी ही देर बाद निर्मल रोता हुआ घर पहुँचा। उसकी माँ कमला देवीने पूछा :– "क्या पाँव में काँटा चुभ गया है बेटे!"

निर्मल :– "नहीं माँ!"

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कमला :– "तो फिर रो क्यों रहा है तू ?"

निर्मल :– "माँ, बगीचा बहुत बुरा है। मैंने गुलाबका पौधा देखा। कितने सुन्दर फूल खिले थे! परन्तु फूलोंके नीचे काँटे ही काँटे उगे थे; बहुत तीखे थे वे! उन्हें देखकर रोना आ गया।"

माता उसे कुछ समझाना ही चाहती थी कि उसी समय हँसता हुआ विमल आ पहुँचा। पूछनेपर हँसने का कारण बताते हुए वह बोला :–"माँ! बगीचा बहुत अच्छा है। वहाँ मैंने देखा कि तीखे–तीखे काँटोंके बीच भी रहकर गुलाब के फूल हँस रहे हैं। हमें भी इसी प्रकार प्रसन्न रहना चाहिये। है न माँ! ठीक ?"

माँने दोनों बच्चों को गले से लगा लिया और समझाया कि हमारा दृष्टिकोण विमल की तरह आशावादी होना चाहिये, निर्मल की तरह निराशावादी नहीं। एक ही वस्तुको देखकर एक रोता है, दूसरा हँसता है। दूसरा दृष्टिकोण ही हम सबके लिए उपयोगी है। हम फूलमें काँटे न देखकर काँटों में फूल देखनेका अभ्यास करें–यही हमारे लिए कल्याणकारी होगा, यही बुद्धिका सदुपयोग होगा।

वकालत का पेशा बुद्धिपर निर्भर है। वह निर्दोषों की रक्षा के लिए है; परन्तु स्वार्थी वकील उसका उपयोग अपराधियों की रक्षामें करते हैं; क्योंकि अपराधियों से ही उन्हें अधिक अच्छी फीस मिल सकती है। महात्मा गाँधी जब बैरिस्टर बने, तब उन्होंने नियम ले लिया था कि वे कभी झूठे मुकदमे हाथ में नहीं लेंगे। सच्चे मुकदमों का मतलब था– ऐसे मुकदमे, जिनमें निर्दोषों को फँसाया गया हो। उनकी रक्षा करना ईमानदार वकीलका कर्त्तव्य है।

जिस प्रकार निर्दोषकी रक्षा करना कर्त्तव्य है, उसी प्रकार अपराधी को सजा दिलाना भी कर्त्तव्य है।

इंग्लैंड की घटना है। वहाँ एक व्यक्तिने किसी की हत्या कर दी। जिसकी हत्या की गई थी, उसकी पत्नीने सेशनकोर्ट में केस चलाया; परन्तु कोई सबूत न मिलने से हत्यारा छूट गया।

महिला ने हाइकोर्ट में अपील की; परन्तु वहाँ भी वह पराजित हो गई। वहाँ भी हत्यारे को निर्दोष मानकर मुक्त कर दिया गया।

महिला निराश नहीं हुई। वह घरसे बहुत सम्पन्न थी। हत्यारे को दण्ड दिलाये बिना वह सन्तुष्ट होनेवाली नहीं थी। उसने बड़े–बड़े बैरिस्टरों से आगे अपील करने के लिए सम्पर्क साधा; परन्तु भारी से भारी फीस पर भी कोई केस हाथ में लेने को तैयार न हुआ; क्योंकि सेशन कोर्ट और हाइकोर्टमें गवाहों का अभाव होने से हत्यारा निर्दोष छूट चुका था; अतः आगे भी छूट जाता; और उस हालत में वे बैरिस्टर बदनाम हो जाते तो भावी जीवन में उनकी प्रेक्टिस दुष्प्रभावित हो सकती थी।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्त में किसीने उसे पं.मोतीलाल नेहरूका नाम सुझाया। वे ठहरे इंडियन! उन्हे आमन्त्रित करने का मतलब होता इंगलैंड के बैरिस्टरों का अपमान! किन्तु महिला भी क्या करती ?

"बखत पड़े बाँका तो गधेको कहें काका!"

विवश होकर उसने पं. मोतीलालजी नेहरू को केस लड़ने के लिए आमन्त्रित किया और स्पष्ट कर दिया कि मार्गव्यय के अतिरिक्त उन्हें मुँहमाँगी फीस भी दी जायगी।

केस प्रीवी काउंसिल तक पहुँच चुकी थी। पंडित मोतीलाल नेहरू वहाँ पहुँचें। उन्हें केस की फाइल दी गई; परन्तु उन्होंने बिना देखे ही लौटा दी।

केस की सुनवाई प्रारंभ हुई। पंडितजी प्रतिदिन कोर्ट में जाते और चुपचाप बैठकर सारी कारवाई देखते रहते; परन्तु वे कभी कुछ बोले ही नहीं।

बैरिस्टरोंने सोचा कि बेचारा इंडियन बैरिस्टर है। कुछ समझमें ही न आया होगा; इसलिए मौन धारण करके बैठा है। महिला भी व्याकुल हो रही थी; क्योंकि मुकदमा अन्तिम स्टेजपर था। उसके बाद तो केवल ईश्वर के यहाँ ही अपील हो सकती थी।

जजने पुकारा :- "सुनवाई का यह अन्तिम दौर है। आज किसीको किसी भी पक्ष में कुछ कहने की इच्छा हो तो कह दे। कल फैसला सुना दिया जायगा।"

इस पर उस महिला की तथा उसके प्रति सहानुभूति रखने वालोंकी आशाभरी निगाहें पंडितजी की ओर उठीं, परन्तु सबको निराशा ही हाथ लगी; क्योंकि वे मूर्त्तिवत् बैठे रहे, कुछ नहीं बोले।

दूसरे दिन भरी सभा के बीच जजने निर्णय वही घोषित किया, जिसकी पूरी सम्भावना थी। हत्यारा निर्दोष मान लिया गया। उसे मुक्त कर दिया गया।

उस विधवा महिला का चेहरा लटक गया। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा निकल पड़ी। ठीक उसी समय पंडितजी अपनी चेयर से उठे- मानो आग लगने के बाद कूँआ खोदने की चेष्टा कर रहे हों। वे धीरे-धीरे उस कटघरे की ओर बढे, जहाँ हत्यारा खड़ा था।

आज वह बहुत खुश था; क्योंकि खूनी होकर भी वह मुसीबतसे बाल-बाल बच गया था। पंडितजी ने उससे हाथ मिलाया और बहुत-बहुत धन्यवाद देते हुए कहा :- "परमात्मा का आभार मानिये कि आप निर्दोष छूट गये। भविष्य में कभी ऐसी भूल न हो -इसका ध्यान रखिये!"

हत्यारा बोला :- "मैं कोई मूर्ख नहीं हूँ कि ऐसी गम्भीर भूल दुहराऊँ!"

सब लोगोंने यह वाक्य सुना। पंडितजी ने जोर देकर कहा :- "लार्ड साहब! क्या अब भी इसके लिए कोई साक्षी चाहिये ? अपने ही मुँहसे हत्यारा स्वयं अपराध की गम्भीरता स्वीकार

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर रहा है!''

पासा पलट गया! कानून तो गवाहोंके पाँवपर चलता है। अपराधी स्वयं ही अपना प्रत्यक्षदर्शी गवाह बन गया। फिर क्या था? हत्यारे को प्राणदंड दिया गया। महिला का मन खुशी के मारे बाँसों उछलने लगा। इंग्लैंड के बैरिस्टर भारतीय बुद्धिमत्ता का लोहा मान गये। पंडितजीने अपना और देशका नाम रोशन किया।

तो यह है– बुद्धिका सदुपयोग। इसके लिए तन्मयता चाहिये– यदि मन में प्रमाद हो तो बुद्धि भी सोती रहती है।

बहुत–से लोग प्रवचन सुनने आते हैं और रात की कसर यहीं निकालते हैं; आराम से नींद लेते हैं। कभी अर्धनिद्रित अवस्थामें कोई शब्द कानमें चला गया तो उसका उल्टा–सुल्टा आशय समझ लेते हैं। एक मनोरंजक उदाहरण है – किसी वैद्यजी की माता का।

वह नियमित रूप से प्रवचन सुनने आती थी। गुरुदेव व्याख्यान में महावीर प्रभु का यह वाक्य जब जोर से गाकर सुनाते :–

''समयं गोयम! मा पमायए।।''

तब उस बुढिया की थोड़ी–सी नींद टूटती और फिर ज्यों की त्यों जुड़ जाती। प्रवचन में क्या विवेचन चल रहा है? उसका उसे कोई भान नहीं था। वह तो ''गोय मा!''को सुनकर समझती कि दुरूदेव किसी दर्द से कराह कर ''ओय अम्माँ!'' इस तरह पुकार रहे होंगे।

एक दिन उसने अपने बेटेको डॉटकर कहा :– ''तू वैद्यराज होकर दूसरोंका इलाज तो करता ही रहता है; किन्तु कभी–कभी परोपकार भी कर दिया कर। इससे विशेष पुण्य होगा।''

वैद्य :– ''परोपकार के रूपमें मुझे किसका इलाज करना होगा माँ! तेरे ध्यानमें कोई बीमार हो तो बता, जिसके पास पैसा बिल्कुल न हो। मैं उसका बिना फीस लिये इलाज कर दूँगा।''

बुढिया :– ''अपने गाँवमें जैन साधुओंका चौमासा चल रहा है। उन साधुओं में से एक साधु शास्त्रों पर प्रवचन करते हैं। उनके पेटमें दर्द है। बोलते–बोलते वे कराह उठते हैं– ओय अम्माँ!''

वैद्यजीने उपाश्रय में जाकर गुरुदेवकी नाड़ी देखी। वह ठीक चल रही थी। पूछने पर पता चला कि उनके पेटमें भी कोई दर्द नहीं है। वह हैरान हुआ। बोला :– ''मेरी माँ कह रही थी कि प्रवचन के समय आप ओय अम्माँ! कहकर कराहते रहते हैं। उसीने मुझे यहाँ भेजा है।''

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तब मुस्कुराते हुए प्रवचनकारने वैद्यजी को रहस्य समझाया कि नींद अवस्था में आपकी माता "हे गोयमा!"को "ओय अम्माँ!" सुनती है। सबको प्रवचन सावधान होकर सुनना चाहिये। यही श्रोताओंका कर्त्तव्य है।

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

११. गुरूमहिमा

सद्गुरू सेवियो!

नमस्कार महामन्त्र में परमात्मा (सिद्धदेव) से भी पहले गुरु (अरिहन्त) को नमन किया गया है। कबीर साहब ने एक दोहे में स्पष्ट किया है :–

गुरू गोविन्द दोनों खड़े काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरू आपने गोविन्द दियो बताय।।

ईश्वर और गुरू दोनों यदि सामने आकर एक साथ खड़े हो जाय तो हमारी समस्या बहुत जटिल हो जायगी। गुरू उपकारी हैं और ईश्वर बड़े हैं– गुरु के लिए भी आराध्य हैं। ऐसी स्थिति में हम पहले किसे वन्दन करे ?

कबीर साहब कहते हैं– गुरूदेव को धन्यवाद, जिन्होंने ईश्वर की पहिचान कराई। इस प्रकार उन्होंने गुरूदेव की महिमा स्वीकार की। गुरु का महत्त्व जो नहीं मानते, वे कबीर की दृष्टि में अन्धे हैं– भले ही उनकी दोनों आँखे मौजूद हों।

असली आँख, जो उनके हृदय में है, वह बन्द हो जाती है। राजस्थान में ऐसे व्यक्ति के लिए ''हिया फूटा'' (जिसकी हृदय की आँख फूट चुकी है, वह) शब्द प्रचलित है कबीर साहब फरमाते है :–

कबिरा वे नर अन्ध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठै गुरू ठौर हैं. गुरु रूठै नहिं और।।

यदि ईश्वर नाराज हो जाय तो हम गुरू के चरण पकड़ लेंगे; परन्तु यदि गुरु नाराज हो जाय तो कहाँ जायँगे ? किसीकी शरण ग्रहण करेंगे ? कौन बचायगा हमें ? गुरु महिमा इस दोहे में वैदिकधर्म के अनुसार प्रमाणित की गई है; क्योंकि कबीर साहब पर वैदिकधर्म के संस्कार थे।

जैनधर्म के अनुसार न तो गुरु ही किसी पर नाराज होते हैं और न देव ही। दोनों राग–द्वेष से रहित होते हैं; इस लिए आपको इनकी नाराजी की कल्पना करके कबीर साहब की तरह काँपने की कोई जरूरत नहीं; जरूरत है केवल गुरुमहिमा स्वीकारने की।

गुरु से ज्ञान का झरना प्रवाहित होता है– प्रश्नों का उत्तर मिलता है– जिज्ञासाओं का निराकरण होता है– समस्याओं का समाधान होता है– उलझनें सुलझती है और मिलता रहता है–मोक्ष के लिए मार्गदर्शन। गुरु की महिमा स्वीकारने के लिए इतना भी पर्याप्त है।

यह तन विष की बेलड़ी गुरु अमृत की खान।
सीस दियाँ जो गुरु मिले तो भी सस्ता जान।।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कबीर साहब का यह दोहा गुरुभक्ति के लिए प्रेरित करनेवाला है।

गुरूदेव के सामने हम प्रश्न लेकर जा सकते हैं; परन्तु याद रखिये, प्रश्न यदि प्रदर्शन बन गया तो वहाँ स्वदर्शन की कोई सम्भावना न रहेगी। महावीर स्वामी और श्रीकृष्ण ने कोई प्रश्न नहीं पूछा; केवल गौतम स्वामी और अर्जुन द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर दिया– ऐसा हम सुनते हैं. जानते है; परन्तु सवाल यह है कि इन उत्तरदाता महापुरुषों के मन में भी क्या कोई प्रश्न नहीं उठे थे ? अवश्य उठे होंगे; परन्तु जहाँ से प्रश्न उठा, वहीं से उन्होंने अपना समाधान प्राप्त किया था। मन यदि विषय कषाय से रहित हो–निर्मल हो तो अपनी शंकाओं का निराकरण वह स्वयं प्राप्त कर सकता है। चमडे की आँख से दुनिया दिखती है, मन की आँख से आत्मा।

दृष्टा की दृष्टि सूक्ष्मतर होनी चाहिये। वह आत्मा की बात पूछे, शरीर की नहीं। कुरान में अक्षर कितने हैं ? गीता में श्लोकों की संख्या क्या है ? बाइबिल का किस–किस भाषा में अनुवाद हो चुका है ? ये स्थूल प्रश्न हैं; क्योंकि आत्मकल्याण का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इन धर्मग्रन्थों का आशय क्या है ? इनके भीतर भाव क्या है ? किन सिद्धान्तों का ये समर्थन करते हैं ? ऐसे प्रश्न पूछे जा सकते हैं।

साधु इनके उत्तर देगा :–

साध्नोति स्वपरकार्याणीति साधुः ॥

(जो अपने और दूसरों के कार्य सिद्ध करे, वही साधु है।)

वह स्वयं आत्मकल्याण के मार्गपर चलता है और दूसरों को भी उस पर चलने की प्रेरणा देता है। कभी वह मौन रहकर भी संदेह मिटाता है; इसीलिए उसे "मुनि" कहते हैं। प्रवचन मुँह से ही नहीं होता, मौनसे भी होता है :–

गुरोस्तु मौनं व्याख्यानम् शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः॥

(गुरू मौन प्रवचन करते हैं और शिष्यों के संशय समाप्त हो जाते हैं– कट जाते हैं।)

जो सहता है–सहयोग करता है–सहायता करता है, उसे साधु कहते हैं। लोहे का खम्भा डूब जाता है; परन्तु घनों से उसे पीट–पीटकर उसी को नाव का आकार दे दिया जाय तो वही लोहा जल में तैरने लग जाता है। साधु अपने शिष्यों–भक्तों–अनुयायियों–श्रावकों एवं श्राविकाओं के जीवन को प्रवचन–घन से पीट–पीटकर नौका के रूप में परिणत कर देता है; इससे वे संसार सागर में तैरने लग जाते हैं।

साधु इंजीनियर हैं; क्योंकि वे जीवन का निर्माण करते हैं–उसे पवित्र बनाते हैं– सच्चरित्र बनाते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साधु वकील हैं; क्योंकि वे युक्ति द्वारा संसार–कारागार के कैदी (जीव) को मुक्त करने का भरपूर प्रयास करते हैं।

साधु डॉक्टर हैं; क्योंकि वे भव्य प्राणियों के मानसिक रोगों को मिटाते है– उपचार करके उन्हें स्वस्थ करते हैं।

साधु पोस्टमैन हैं, जो घर–घर जाकर महावीर स्वामी के सन्देशों को पहुँचाने का काम करते हैं।

साधु भी यदि वैराग्यवान न हो तो साधुजीवन में भी पतन के पाँच कारण हैं– कौनसे ? प्रवचन, परिचय, पेपर, प्रसिद्धि और प्रशंसा।

प्रवचन से वक्ता में अभिमान पैदा होता है। सुनने वालों से वह अपने को अधिक ज्ञानी मानता है; परन्तु सच्चा ज्ञानी वहीं होता है, जहाँ अभिमान बिल्कुल न हो। सन्त कवि तुलसी ने कहा है :–

ज्ञान, मान जहां एकहु नाहीं।।

पतन का दूसरा कारण है– परिचय, गृहस्थों से अधिक परिचय साधुओं के लिए हितकर नहीं। डॉक्टर जब टी.बी. वार्ड में जाता है, तब जितना सावधान रहता है, उतना ही सावधान साधु को भी रहना पड़ता है, रहना चाहिये; अन्यथा इलाज करने वाला खुद ही बीमार हो जायगा।

पेपर (अखबार) पढ़ने में स्वाध्याय का अमूल्य समय बर्बाद हो जाता है। उसमें नाम छपने से प्रसिद्धि मिलती है। उसका नशा दिमाग पर छाया रहता है, जैसे शराबी प्याले पर प्याला पीता रहता है, उसी प्रकार प्रसिद्धि के लिए साधु बार–बार अपना नाम पेपर में देखना चाहता है। जब दूसरे लोग पेपर में साधु का नाम छपा हुआ देखेंगे तो वे प्रशंसा करेंगे। प्रशंसा सब को प्रिय लगती है। जैसे इन्द्रियाँ विषयों में आसक्त होती हैं, उसी प्रकार मन प्रशंसा में आसक्त हो जाता है।

इस प्रकार पाँचों कारण साधु को संयमी जीवन से नीचे गिरा देता हैं। साधुओं को इनसे बचने का प्रयास करते रहना है।

साधु जिस आध्यात्मिक सुख का अनुभव करते हैं; वे उसका वर्णन तो कर सकते हैं; किन्तु आपको अनुभव करा नहीं सकते। अनुभव आपको स्वयं ही करना होगा।

दूसरों को अनुभव कराने का प्रयास कितनी जटिलता में डाल देता है, सो एक उदाहरण से स्पष्ट होगा।

दीवाली का दिन था। प्रत्येक घर, प्रकाश से सजाया गया था। लोग प्रकाश की प्रशंसा कर रहे थे। एक अन्धे ने पूछा :–

"भाई! यह प्रकाश कैसा होता है ?"

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एक आदमी ने कहा "सफेद!"

अन्धा :– "सफेद कैसा ?"

आदमी :– "बगुले के पंख की तरह।"

अन्धा :– "बगुला कैसा ?"

आदमी ने अपना हाथ बगुले की गर्दन के समान मोड़ कर बता दिया :– "बगुला ऐसा होता है!"

अन्धा उसे छूकर बोल उठा :– "हाँ–हाँ, अब मुझे समझ में आ गया कि प्रकाश कितना टेढ़ा होता है।"

आदमी ने अपना सिर ठोक लिया कि मैंने क्या समझाना चाहा और यह क्या समझ गया। आखिर वैद्यने जब आँखें ठीक कर दीं, तभी उसे प्रकाश का वास्तविक ज्ञान हुआ। संयम और तप से जब मन ठीक होगा (निर्मल होगा), तभी आप को स्वयं आध्यात्मिक सुख की वास्तविक अनुभूति होगी।

यदि आप प्रश्न लेकर किसी साधु के समीप जायँ तो और कुछ अपने मनमें न ले जाय तभी समाधान मिल सकेगा।

एक आदमी ने गुरु को प्रणाम करके निवेदन किया :– "मेरे पास एक छोटा–सा प्रश्न है। आज्ञा हो तो पूछुँ ?"

गुरु :– "तुम आये कहाँ से हो ?"

आदमी :– "बम्बई से"

गुरु :– "और जाओगे कहाँ ?"

आदमी :–" दिल्ली जाऊँगा।"

गुरु :– "बम्बई में बासमती चावल का क्या भाव चल रहा है ?"

आदमी :– "छह रुपये किलोग्राम।"

गुरु :– "दिल्ली में बाटा के जूतों का क्या भाव है ?"

आदमी :– "टैक्ससहित एम्बेसेडर एक सौ छिहत्तर रुपयें में मिल जाता है; किन्तु लेदर में नार्थ स्टार की जोड़ी एक सौ पैंसठ रुपये देने पर ही मिल जायगी। आपको कौन से जूते चाहिये ?"

गुरु :– "मुझे न चावल चाहिये न जूते। मैं तो केवल तुम्हारे मन को टटोल रहा था कि उसमें क्या–क्या भरा है ? मैं ने पाया कि उसमें बम्बई, दिल्ली, बासमती और बाटा के जूते भरे हुए हैं। एक कोने में कहीं प्रश्न भी पड़ा होगा। समाधान तब होता है, जब मन में केवल प्रश्न हो, और प्रश्न के सिवाय कुछ न हो। सारा संसार साथ लेकर भगवान् के विषय

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में प्रश्न करोगे तो कुछ भी पल्ले पड़ने वाला नहीं है। पूछने से पहले दिमाग को एकदम खाली करके आओ।"

ईश्वर के प्रति श्रद्धा सहज होती है। वह थोपी नहीं जा सकती। बड़े मुल्ला से किसी मित्र ने पूछा :– "मुझे क्या आप अल्लाह के प्रति श्रद्धालु बना सकते हैं ?"

मुल्ला :– "क्यों नहीं ? देखिये, मैं अपने मकान की छतसे नीचे कूद पड़ता हूँ। मैं अल्लाह का नाम लेकर कूदूँगा तो चोट बिल्कुल नहीं लगेगी। इससे उसकी शक्ति में आपको विश्वास हो जायगा।"

मित्र :– "बायचान्स ऊपर से गिरकर भी बहुत–से लोग बच जाते हैं। आप इसमें बेचारे अल्लाह को बीचमें क्यों घसीटते है ?"

मुल्ला :– "एक बार बचूँ तो बायचान्स; परन्तु दूसरी बार चढ़कर गिरूँ और बच जाऊँ तो ?"

मित्र :– "वह भी बायचान्स! आप अपने मकान की छत से गिरने की बात करते हैं; परन्तु बहुत से लोग तो हवाई जहाज से गिरकर भी बाल–बाल बच जाते हैं। यह मात्र एक संयोग है।"

मुल्ला :– "अगर तीसरी बार मैं मस्जिद के ऊपर चढ़ जाऊँ और फिर वहाँ से अल्लाह का नाम लेकर कूद पड़ूँ तब तो तुम्हें श्रद्धा होगी कि अल्लाह की दिव्य शक्ति ने मुझे बचाया है ?"

मित्र :– "मुल्ला! तुम तीन बार कूदकर चोट से बच जाओगे तो यह तुम्हारा अभ्यास कहलायगा। इससे सिद्ध होगा कि तुम कूदने की कला में कुशल हो। इस कला से प्रसन्न होकर कोई भी सर्कस तुम्हें सर्विस पर रख लेगा।"

मुल्ला :– "जहन्नुम में जाय तुम्हारा प्रश्न! मैंने तो तुम्हारे मन में श्रद्धा उत्पन्न करने की अपनी ओर से पूरी कोशिश की थी; परन्तु तुम ऐसे अश्रद्धालु निकले कि मुझे मस्जिद से सीधे सर्कस तक पहुँचा दिया!"

जो गुरु बनना चाहता है, उसे ठोस ज्ञान अर्जित करना चाहिये; अन्यथा वह हँसीका पात्र बन जायगा।

एक शालानिरीक्षक (इन्स्पैक्टर ऑफ स्कूल्स) थे। एक विद्यालय में निरीक्षण करने गये कि पढ़ाई कैसी चल रही है ? विद्यालय की एक कक्षा में पहुँचे। छात्र और अध्यापक उनके सम्मान में खड़े हो गये। हाथ के संकेत से सब को बैठने का आदेश देकर निरीक्षक महोदय ने एक प्रश्न किया :– "बताओ, बच्चे! शिवजी का धनुष किसने तोड़ा ?"

सब एक–दूसरे का मुँह देखने लगे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निरीक्षक :– "सोचो याद करो। जो भी जानता हो, अपना हाथ खड़ा करे।"

जब किसी ने हाथ खड़ा नहीं किया, तब उन्हों ने एक बड़े लड़के को खड़ा करके पूछाः– "तुम बताओ।"

उसने काँपते हुए कहा :– "सर! मैंने नहीं तोड़ा–यह निश्चित है। और किसी ने तोड़ा होगा तो मुझे नहीं मालूम; अन्यथा मैं उसका नाम आपको जरूर बता देता।"

निरीक्षक ने अध्यापक की ओर देखा। अध्यापक घबराया। नौकरी का सवाल था। बोलाः– "सर, इस कक्षा में कुछ शरारती छात्र हैं, हो सकता है, उन्हीं में से किसीने तोड़ दिया हो। मैं उनकी मरम्मत करके कल तक आपके सामने उसका नाम जरूर पेश कर दूँगा। अभी एकदम तो मैं भी नहीं बता सकता।"

निरीक्षक खिन्न होकर प्रधानाध्यापक के कक्षा में गये। प्रधानाध्यापक खड़े होकर दूसरी कुर्सी पर बैठ गये और अपनी कुर्सी निरीक्षक महोदय के लिए खाली कर दी। वे उस पर बैठ गये। प्रयोजन पूछने पर निरीक्षक बोले :– "शाला का स्तर बहुत गिर चुका है!"

प्रधानाध्यापक :– "जी हाँ, सर! यदि सरकार ने मरम्मत के लिए आर्थिक सहायता नहीं की तो यह शालाभवन गिर भी सकता है।"

निरीक्षक :– "अरे भाई! मैं तो शिक्षा के स्तर की बात कह रहा हूँ। एक कक्षा में जाकर आज एक साधारण सी बात पूछी; परन्तु कोई उत्तर ही नहीं दे सका!"

प्रधानाध्यापक :– "जी हाँ, आपके प्रश्न की आवाज मेरे कानों तक आ चुकी है। आप शिवधनुष तोड़ने वाले का नाम जानना चाहते हैं ? क्या आपको शिवधनुष बहुत प्रिय था ? क्या वह आपका ही था ?"

निरीक्षक :– "मेरा शिवधनुष से कोई संबेध हो या न हो, मैं उसे तोड़ने वाले का केवल नाम पूछ रहा था; लेकिन छात्र तो छात्र ही ठहरे, खुद अध्यापक भी नहीं बता सके मुझे।"

प्रधानाध्यापक :– "कोई बात नहीं। बच्चे ही ठहरे! खेलते–खेलते टूट गया होगा किसी के हाथ से। इस जरा–सी बात के लिए आप इतने नाराज क्यों होते हैं ? मैं शाला की आकस्मिक–निधि से अभी आपको पाँच रूपये दे देता हूँ। आप वैसा ही धनुष और बनवा लीजिये। तोड़नेवाले छात्र का नाम मालूम करके यह राशि हम उसके माँ–बाप से वसूल करते रहेंगे।"

निरीक्षक महोदय पाँच रुपये का नोट प्रधानाध्यापक के मुँह पर फेंककर गुस्से में दाँत पीसते हुए सीधे जिला शिक्षाधिकारी के कार्यालय में पहुँचे। शिक्षाधिकारी महोदय ने सारी घटना ध्यान से सुनकर कहा :– "मैं अभी एक सर्क्युलर निकालकर जानकारी मँगवा लेता हूँ कि शालाओं में कहाँ–कहाँ कितने धनुष इस वर्ष भेजे गये। उनमें से कितने सुरक्षित हैं और कितने टूट गये। जितने भी टूट चुके होंगे, उतने नये बनवाकर उन–उन शालाओं को भिजवा दिये जायँगे। आप निश्चिन्त रहें। अधिक से अधिक एक महिने में यह व्यवस्था हो जायगी।"

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निरीक्षक महोदय की निराशा और मानसिक व्यथा का कोई पार न रहा। वे वहाँ से संभागीय शिक्षा अधीक्षक के कार्यालय में जा पहुँचे। सम्पूर्ण बीती घटना सुन कर वे वोले:– "जिला शिक्षाधिकारी की कार्यक्षमता पर मुझे पूरा विश्वास है। उन्होंने एक महिने की अवधि आपको दे दी है। आशा है, तब तक व्यवस्था अवश्य हो जायगी। आप निश्चिन्त रहें। एक महीने की अवधि तक प्रतीक्षा करने के बाद भी यदि व्यवस्था न हो सके तो दो–तीन महीने बाद आकर फिर से आप मुझे याद दिला दीजियेगा।"

निरीक्षक हैरान होकर सीधे शिक्षामन्त्री के सामने जा खड़े हुए। उन्होंने कहा :– "पूरे प्रदेश की व्यवस्था करना कोई साधारण काम नहीं है। प्रतिवर्ष शालाओं में आवश्यक वस्तुओं की सप्लाई की जाती है। भेजने में भी कई वस्तुएँ पहुँचने से पहले टूट जाती हैं; इसलिए जिस धनुष की आप चर्चा कर रहे हैं, वह हो सकता है, कहीं रास्ते में ही टूट गया हो। स्टेशनों पर हमाल कितने लापरवाह होते हैं ? यह तो आप जानते ही हैं। पार्सलों को इस तरह फेंकते हैं, मानो वे रूई की गाँठें हों। मैं आज ही रेल्वे–मन्त्री को पत्र लिखकर उनका ध्यान इस ओर आकर्षित करता हूँ कि पार्सलों को पटके जाने के विरूद्ध वे हमालों को कड़ी चेतावनी दे। इससे शिक्षा–विभाग का और आम–जनता का भी भला होगा। भेजा जानेवाला किसी का कोई माल किसी स्टेशन पर इस तरह टूट कर बरबाद न होगा, जिस प्रकार आपका शिवधनुष का हुआ है। मैं सोचता हूँ, रेल्वेमन्त्री के प्रयास से पूरे देश में यह व्यवस्था अवश्य हो जायगी–भले ही इसमें साल–दो साल लग जायँ। अन्तमें एक निवेदन है आपसे कि इस घटना की भनक अखबार वालों को न होने दें; अन्यथा वे इसे इस तरह उछालेंगे कि आम जनता में हमारी छबि गिर जायगी और पाँच वर्ष बाद होनेवाले आम–चुनावों में हमें कोई वोट नहीं देगा।"

शिक्षामन्त्री महोदय का भाषण सुनकर निरीक्षक महोदय सीधे घर लौट गये। आधुनिक शिक्षा पर यह बहुत बड़ा व्यंग्य है। जिनका ज्ञान–वैराग्य ठोस न हो, उन्हें शिक्षक या गुरू बनने का कोई अधिकार नहीं। गुरुमहिमा को घटाने में ऐसे ही लोगों का हाथ रहता है।

जो गुरु गहरे ज्ञानी होते हैं, वे बहुत संक्षेप में अपनी बात कह देते हैं और जहाँ तक हो सकता है, प्रवचन से बचने का प्रयास करते है।

ऐसे ही एक गम्भीर ज्ञानी मुनि से लोगों ने आग्रह किया कि आप हमारे बीच प्रवचन करके हमें कृतार्थ करें। मुनि ने कहा :– "क्या आप लोग ईश्वर के विषय में कुछ जानते हैं ?"

श्रोताओं में से एक ने कहा :– "हम कुछ नहीं जानते गुरुदेव!"

मुनि :– **"नास्तिमूलं कुतः शाखाः?"**

जहाँ जड़ का ही पता नहीं, वहाँ शाखाओं की आशा कैसी की जा सकती है ? बीज को ही अंकुरित किया जाता है। जब आप ईश्वर के विषय में कुछ जानते ही नहीं तो मैं क्या

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बोलूँ ? मैं शून्यमें पेड़ खड़ा नहीं कर सकता!

लोग चले गये; परन्तु उन्हें प्रवचन सुनने की इच्छा प्रबल थी। दूसरे दिन फिर से वे महात्माजी के दर्शनार्थ गये और उनको घेरकर बैठ गये। प्रवचन करने की प्रार्थना सुनकर उन्होंने फिर से वही प्रश्न सामने रख दिया :- "क्या आप लोग ईश्वर के विषय में कुछ जानते हैं ?"

कल का अनुभव वे भूले नहीं थे। उत्तर बदलकर सब का प्रतिनिधित्व करते हुए एक श्रोता ने कहा :- "जी हाँ, हम जानते हैं ईश्वर के विषयमें।"

मुनि :- "जब आप लोग ईश्वर के विषय में जानते ही हैं तो फिर मुझ से क्या सुनना चाहते हैं ? जो विषय आप जानते हैं, उस पर मैं क्या बोलूँ ? पीसे हुए आटे को और पीसकर मैं आपका और अपना समय बर्बाद करना नहीं चाहता।"

लोग फिर निराश होकर चले गये। तीसरे दिन फिर प्रातःकाल लोग वन्दनार्थ आये। आज फिर वे नया उत्तर सोचकर आये थे। किसी भी तरह मुनिराज के मुखारविन्द से उन्हें प्रवचन तो सुनना ही था। अत्यन्त आग्रह देखकर महात्माजी ने आज फिर प्रवचन प्रारंभ करने से पूर्व वही प्रश्न उठाया :-"क्या आप लोग ईश्वर के विषय में कुछ जानते हैं ?"

श्रोताओं में से आधे लोगों की ओर से एक ने कहा :- "नहीं जानते" शेष आधे लोगों का नेतृत्व करते हुए दूसरे व्यक्ति ने कहा :- "जानते हैं।"

इस पर मुनिराज बोले :- "ठीक है आप में से आधे लोग ईश्वर के विषय में जानते हैं; शेष नहीं जानते। अब तो मेरा काम ही समाप्त हो गया। बोलने की कोई जरूरत ही नहीं रही; क्योंकि जो आधे लोग जानते है, वे न जाननेवाले आधे लोगों को समझा सकते हैं- समझा दें।"

गुरुमहिमा का पार कौन पा सकता है ?

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१२. छल

सरल स्वभावी भव्यजनो!

भक्ति, आराधना, पूजा निस्वार्थ होनी चाहिये। (भौतिक) वैभव का जिन्होंने त्याग कर दिया था, उनसे वैभव की याचना का क्या अर्थ है ? वैभव पुण्य का फल है। यदि पूर्वभव में अपने पुण्य पुञ्ज एकत्र किया था, तो इस भव में आपको वैभव की कहीं भी कमी नहीं रहेगी। अगले भव में भी आप वैभव पाना चाहते हैं तो इस भवमें पुण्योपार्जन से आपको कौन रोकता है ?

परन्तु जहाँ तक वीतराग प्रभु की आराधना और भक्ति का सवाल है, मन्दिर में जाकर उनसे वैभव की प्रार्थना करें–यह उचित नहीं लगता। प्रार्थना (याचना) भी हिन्दू धर्म का शब्द है। जैनधर्म में ईश्वर की स्तुति (प्रशंसा या गुणवर्णन) की जाती है, प्रार्थना नहीं।

प्रभु की स्तुति करने से– उनके सद्‌गुणों की प्रशंसा करने से हमें भी उन गुणों को अपनाने की प्रेरणा मिलती है– यही स्तुति का फल है; परन्तु परम्परानुसार मुँह से स्तुति करते हुए भी लोग मन में प्रार्थना करते हैं। वे मुँह से बोलते हैं :–

''शान्तिनाथजी! शान्ति करो'' और मन में बोलते हैं :–

''तिल कपास गुड़ महँगा करो!''

इस प्रकार वे छल करते हैं। प्रभु को तो वे धोका दे नहीं सकते; परन्तु ऐसा करके अपने आपको वे धोका देते हैं– आत्मवंचना करते हैं। यह कुटिलता है। सरल व्यक्ति ऐसा नहीं करते:–

सरल जनों की सरल गति वक्र जनों की वक्र।
सीधा जाता तीर ज्यों चक्कर खाता चक्र॥

मन–वचन–कार्य की एकता ही दुष्टों और शिष्टों में भेद करती है :–

मनस्येकं वचस्येकम् कर्मण्येकं महात्मनाम्
मनस्यन्यद्वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्॥

[महात्माओं के जो कुछ मन में होता है, वही वचन में आता है (जैसा वे सोचते हैं, वैसा ही बोलते हैं) और जैसा वचन में होता है, वही कार्य में दिखाई देता है (जैसा वे बोलतें हैं, वैसा ही करते है) इससे विपरीत स्वभाव दुरात्माओं का होता है। वे सोचते कुछ और हैं, बोलतें कुछ दूसरा हैं और करते कुछ तीसरा ही हैं।]

किसी विचारक ने दम्भ को झूठ की पोशाक बताया है। इसका तात्पर्य यह है कि दम्भ के मूल में असत्य रहता है। जो व्यक्ति छल करता है, वह झूठा होता है। उसका विश्वास नहीं किया जा सकता। बगुला और कौआ–ये दोनों पक्षी आपके सामने बैठे हों तो आप इनमें से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किसे श्रेष्ठ तर मानेगें ? एक कविने अपना निर्णय दिया है :-

तन उजला मन साँवला, बगुला कपटी भेख।

यासूँ तो कागा भला, भीतर बाहर एक॥

चोर भी है तो बुरा, परन्तु विश्वासघात करने वाला उससे कई गुना अधिक बुरा है। माया से मनुष्य एक बार लाभ उठा सकता हैं, बार-बार नहीं। काठ की हंडिया दूसरी बार चूल्हेपर नहीं चढाई जा सकती; क्योंकि पहली बार में ही वह जल जाती है।

मित्रता के मूल में क्या होता है ? विश्वास। माया से विश्वास सूख जाता है:-

माया मित्ताणि नासेइ॥

-दशवैकालिक

(माया मित्रों को नष्ट कर देती है।)

यह कथन इसीलिए सर्वथा सत्य प्रतीत होता है। छल करने वालों पर और भी अनेक संकट आते हैं; इसलिए उसे छोड़ने की प्रेरणा दी गई है :-

"व्यसनशत सहायां दूरतो मुञ्च मायाम्॥"

सैंकड़ो संकटों की सहायिका माया का त्याग दूर से कर दे।

केवल धन हथियाने के लिए की गई माया ही भयंकर नहीं होती, धर्म के लिए भी गई माया भी भयंकर होती है। स्त्री तीर्थंकर मल्लिनाथ ने महाबल के भव में मित्रों से छिपाकर (झूठ बोलकर) तप किया था। (करते थे उपवास और कह देते थे आज पेटमें दर्द होने से लंघन किया जा रहा है) इसी माया के दुष्परिणाम से उन्हें नारीरूप में जंन्म लेना पड़ा; इसीलिए कहा गया है:-

धम्मविसएवि सुहुमा माया होई अणत्थाम॥

(धर्म के विषय में भी की गई सूक्ष्म माया अनर्थ के लिए होती है।)

तत्त्वार्थ सूत्र में लिखा है :-

माया तैर्यग्योनस्य॥

(माया तिर्यञ्च आयु के बन्ध का कारण है।)

यदि कोई पुरुष अगले भव में पशु-पक्षी या स्त्री बनना न चाहता हो तो उसे माया से बचना चाहिये; क्योंकि :-

माया गइपडिग्घाओ॥

-उत्तराध्ययनसूत्र

[माया सुगति का प्रतिघात है (अच्छी गति में बाधा डालने वाली है।)]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

माया कुटिलता है। सरलता से उस पर विजय पाई जा सकती है :-

मायं मज्जवभावेण।।

-दशवैकालिक

(माया पर मार्दव के भाव से विजय पाना चाहिये।)

माया से विश्वास टूट जाते हैं। इससे मित्र छूट जाते हैं और मनुष्य को एकाकीपन का कष्ट भोगना पड़ता है। साथ ही अगले भव में भी पशु-पक्षी या स्त्री के रूपमें जन्म लेकर कष्ट भोगने पड़ते हैं। इस प्रकार दोनों भव बिगड़ जाते हैं। शुभचन्द्राचार्य कहते हैं :-

अलं मायया प्रपञ्चेन लोकद्वय विरोधिना।।

(दोनों भव बिगाड़ने वाले छल प्रपंच से दूर रहो।)

वैसे तो कपट का व्यवहार किसी के साथ करना ही नहीं चाहिये; फिर भी आचार्य आदि कुछ ऐसे व्यक्ति नीतिकारों ने गिनाये हैं, जिनके साथ कपट का व्यवहार बहुत घातक होता है:-

आचार्ये च नटे धूर्त्ते वैद्य-वेश्या-बहुश्रुत्ते।
कौटिल्यं नैव कर्त्तव्यम् कौटिल्यं तैर्विनिर्मितम्।।

(आचार्य, नट, धूर्त्त, वैद्य, वेश्या और बहुश्रुत-इनके साथ कुटिलता न करें; क्योंकि कुटिलता के निर्माता ये ही लोग हैं।)

इन पर कुटिलता का कोई प्रभाव नहीं होगा और कुटिलता करने पर ईंट का जवाब पत्थर से मिलेगा! इस प्रकार लेने के देने पड़ जायँगे। उदाहरणार्थ यदि आप किसी वैद्य को धोखा देते हैं तो स्वास्थ्यलाभ में देरी हो सकती है- बीमारी की अवधि बढ़ सकती है-निदान गलत होने पर नया रोग भी पैदा हो सकता है; अतः चिकित्सा कराते समय वैद्य के प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर देना चाहिये-उससे कुछ छिपाना न चाहिये और न कोई गलत जानकारी ही देनी चाहिये।

जो विद्यार्थी अपने अध्यापक को धोखा देते हैं, वे परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सकते-ठोस ज्ञान से वंचित रहते हैं और अपना अमूल्य समय बर्बाद करते हैं। छात्रावस्था में जो ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वह जीवन-भर काम आता है। यदि ज्ञानार्जन में आलस्य कर गये तो फिर उसकी पूर्त्ति बाद में नहीं हो सकेगी; क्योंकि यौवनावस्था में कुटुम्ब के पालन-पोषणार्थ धनार्जन की जिम्मेदारी उठानी पड़ती है; इसलिए छात्रावस्था में निश्चिन्तता पूर्वक ज्ञानार्जन के लिए प्राप्त अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिये।

आजकल परीक्षा-भवन में नकल करने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ गई है। आये दिन समाचारपत्रों में हमें ऐसी खबरें पढ़ने को मिलती रहती हैं। इक्के-दुक्के दादा टाइप् छात्र ही

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नकल करते हों, सो बात नहीं; अब तो किसी–किसी केन्द्र में सामूहिक–नकल होती है। परीक्षा में नकल करना भी धोखा है–छल है और उसका दुष्परिणाम हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है। नकल से ऊँचे अंको में परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले सर्विस हथिया कर जब कार्यक्षेत्र में उतरते हैं, तब उनकी स्थिति बहुत दयनीय बन जाती है; क्योंकि जगह–जगह वे अपमानित होते हैं। सरकारी सर्विस में प्रमाणपत्र के कारण उन्हें सर्विस से अलग भले ही न किया जा सके; परन्तु दूर–दूर के क्षेत्रों में उन्हें बार–बार स्थानान्तरित जरूर किया जाता है; क्योंकि कोई उन्हें नहीं रखना चाहता। इस प्रकार उनकी स्थिति फुटबॉल की तरह इधर से उधर परिवर्तित होती रहती है। निराशा और दुःख में ही उनका सारा जीवन व्यतीत होता है।

यदि कोई वकील को यथार्थ स्थिति से अवगत न कराये–उसे धोखा दे तो स्पष्ट ही वह अन्ततोगत्वा केस हार जायगा। वकील की फीस भी डूबेगी (कोई लाभ न दे सकेगी) और मुकदमा हार जाने पर प्रतिपक्ष को क्षति पूर्त्ति भी देनी पड़ेगी और दण्ड भोगना पड़ेगा, सो अलग।

किसी ने ठीक ही कहा है :–

दगा किसी का सगा नहीं है किया नहीं तो कर देखो!
पछताना जो नहीं चाहते, किया उन्हीं का घर देखो!

जो व्यक्ति किसी की गुप्त बात आपके सामने प्रकट करता है, वह उसे धोखा दे रहा है–विश्वासघात कर रहा है। ऐसे व्यक्ति से सावधान रहिये। उसे अपनी गुप्त बात मत कहिये; अन्यथा स्वार्थ सिद्ध न होने पर वह नाराज होकर आपके साथ भी वैसा व्यवहार कर सकता है, जैसा वह किसी और के साथ कर रहा है। आपकी गुप्त बात भी वह आपके शत्रु के सामने प्रकट करके आपको भारी नुकसान पहुँचा सकता है।

फिर भी परोपकार के लिए जो छल किया जाता है, उसे अनुचित नहीं कह सकते।

अकबर बादशाह ने नाराज होकर एक नौकरानी को निकाल दिया। उसका नाम था–दौलत। रोती हुई वह बुद्धिमान् मन्त्री बीरबल के घर गई। बीरबल ने उसे एक उपाय बता दिया। खुश होकर वह चली गई और समय की प्रतीक्षा करने लगी। ईद आई। उस दिन राजमहल में जहाँ बादशाह बैठते थे, उस कमरे पर प्रातःकाल जाकर किंवाड खटखटाने लगी। भीतर से बादशाह ने पूछाः– "कौन ?" बाहर से वह बोली :– "मैं दोलत हूँ। आपका हुक्म हो तो आऊँ या चली जाऊँ!"

ईद के दिन बादशाह दौलत को जाने की आज्ञा कैसे दे सकते थे ? बोले :–"दौलत हो तो चली आओ।" भीतर प्रवेश करने पर उसे पुनःसर्विस दे दी गई। पूछताछ करनेपर बादशाह को पता चला कि यह तरीका उसे बीरबल ने बताया था।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संस्कृत में एक सुभाषित है :-

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैः स्त्रिभिः पक्षैः स्त्रिभिर्दिनैः।
अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव लभ्यते फलम्॥

[अत्यन्त उग्र पुण्य अथवा पाप किया जाय तो इसी भव में उसका अच्छा या बुरा फल तीन वर्षों में, तीन महींनों में, तीन पक्षों (पखवाड़ों) में अथवा तीन दिनों में प्राप्त हो जाता है ।]

इसका एक उदाहरण देखिये। मुर्शिदाबाद शहर में बर्त्तनों का एक व्यापारी था। एक दिन प्रातःकाल आठ बजे उसकी दूकान पर एक जीप आकर खड़ी हुई। जीप की प्लेट पर लिखा था- Govt. of V.I.P Supply Dept. उसमें से एक सूटेड बूटेड अफसर उतरा। उसके साथ एक पट्टेवाला भी उतरा। बर्त्तन का व्यापारी अफसर और जीप को देखकर बहुत खुश हुआ। व्यापारी से पाँच हजार का प्राइवेट कमीशन ठहरा कर पचास हजार का आर्डर पेश कर दिया गया। व्यापारी ने माल पैक कर के जीप में रखवा दिया। बदले में अफसर ने उसे पचास हजार का चेक दे दिया; परन्तु व्यापारी को कुछ शंका होने से उसने कैश रकम माँगी। अफसर ने कहा :- "देखिये, अभी साढे नौ बज रहे हैं। एक घंटे बाद साढे दस बजे बैंक खुल जायगा। मैं वहाँ से रकम कैश निकलवाकर ग्यारह बजे आपको हाथोंहाथ दे जाऊँगा। तब तक हमारा यह पट्टेवाला यहीं बैठा रहेगा। सरकारी काम है। आप बिल्कुल निश्चिन्त रहिये।"

ऐसा कहकर अफसर वहाँ से चलता बना। व्यापारी ने पट्टेवाले को बैठ जाने का इशारा किया। वह बैठ गया। व्यापारी इन्तजार करने लगा। घड़ी में ग्यारह बज गए। फिर बारह बजे। व्यापारी की नजर बार-बार सड़क की ओर उठती रही; किन्तु वह अफसर नहीं आया। व्यापारी भोजन करने के लिए भी घर पर नहीं गया। सोचा, यदि अफसर आया और मैं दूकान पर उपस्थित न रहा तो वह कैश किसे देगा ? मेरे आने की वह प्रतीक्षा नहीं करेगा। वह कैश अपने साथ लेकर लौट गया तो मैं उस अफसर को कहाँ ढूँढूँगा ? इसलिए कहीं न जाना ही ठीक है ।

प्रतीक्षा करते-करते दो बजी, तीन भी बज गए! अब व्यापारी का माथा ठनका--ढाई बजे तो बैंक में लेन--देन बन्द हो जाता है। तीन बजने पर भी अफसर नहीं आया तो अब क्या आयगा ?

पट्टेवाला बैठा था। दूकानदार ने पूछा :- "आपका ऑफिस किधर है ? साहब कहाँ रहते हैं ? उनके बँगले का फोन नम्बर क्या है ?"

पट्टेवाले ने कहा :- "सेठजी! मुझे उनके बारे में कुछ भी मालूम नहीं है।"

सेठजी :- "क्यो नहीं मालूम ? क्या तू उनका चपरासी नहीं है ?"

चपरासी :- "शेठजी! मैं तो नौकरी की तलाश में भटक रहा था। जीपवाले साहब

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ने मुझ से कहा कि चल, नौकरी चाहिये तो बैठ जा इस जीप में। मैं बैठ गया तो मुझे यूनिफार्म दे दिया और कहा कि इसे पहिन लो। आज से तुम हमारे चपरासी हो। मैंने यूनिफार्म पहिन लिया और वे मुझे आपके पास छोड़कर रवाना हो गये। जैसे आप उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, वैसे मैं भी उनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।''

दूकानदार माथा पकड़कर जोर से चिल्लाया :– ''हाय! हाय!! मेरे पचास हजार रूपये चले गये।''

चपरासी भी चिल्लाया :– ''हाय! हाय!! मेरी नौकरी चली गई।''

यह कोई कल्पित कथा नहीं है, घटित घटना है।

पाँच हजार की रिश्वत देकर वह हजारों का लाभ उठाना चाहता था; किन्तु बदले में हजारों की हानि उठानी पड़ी। धोखे का फल उसी दिन मिल गया।

एक कारीगर था। राजा की ओर से उसे मासिक वेतन मिलता था। नगर सेठों के लिए बड़ी–बड़ी इमारतें उसने ठेके पर बनाई थीं। ठेके की आमदनी का चौथा हिस्सा राजा के खजानेमें जाता था। तीन हिस्से कारीगर को मिल जाते थे। जब कहीं ठेका नहीं मिलता, तब भी मासिक वेतन तो जारी ही रहता था; इसलिए उसके परिवार का भरण–पोषण आराम से होता रहता था। इतने अच्छे कलाकार को आजीविका के अभावमें कहीं दर–दर भटकना न पड़े – इस दृष्टि से मासिक वेतन के द्वारा राजा ने उसके पाँव बाँध दिये थे।

राजमहल के निर्माण में भी उसीका हाथ था। धीरे–धीरे कलाकार बूढ़ा हो गया। उसके हाथ पाँव काँपने लगे। राजा ने उसे अपने पास बुलाकर एक दिन कहा :– ''कारीगर! तुमने हमारी और नगर की बहुत सेवा की है। अब हम तुम्हें पेंशन देना चाहते हैं। केवल एक अन्तिम कार्य और कर दो। नगर के बाहर नदी के उस पार एक शानदार बँगला बना दो। बस, उसके बाद तुमसे कोई काम नहीं लिया जायगा। घर बैठे आधा वेतन तुम्हें पेन्शन के रूप में जब तक तुम जीवित हो, तब तक प्रतिमाह खजाने से दिया जाता रहेगा। उस बिल्डिंग का एस्टीमेट बना दो। कितनी राशि उसके लिए अग्रिम चाहिये ? यह भी निस्संकोच बता दो।''

कारीगर ने तत्काल गणना करके बताया :– ''महाराज! पचास हजार रु. मे पूरी बिल्डिंग बनेगी। पच्चीस हजार रु. मुझे एडवांस दिलवा दीजिये और कल से ही आपका काम शुरू करवा देता हूँ। महीने भर बाद बिल्डिंग आप को तैयार मिलेगी।''

राजा को कारीगर पर पूरा भरोसा था। उसने अपेक्षित सम्पूर्ण राशि (पचास हजार रू.) अग्रिम दिलवा दी।

कारीगर ने दिनभर में आवश्यक सामग्री खरीद ली और अपने मार्गदर्शन में मजदूरों से काम लेना दूसरे ही दिन शरू कर दिया; परन्तु उसके मन में विचार उठा कि यह अन्तिम काम है। इसके बाद मुझे न राजा से कोई ठेका मिलेगा और न प्रजासे ही। मेरी वृद्धावस्था को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देखकर कोई मुझ से काम भी लेना नहीं चाहेगा। मासिक वेतन भी आधा मिलेगा; इसलिए क्यों न इस बिल्डिंग में घटिया माल लगाकर अधिक से अधिक राशि भविष्य के लिए बचा लूँ। इस प्रकार प्रलोभन के मार्ग से उसके मन में छल ने प्रवेश कर लिया।

घटिया सामग्री लगाकर ऊपर से बढिया रंग–रोगन चढ़ा कर निर्धारित अवधि तक उसने बिल्डिंग तैयार कर दी। महाराज से जाकर उसने निवेदन किया कि आप चलकर बिल्डिंग का निरीक्षण कर लें। राजा ने कहा– "वाह! आपके काम का निरीक्षण कैसा ? जब आपकी देख–भाल में कार्य हुआ है तो अच्छा ही हुआ होगा।"

अगले दिन नागरिकों की ओर से कारीगर का अभिनन्दन–समारोह हुआ। भरी सभा में राजा ने उनकी पिछली सेवाओं की प्रशंसा करते हुए घोषणा की कि– नदीतट पर जो नया भवन इन्होंने बनाया है, वह राज्य की ओर से मैं इन्हीं को भेंट करता हूँ। अब वृद्धावस्था के कारण इन्हें आराम की आवश्यकता है। वे अपने परिवार सहित उसी भवन में जाकर आराम से रहें। राज्य की ओर से जीवन निर्वाह के लिए उन्हें आधा वेतन बिना काम लिये ही पेन्शन के रूपमें आजीवन मिलता रहेगा।

नागरिकों ने इस घोषणा का अनुमोदन किया और तालियाँ बजाकर हार्दिक हर्ष व्यक्त किया; परन्तु ऐसा भव्यभवन भेंट पाकर भी कारीगर के चेहरेपर प्रसन्नता का कोई भाव नहीं दिखाई दिया। क्यों ? वह जानता था कि भवन कमजोर है, उसमें घटिया सामान लगा है और कुछ ही वर्षों में वह धराशायी हो जानेवाला है।

लोकलाज से उसने नदीतट पर रहना तो प्रारंभ कर दिया; किन्तु भीतर–ही–भीतर पश्चात्ताप और चिन्ता से वह घुलता रहा। उसके छल ने उसी को छल लिया। मानसिक आघात से वह कुछ ही महीनों बाद चल बसा। दो–तीन वर्ष बाद भवन भी गिर पड़ा! उसका परिवार अनाथ हो गया। "मियाँ की जूती मियाँ के सिर" वाली कहावत चरितार्थ हो गई।

इसी प्रकार एक हत्यारे को वकील ने समझा दिया कि कोर्ट में कोई कुछ भी पूछे, तुम केवल एक ही उत्तर देना– "बकरी बैं"। बाकी तो मैं सब सँभाल लूँगा। दण्ड से बचाने के लिए वकील ने पाँच हजार रु. फीस ठहराई और पाँच सौ रू. अग्रिम ले लिये।

कोर्ट में न्यायाधीश के पूछने पर वह बोला :– "बकरी बैं!"

जज :– "अरे, क्या तू पागल हो गया है ?"

हत्यारा :– "बै"

जज ने उसे पागल मानकर मुक्त कर दिया। हत्यारे ने घर जाकर सोचा :–

मेरी फाँसी स्पष्ट, जब इस "बै" ने टाल दी!
नहीं मिटेगा कष्ट क्या इस "बै" से फीसका?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उधर से रात को वकील हत्यारे के घर पहुँचा। उसने अपनी शेष फीस (साढ़े चार हजार रु.) माँगी। उत्तर में हत्यारे ने कहा :– "बै"। वकील ने कहा :– "यह कचहरी नहीं है। यहाँ तो ढंग से बोल।" फिर भी वही उत्तर मिला– "बै"। वकील को बेरंग लौटना पड़ा! छल का फल भोगना पड़ा!! माया की मार सहनी पड़ी!!!

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१३. त्याग

त्यागानुरागी महानुभावो!

भोगों के क्षणिक सुख में बहुत आकर्षण होता है; परन्तु कभी आपने सोचा है कि भोग का सुख भी त्यागपर अवलम्बित है ? आप प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर त्याग करने जाते हैं। यदि उसमें कोई गड़बड़ नहीं हुई तो भोजन का सुख मिलेगा; अन्यथा भोजन से पहले भागकर डाक्टर के पास जायँगे और प्रार्थना करेंगे :– "डाक्टर साहब! पेट में कब्ज हो गया है– अजीर्ण हो गया है– आज सुबह ठीक से त्याग नहीं हुआ...."

इस प्रकार जब क्षणिक सुख के लिए भी त्याग अनिवार्य होता है, तब शाश्वत सुख के लिए त्याग को अनिवार्य बताया जाय तो कोई आश्चर्य जैसी बात नहीं।

गीता में लिखा है :–

त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥

[त्याग के बाद तत्काल शान्ति मिलती है (अनन्तर=अन्तर–रहित अर्थात् शीघ्र)]

आज पढ़े–लिखे लोग विश्वशान्ति (वर्ल्डपीस) की गम्भीर चर्चाएँ करते है; परन्तु अपने भीतर जो अशान्ति भरी पड़ी है, उसे मिटाने का कोई विचार ही नहीं करते! जिन्हें तैरने की कला न आती हो–ऐसे चार आदमी समुद्र में मिल जायँ, एक दूसरे को पकड़ लें तो परिणाम क्या होगा ? वे और भी जल्दी डूबेंगे! यही हाल इन लोगों का होता है।

हमारे प्रभु का एक विशेषण है– वीतराग। जहाँ राग है, वहाँ दुःख है और जहाँ त्याग है, वहाँ सुख है :–

नास्ति रागसमं दुःखम् नास्ति त्यागसमं सुखम्॥

(राग के समान कोई दुःख नहीं है और त्याग के समान कोई सुख नहीं है।)

फुटबॉल के मैदान में देखिये। यदि वहाँ कोई खिलाड़ी बॉल पकड़कर बैठ जाय तो किसी को खेल का आनन्द ही नहीं आयगा। सम्पत्ति भी उस बॉल के समान किक मारने के लिए है। जिसके पास बॉल जाती है, वही उसे किक लगाता है। खिलाड़ीं फुटबॉल के पीछे दौड़ता है–आप भी धन के पीछे दौड़ धूप करते है; परन्तु यह मत भूलिये कि खिलाड़ी का उद्देश्य क्या है ? उसका उद्देश्य होता है– किक लगाना। बादल पानी का संग्रह क्यों करता है ? पानी बरसाना ही तो उसका उद्देश्य है ?

जिस धन का संग्रह त्याग के लिए किया जाता है, वह परिग्रह नहीं कहलाता। साइकिल पर बैठकर यदि कोई पूरे विश्व का पर्यटन करने निकले तो उसे कई वर्ष लग जायँगे।. इससे विपरीत सुपर–सोनिक (अतिस्वन) विमान का उपयोग करनेवाला अपना पर्यटन शीघ्र समाप्त

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर लेगा। साधु और श्रावक के त्यागों का यही अन्तर है।. साधु होलसेल में त्याग करता है और श्रावक रिटेल में!

सद्गुणों के ढेर से भी अकेला त्याग अधिक वजनदार लगता है। नीतिकारों ने कहा है:–

त्याग एको गुणः श्लाध्यः किमन्यैर्गुणराशिभिः।
त्यागाज्जगति पूज्यन्ते पशु–पाषाण–पादपाः।।

–सुभाषितरत्नभाण्डागारम्

[त्याग ही अकेला प्रशंसनीय गुण है; ढेर सारे अन्य सद्गुणों से क्या मतलब ? त्याग से इस संसार में पशु (गाय आदि), पाषाण (प्रतिमा आदि) और वृक्ष तक पूजे जाते हैं (तो फिर मनुष्य की क्या बात ?)]

त्याग के आनन्द को भोगने की प्रेरणा देते हुए किसी ने कहा है :–

मेवे खाओ त्याग के, जो चाहो आराम।
इन भोगों में क्या धरा? नकली आम – बदाम।।

–दोहा सन्दोह

गीता में तामस, राजस और सात्त्विक–त्याग के इन तीन भेदों का उल्लेख इन शब्दों में पाया जाता है :–

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागः तामसः परिकीर्तितः।।
दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात् त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागम् नैव त्यागफलं लभेत्।।
कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन!
सङ्गं त्यक्त्वा फलञ्चैव स त्यागः सात्त्विको मतः।।

[जो कार्य अपने लिए नियत है (अनिवार्य है) उसका त्याग उचित नहीं है, मोहवश किया गया वह त्याग "तामस" कहलाता है। जिस कार्य को दुःखमय मानकर कायक्लेश के भय से त्यागा जाता है, उसका त्याग "राजस" है। त्याग करने पर भी त्यागी को उसका फल नहीं मिलता। हे अर्जुन! कर्त्तव्य मानकर अपने नियत कार्य को करते हुए जो व्यक्ति आसक्ति और फल की आशा का त्याग कर देता है, उसका त्याग "सात्त्विक" कहलाता है।]

फलाशा का त्याग ही निरपेक्ष (स्वार्थरहित) होता है। मनः शुद्धि के लिए उसे अनिवार्य बताते हुए कहा है :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

णहि णिरवेक्खो चागो, ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसुद्धी
अविसुद्धस्य हि चित्ते, कहं णु कम्मक्खओ होदि।।

—प्रवचनसारोद्धार

[जब तक त्याग निरपेक्ष नहीं होता, तब तक साधु की चित्तशुद्धि नहीं होती। जब तक चितशुद्धि (विषयकषाय से मुक्त) नहीं होती, तब तक कर्मक्षय भला कैसे हो सकता है ?]

तात्पर्य यह है कि त्याग का सीधा सम्बन्ध कर्मक्षयोपशभ से है; इसलिए :—

त्याग एव हि सर्वेषाम् मुक्ति साधनमुत्तमम्।।

(त्याग ही सब के लिए मुक्ति का उत्तम साधन है।)

त्याज्य (जिसका त्याग किया जाता है, उस) के अनुसार त्याग दो प्रकार का हो जाता है-बाह्यत्याग और आभ्यन्तर त्याग। धन, परिवार, घर, खेत आदि का त्याग ब्राह्म है और विषय—कषाय का त्याग अभ्यन्तर है। यद्यपि दोनों त्याग महत्त्वपूर्ण हैं; फिर भी बाह्यत्याग पहले किया जाता है और आभ्यन्तरत्याग बाद में। बाह्यत्याग का भी लक्ष्य अभ्यन्तर त्याग होता है। यदि अन्तमें अभ्यन्तर त्याग नहीं हो पाता तो बाह्यत्याग का कोई मूल्य नहीं सिद्ध होगा :—

बाहिरचाओ विहलो अब्भिन्तरगन्थिजुत्तस्स।।

—भावपाहुड १३

[जिसके भीतर (मन में) ग्रन्थियाँ (राग—द्वेष या विषय—कषाय की गाँठें) मजबूत हैं, उसका बाह्यत्याग विफल (असफल) हो जाता है]

शिष्य के द्वारा किसी गुरु ने यह प्रश्न सुना :— "त्याग करता हूँ, फिर भी मन को शान्ति क्यों नहीं मिलती ?"

इस पर गुरु ने उत्तर दिया :— "विचार कर। कही मन में फल की लालसा तो नहीं छिपी है ?"

फल के लोभ से, नरक के भय से अथवा गुस्से के कारण जो व्यक्ति त्याग करते हैं वे सच्चे त्यागी नहीं है।

इसी प्रकार जिन वस्तुओं का अभाव है अथवा जिनकी प्राप्ति असम्भव है, उनका त्याग करने वाला त्यागी नहीं हैं। यदि कोई गरीब व्यक्ति सोने की थाली में पाँचों पकवान एक साथ खाने का त्याग कर दे तो उसे त्यागी नहीं कह सकते; क्योंकि ऐसा त्याग कौन नहीं कर सकता ?

अप्राप्तेऽर्थे भवति सर्वाऽपि त्यागी।।

—नीतिवाक्यामृतम्

(जो वस्तु अप्राप्त है, उसका त्याग तो सभी कर सकते हैं।)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इसीलिए प्रभु महावीर ने कहा है :–

वत्थंगन्धमलंकारम् इत्थीओ सयणाणि अ।
अच्छंदा जेन भुंजन्ति न से चाइत्ति वुच्चइ।।

–दशवैकालिक

[वस्त्र, गन्ध अलंकार, स्त्री और शय्या (सेज) – जो इन चीजों को विवशता से (अभाव के कारण) नहीं भोगता, वह त्यागी नहीं कहलाता]

इससे विपरीत :–

जे य कन्ते पिये भोए लद्धेवि पिट्ठि कुव्वइ।
साहीणे चअइ भोए से हु चायित्ति वुच्चइ।।

–दशवैकालिक

(जो प्राप्त मनोहर प्रिय भोगों को पीठ दिखाता है – प्राप्त भोगों का भी त्याग करता है, वही त्यागी कहलाता है)

एक आदमी अपनी परछाई पकड़ना चाहता था। इसके लिए वह उसके पीछे भागता रहा; परन्तु हाथ में नहीं आई। वह थक कर हाँफने लगा। उसी समय किसी मुसाफिर ने उसकी परेशानी को दूर करने का उपाय सुझाया कि वह छाया की ओर पीठ कर के भागे तो छाया उसका पीछा करने लगेगी। उसने वैसा ही किया। वह सूर्यकी ओर मुँह करके दौड़ने लगा। अब छाया ही स्वयं उसका पीछा करने लगी। यही बात भौतिक सुखसामग्री के लिए कही जा सकती है :–

त्याग कियाँ जावै तुरत जो कोइ वस्तु जरूर।
आश कियाँ थी "आशिया!" जाती देखो दूर।।

कच्चे फल को ही तोड़ना पड़ता है; परन्तु पका फल वृक्ष का स्वयं त्याग कर देता है। वही फल स्वादिष्ट भी होता है। विचारों में जब परिपक्वता आती है– दृढ़ता आती है– निर्मलता आती है– उच्चता आती है, तब संसार का त्याग सहज हो जाता है। त्यागी को उस त्यागका आनन्द भी आता है।

एक योगी के पास पारस पत्थर था। उस पत्थर के विषय में ऐसी परम्परागत प्रसिद्धि है कि उसके सम्पर्क से लोहा सोने में रूपान्तरित हो जाता है। किसी निर्धन व्यक्ति ने कई महीनों तक उस योगी की सेवा की। सेवा से सन्तुष्ट होने पर योगी ने कुछ माँगने की बात कही। उसने पारस पत्थर माँग लिया। योगी ने दे भी दिया।

गरीब आदमी पारस पत्थर लेकर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ अपने घर पहुँचा। कुटुम्बियों को अपनी उपलब्धि से चकित करने के लिए उसने सबसे पहले लोहे की कोठी पर प्रयोग किया। कोठी में पत्थर रख दिया; परन्तु दिनभर उसमें पत्थर पड़ा रहा; फिर भी कोठी सोने की नहीं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हुई। कुटुम्बियों को जब उसने उपलब्धि की बात सुनाई तो वे भी उसकी हँसी उड़ाने लगे। स्वयं भी उसे बहुत दुःख हुआ। इतने महीनों की सेवा व्यर्थ गई। योगी ने पारस पत्थर के बदले कोई साधारण पत्थर उसे पकड़ा दिया था–ऐसा वह समझा।

वह दूसरे ही दिन रोता हुआ उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ योगी समाधिस्थ बैठे थे। समाधि खुलने पर योगी ने अपने भक्त की आँखों मे आँसू देखकर पूछा :– "कहो भाई! फिर कौनसा दुःख आ गया? क्या पारस पत्थर से भी दरिद्रता दूर नहीं हुई? या वह पत्थर किसी ने चुरा लिया है?"

भक्त :– "योगीराज! आपने जो पारस दिया था, वह पत्थर ही साबित हुआ। पत्थर भला लोहे को सोना कैसे बना सकता है?"

योगी :– "नहीं भाई! मैं ने तो तुम्हें पारस ही दिया था। तुमने प्रयोग ही गलत किया होगा।"

भक्त :– "प्रयोग में क्या गलती हो सकती है? जब लोहे को छूने मात्र से उसे सोने में परिवर्तित करने की शक्ति पारस में है, तब दिन–भर लोहे की कोठी में उसे डालकर रक्खा गया, फिर भी वह कोठी सोने में क्यों रूपान्तरित न हो सकी? आप स्वयं चल कर देख लीजिये।"

योगी ने घर जाकर देखा। कोठी पुरानी थी। उसमें धूल बैठी थी। अनेक जाले मकडियों के बुने हुए उसमें दिखाई दे रहे थे। पारस पत्थर उन जालों के बीच बिराजमान था! कैसे प्रयोग सफल होता?

योगी ने कोठी बिल्कुल साफ करवाई और फिर पारस का उस पर प्रभाव दिखाया।

साधुओं का प्रवचन भी पारस पत्थर के समान ही होता है; परन्तु जब तक आप अपने मन की सफाई नहीं कर लेते, तब तक उसका कोई प्रभाव नहीं दिखाई देगा। प्रवचन का प्रभाव देखना हो तो अपने मन पर लगे विषय–कषाय के मकड़ी के जालों को पहले हटाना होगा–उसमें भरे विकार भी धूल का पहले त्याग करना होगा।

आप जैन साधुओं की उपासना करें– सत्संग करें तो वे आप से क्या कहेंगे? वे त्यागी है; इसलिए हमेशा किसी–न–किसी वस्तु के त्याग की प्रेरणा करेंगे। बाह्यत्याग से ही वे प्रारंभ करेंगे, जिससे त्याग का अभ्यास हो जाय।

एक साधु ने किसी श्रावक से लौकी का त्याग करा दिया। घर आकर उसने पत्नी से कहा कि साधुजी की प्रेरणा से मैं ने लौकी का त्याग किया है; इसलिए कोई दूसरी सब्जी बनाना।

पत्नी ने सोचा कि इन साधुओं के चक्कर में जो आ जाता हैं, वह लौकी का त्याग करते–करते किसी दिन परिवार का भी त्याग करके चला जाता है; इसलिए त्याग की यह बीमारी पनपने देना ठीक नहीं। वह गुस्से में आकर बोली :– "क्यों? मैं तो लौकी की ही सब्जी बनाऊँगी। मेरे घर में ऐसी बातें नहीं चलेगी। खाना हो तो खाइये; अन्यथा...."

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पति के अहंकार को चोट लगी। वह भी गुस्से में गालियाँ बरसाने लगा। पत्नी भी पीछे न रही उसने चूल्हे में से जलती लकड़ी खींचकर हाथ में ले ली। उसकी आक्रमक मुद्रा से भयभीत पतिदेव भूखे ही अपने भवन से वन की ओर भाग खड़े हुए। पत्नी ने पीछा किया। वे रास्ते में एक नदी के तट पर जल्दी–जल्दी रेत हटाकर उससे बने खड्डे में छिप गये। पतिदेव के न दिखाई देने पर पत्नी घर लौट गई।

पतिदेव को शीतल मन्द पवन के झोंको से नींद आ गई। वे दौड़–धूप से थके हुए थे; इसलिए सोये।

आधी रात बीतने के बाद उधर चार चोर आये। नदी तट पर बैठकर उन्होंने धन का बँटवारा किया और अपने–अपने हिस्से के धन की पुट्ठलें बाँध लीं।

इधर सुषुप्ति समाप्त होने के बाद पतिदेव की स्वप्नावस्था प्रारंभ हुई। सपने में उन्हें क्रुद्ध पत्नी का वही विकराल रूप दिखाई दिया। डर के मारे वे बड़बड़ाये :– "खा लूँगा! खा लूँगा!! ठहर जा!!!" उनका आशय था कि– यह जलती हुई लकड़ी फेंक दे, मैं लौकी की शाक खा लूँगा, मुझे मत मार, ठहर जा; परन्तु चोरों ने उसे किसी भूत की आवाज समझकर वहाँ से भागना ही उचित माना। धन की चारों पुट्ठलें वहीं छोड़ कर वहाँ से वे नौ–दो–ग्यारह हो गये।

चोरों की भगदड़ से पतिदेव की नींद खुल गई। वे धन की चारों पोटलें उठाकर घर पहुँचे। पत्नी से उन्होंने कहा – "यह लो त्याग का फल!"

धन देखकर पत्नी बहुत प्रसन्न हुई। उसने उसी समय ताजा भोजन मिठाई सहित बनाकर पतिदेव को प्रेम से परोसा। पतिदेव ने खाना शुरू कर दिया। पत्नी उनके पास बैठ कर पंखा डालती हुई बोली :–

ऐसा सोगन जरूर करना धन की गाँठें घर में धरना
त्याग करूँगी में भी नाथ! चला करूँगी तुमारे साथ।।

आध्यात्मिक सुख के लिए त्याग होना चाहिये, भौतिक सुख के लिए नहीं– ऐसा वह अनपढ़ पत्नी बेचारी क्या समझे ?

आध्यात्मिक सुख के लिए एकाकी साधना आवश्यक है। अनेकता में झंझट है– अशान्ति है।

नमिराज मिथिला के शासक थे। रोग, बुढापा और मृत्यु प्रत्येक प्राणी के पीछे लगे रहते है। नमिराज भी इसके अपवाद नहीं रहे। एक दिन भयंकर दाहज्वर ने उनके शरीर को आ घेरा।

वैद्यों ने चन्दन का लेप करने की सलाह दी। पति सेवा का पुण्य लूटने के लिए अन्तःपुर की सभी एक हजार रानियाँ चन्दन घिसने बैठ गई। कुल दो हजार हाथों में पहनी हुई आठ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हजार चूड़ियों के खनकने की प्रचण्ड ध्वनि एक साथ उठी। उससे नमिराज का सिरदर्द बढ़ने लगा, अशान्ति बढ़ने लगी।

जब मन्त्री को अशान्ति का कारण मालूम हुआ तो द्वारपाल के द्वारा उसने अन्तःपुर में सूचना भिजवा दी। दो–तीन मिनिट में ही सूचना पर अमल हो गया। ध्वनि बिल्कुल बन्द हो जाने पर राजा को सन्देह हुआ कि कहीं चन्दन की घिसाई बन्द तो नहीं कर दी गई है? उन्होंने पूछा भी।

मन्त्री ने स्पष्ट किया :– ''महाराज! चन्दन की घिसाई तो अब भी चल रही है; किन्तु चूड़ियों की प्रचण्ड कर्कश ध्वनि इसलिए नहीं आ रही है कि प्रत्येक रानी ने प्रत्येक हाथ में एक–एक चूड़ी को छोड़ कर शेष चूड़ियां उतार कर रख दी है।''

इससे मिथिलानरेश विचारमग्न हो गये। सोचने लगे कि शान्ति एकाकीपन में है– अनेकता में नहीं। संसार के परिवार के बीच रहकर शान्त रहना अत्यन्त कठिन है। व्याधि (रोग) मिटते ही अनेकता के त्याग का–परिवार छोड़ने का उन्होंने संकल्प कर लिया।

संकल्प की पूर्ति के लिए दाहज्वर शान्त होते ही परिवार का, विपुल सम्पत्ति का, राजमहल का त्याग करके वे साधु बन गये और फिर :–

संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाण विहरइ॥

[संयम (चारित्र्य) और तप से आत्मा को भावित (पवित्र) करते हुए वे विचरण करने लगे]

दूसरों की भलाई के लिए किया जाने वाला त्याग, त्यागी को इस संसार में चिरस्मरणीय बना देता है।

एक किसान था। उसके घर में गेहूँ का एक बोरा भरा पड़ा था; फिर भी वह भूख के मारे तड़प–तड़प कर मर गया। लोगों ने उसे कंजूस समझा और महान् मूर्ख भी; परन्तु जैसा लोग समझते हैं, वह सर्वत्र सही नहीं होता।

असल में गेहूं होते हुए भी भूख से सूखकर देह छोड़ने वाला वह किसान बहुत बड़ा त्यागी निकला। यह रहस्य तब प्रकट हुआ, जब राजपुरुष उस बोरे को उठाकर ले जाने लगे। बोरे के नीचे किसान के हाथ से लिखी एक चिट्ठी मिली। उसमें लिखा था :– ''अभी अकाल का समय चल रहा है। यदि मैं इस बोरे के अनाज को खा जाता तो अगली फसल में बोने के लिए किसी के पास अनाज का एक दाना भी न रहता। सभी किसानों को बीज के लिए भरपूर अनाज मिल सके इसी दृष्टि से मैं भूखा रहा। अब भूख असह्य हो जाने से मैं अपने प्राण छोड़ रहा हूँ। गाँव के सब किसानों को यह गेहूँ बोनी (बुवाई) के अवसर पर बराबर–बराबर बाँट दिया जाय। बस, यही मेरी भावना है– अन्तिम इच्छा है। सब सुखी रहें।''

चिट्ठी का यह मैटर सुनते ही सब लोग उसके त्याग की दिल खोल कर प्रशंसा करने लगे। किसी इंग्लिश विचारक की सूक्ति है :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

To hold the hands in prayer is well
but to open them in charity is batter.

(प्रार्थना में हाथ जोड़ना अच्छा है; परन्तु त्याग में उन्हें खोलना और भी अधिक अच्छा है)

त्याग में विवेक होना चाहिये। केवल अनुकरण से उसका लाभ नहीं मिल सकता।

एक श्राविका के घर कोई साधु गोचरी के लिए आएँ। वे बड़े तपस्वी थे। भिक्षा लेकर ज्यों ही बाहर निकले, सब लोग उस श्राविका की भूरि–भूरि प्रशंसा करने लगे।

पड़ौस में एक वेश्या रहती थी। उस का मन भी प्रशंसा पाने के लिए ललचाया। कई साधुओं से उसने गोचरी के लिए घर आने का आग्रह किया; परन्तु नियमानुकूल आहार मिलने की आशा न होने से कोई आने को तैयार न हुआ।

आखिर उसने एक भाँड को पकड़ा। वह साधु का वेष लेकर आ गया। वेश्या ने खूब आदर–सत्कार के साथ बहुमूल्य भोजन उसके पात्र में परोस दिया। भाँड सड़कपर खड़ा–खड़ा खाने लगा। लोग जानते थे कि वह बहुरुपिया है। झूठा साधुवेष धारण करने से नाराज होकर लोग उसे पत्थरों से मारने लगे। भाँड बोला :–

वह साधू वह श्राविका तू वेश्या मैं भाँड।
थारा–मारा भाग्य सूँ पत्थर बरसे राँड!

त्याग और त्यागी के नकली अनुकरण से ऐसी ही दुर्दशा होती है। प्रवचन के बाद आपसे पूछा जाय कि संसार कैसा है तो आप कहेंगे– "बहुत बुरा है– कडुआ है" और मैं कहूँ :– "यदि ऐसा है तो कल विहार है , चलो मेरे साथ।" तो कितने लोग त्याग करने को तैयार होंगे ? सोचिये।

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१४. दान

दानवीर पुण्यात्माएँ!

कल त्याग विवेचन किया गया था। दान में भी त्याग तो करना ही पड़ता है; परन्तु त्याग में दान हो–यह आवश्यक नहीं। साधु अनगार होता है। वह घर का त्याग करता है; परन्तु घर का दान नहीं करता। त्याग में ममता छोड़ने की मुख्यता है, जब कि दान में अनुग्रह की मुख्यता होती है :–

अनुग्रहार्थं स्यातिसर्गो दानम्।।
विधि–द्रव्य–दातृ–पात्रविशेषात्तद्विशेषः।।

–तत्त्वार्थसूत्र ७/३३,३४

(अनुग्रह के लिए अपनी वस्तु का त्याग करना दान है। विधि, द्रव्य, दाता और पात्र की विशेषता से दान में विशेषता उत्पन्न हो जाती है।)

इन सूत्रों से पता चलता है कि दान में त्याग की अपेक्षा, अधिक व्यापक विचार करना पड़ता है। देश–काल के औचित्य का तथा लेने वाले के सिद्धान्त में बाधा न आये–ऐसा विचार करना विधि विचार है। दी जानेवाली वस्तु के गुण–दोष का, उपयोगिता का विचार द्रव्यविचार है। दाता में श्रद्धा कितनी है– दानपात्र के प्रति तिरस्कार, उपेक्षा, असूया तो नहीं है– दान के बाद उसमें किसी प्रकार का पश्चत्ताप, शोक या विषाद के भाव तो नहीं पैदा होते...इत्यादि विचार दातृविचार है। जिसे दान किया जा रहा है, वह सुपात्र है या नहीं अर्थात् वह दत्त वस्तु का सदुपयोग करना या दुरुपयोग ऐसा विचार पात्रविचार है।

दान जीवन के सद्गुणों का मूल है। दया को धर्म की माता कहा गया है :–

"धम्मस जणणी दया।।"

कौन–सा है वह धर्म ? वह धर्म है–दान। दया की रचनात्मक अभिव्यक्ति दान है। जब तक हृदय में सहानुभूति न होगी–अनुकम्पा न होगी, तब तक मनुष्य दान नहीं कर सकता। दानकी दुर्लभता बताते हुए कहा है:–

शतेषु जायते शूरः सहस्त्रेषु च पण्डितः।
वक्ता दशसहस्त्रेषु दाता भवति वा नवा।।

(सैंकडों व्यक्तियों में कोई एक शूरवीर होता है। हजारों व्यक्तियों में से कोई एक पंडित होता है। दस हजार में से कोई एक वक्ता होता है और दाता तो कभी होता है अथवा कभी नहीं भी होता।)

भोजन का कहीं से निमन्त्रण आने पर जो चेहरा खिल उठता है, दान का प्रसंग आने

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पर वही इस तरह मुरझा जाता है, मानो क्रिस्टल आइल पी लिया हो। दान न देने के लिए बाजार की मन्दी आदि हजार बहाने बनाये जायँगे; परन्तु आयकर अधिकारी ने बहीखातों में रोंग एन्ट्री का फतवा देकर कानूनी कार्रवाई का कागज आगे बढ़ाने की धौंस दे दी हो तो उस कागज पर पेपरवेट रखते समय कोई बहाना याद नहीं आयगा ? वह दस हजार रु. भी माँग ले तो कृष्णार्पणमस्तु!

याद रखने की बात यह है कि ऐसे मजबूरी में दिये गये दान से कोई पुण्य नहीं होता। भले ही वह गुप्तदान हो; परन्तु अनुकम्पा से प्रेरित होकर जो गुप्तदान (अर्थात् यशोभिलाषा से मुक्त रहकर दान) किया जाता है, उससे इसमें जमीन आसमान का अन्तर है। वह पुण्योपार्जन के लिए किया जाता है और वह पाप पर पर्दा डालने के लिए। वह स्वेच्छा से हर्षपूर्वक दिया जाता है। उसमें गौरव का अनुभव होता है और इसमें दीनता का।

दाता को दान से गौंरव प्राप्त होता है, उसका वर्णन एक कवि ने इन शब्दों में किया है :–

गौरवं प्राप्यते दानात न तु वित्तस्य सञ्चयात्।
स्थितिरुच्चैः पयोदानाम् पयोधीनामधः स्थितिः।।

–सूक्तिमुक्तावलिः

[दान से ही गौरव प्राप्त होता है, धन का संग्रह करने से नहीं। यही कारण है कि (दाता) बादल उच्च स्थान पर (आकाश में) रहते हैं और समुद्र नीचे।]

दान, भोग और नाश– ये तीन ही धन की गतियाँ मानी जाती हैं, धन का जो दान या भोग नहीं करता, उसके धन की तीसरी गति होती है अर्थात् उसका धन नष्ट हो जाता है :–

दातव्यं भोक्तव्यम् सति विभवे सञ्चयो न कर्त्तव्यः।
पश्येह मधुकरीणाम् सञ्चितमर्थ हरन्त्यन्ये।।

–शार्ङ्गधरपद्धतिः

[धन होने पर दान करना चाहिये या भोग करना चाहिये; परन्तु संग्रह नहीं करना चाहिये। देखो, यहाँ मधुमक्खियों के संचित धन (शहद) को दूसरे ही छीन ले जाते हैं।]

खेत की रक्षा के लिए खेत में किसान घास का एक पुतला बना देते हैं, जो खेत का अनाज न खुद खाता है और न दूसरों को ही देता है। दान–भोग से बचनेवाले पुरुष की उससे तुलना करते हुए कहा गया है :–

यो न ददाति न भुङ्क्ते सति विभवे नैव तस्य तद् द्रव्यम्।
तृणमयकृत्रिमपुरुषो रक्षति सस्यं परस्यार्थे।।

–शगर्ङधरपद्धतिः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

[धन होने पर भी जो न दान करता है और न भोग करता है, उसका वह धन है ही नहीं (उस धन का वह मालिक नहीं है)। वह (कंजूस) तो घास का कृत्रिम पुरुष (पुतला) है, जो दूसरों के लिए धान्य (फसल) की रखवाली करता है।]

ज्यों–ज्यों व्यक्ति दान करता है, त्यों–त्यों उसकी आत्मा उज्जवल होती जाती है। बादलों के उदाहरण से यह बात बहुत अच्छी तरह से समझाई गई है :–

किसिणिज्जन्ति लयन्ता उदहिजलं जलहरा पयत्तेणम्।
धवली हुन्ति हु देन्ता देन्तलयन्तरं पेच्छ॥

–वज्जालग्गम्

(सावधानी पूर्वक समुद्र के जल को लेते हुए मेघ काले हो जाते हैं; किन्तु जल बरसाते हुए उज्जवल हो जाते हैं। दाता और आादाता के अन्तर को देखो।)

गृहस्थ का धर्म क्या है ? दान। यदि दान न करने वाले भी गृहस्थ कहा जा सकता हो तो फिर पक्षी भी गृहस्थ है; क्योंकि उसका भी घर (गृह=घोंसला) तो होता ही है :–

जइ गिहत्थु दाणे विषु जगि पभणिज्जइ कोइ।
ता गिहत्थु पंखिवि हवइ जें घरू ताहवि होइ॥

–सावय धम्मदोहा

उत्तम पुरुष वे हैं, जो याचक की आवश्यकता का अनुमान कर के माँग ने से पहले ही उसे आवश्यक वस्तु देने का खयाल रखते हैं :–

मीयतां कथमभीप्सितमेषाम् दीयतां द्रुतमयाचितमेव।
तं धिगस्तु कलयन्नपि वाञ्छामर्थिवागवसरं सहते यः॥

–नैषधीयचरितम्

[किसी भी प्रकार इन (याचकों) के इष्ट का अनुमान कर लीजिये और फिर शीघ्र ही बिना मांगे वह इष्ट वस्तु इन्हें दे दीजिये। उसे धिक्कार हो जो याचक की इच्छा जानने के बाद भी याचना के शब्दों की प्रतीक्षा करता है– याचक को माँगने का अवसर देता है।]

बिना माँगे देने वाला दानी उत्तम होता है:–

उत्तमोप्रार्थितो दत्ते, मध्यमः प्रार्थितः पुनः।
याचकैर्याच्यमानोपि दत्ते न त्वधमाधमः।

–चन्द्रचरितम्

[बिना माँगे देनेवाला उत्तम, माँगने पर देनेवाला मध्यम और याचकों के द्वारा माँगा जाने पर भी जो नहीं देता, वह अधमाधम है (नीचातिनीच पुरुष है।)]

'रहिमन' छाप से अब्दुर्रहीम खानखाना ने हिन्दी में नीति के बहुत अच्छे दोहे लिखे हैं। उनमें से एक दोहा यह है :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'रहिमन' वे नर मर चुके जे कहुँ माँगत जाहिं।
उनसे पहिले वे मुए जिन मुख निकसत "नाहिं"।।

जो माँगते हैं, वे तो मुर्दे (गौरव-हीन) हैं ही; परन्तु जो इन्कार कर देते हैं- "नहीं है" ऐसा कह देते हैं, वे तो उन (याचकों) से भी पहले मर चुके हैं।

जिस धन का दान या भोग नहीं किया करता, उसका वह धनी आदमी रखवाला मात्र है, मालिक या स्वामी नहीं। कहा है :-

यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने।
तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषमन्यस्य रक्षसि।।

-हितोपदेशः

[जो विशिष्ट व्यक्तियों (सुपात्रों) को तुम दान करते हो और जो प्रतिदिन खाते हो, मैं मानता हूँ कि वही धन तुम्हारा है; शेष सारा धन दूसरों का है, जिसकी तुम रखवाली करते हो।]

दानवीर के रूप में कर्ण भी बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके द्वार से कभी कोई याचक खाली हाथ नहीं लौटता था।

महाभारत के युद्धक्षेत्र में एक दिन वे घायल होकर पड़े थे। श्रीकृष्ण को उसी समय उनकी दानवीरता की परीक्षा लेने की बात सूझी। इसके लिये वे ब्राह्मण का वेष ले कर वहाँ जा पहुँचे। कर्ण के पास उस समय कुछ भी देने लायक नहीं था। "क्या दूँ ? याचक यदि निराश हो कर लौटता है तो नियम टूटता है! जो जीवन-भर प्राप्त यश के प्रतिकूल होगा।"

कहते हैं- "जहाँ चाह, वहाँ राह" कर्ण को दान करने की तीव्र इच्छा थी; इसलिए उनका ध्यान सहसा अपनी दंतपंक्ति पर चला गया। वहाँ किसी दाँत में सोने की एक मेख लगी थी। फिर क्या था ? तत्काल उन्होने पास में पड़े एक पत्थर से अपने दाँत तोड़े! फिर उस स्वर्ण मेख को बाहर निकाला और विप्ररुपधारी श्रीकृष्ण के चरणों में उसे रख दिया।

श्रीकृष्ण ने प्रकट होकर उनकी हार्दिक प्रशंसा की।

तट पर लहरों के थपड़े देते हुए एक दिन सरोवर ने सरिता से कहा :- "बहुत दूर से लाई हुई अपनी जल संपदा खारे समुद्र को लुटा देना भी क्या कोई समझदारी का काम है ?"

सरिता :- "प्रतिफल की इच्छा के बिना निरन्तर देते रहना ही मेरा धर्म है। दान में ही जीवन की सफलता है; संग्रह में नहीं।"

कुछ महीने बीते। गर्मी का मौसम आया। सरोवर का जल सूख गया। सर्वत्र उसमें कीचड़ ही कीचड़ रह गया। उसकी दुर्दशा देखकर सरिता बोली :- "क्यों भाई सरोवर! वह अपार जलसम्पदा कहाँ है ? जिसका तुमने संग्रह किया था ? मैं क्षीण काय होकर भी जी तो रही हूँ; क्योंकि मैं बहती रहती हूँ- निरन्तर देती रहती हूँ।"

यह सुनकर लज्जित सरोवर और अधिक सूख गया। उसकी छाती पश्चात्ताप के दुःख

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से जगह–जगह दकर गई! परन्तु अवसर बीत जाने पर पछताने से क्या लाभ ?

विद्रोही डेन्मार्क के लोगों ने प्रचण्ड युद्ध में आल्फ्रेड की सेना को हरा दिया था। पराजित आल्फ्रेड एक दूर्ग में जा छिपा। उसके साथ कुछ सैनिक भी थे। धीरे–धीरे खाद्य सामग्री समाप्त हो गई। स्वयं आल्फ्रेड भी कई दिनों से भूख सह रहा था। ऐसी स्थिति में तीन दिन से भूखा एक सैनिक आल्फ्रेड के समीप पहुँचकर उससे खाने की कोई वस्तु माँगने लगा।

आल्फ्रेड ने अपनी रानी की ओर देखा। कई दिनों बाद बड़ी मुश्किल से उसी दिन उसे एक रोटी प्राप्त हुई थी। रानी ने रोटी के दो टुकड़े करके रखे थे। एक टुकड़ा अपने लिए था और दूसरा आल्फ्रड के लिए। आल्फ्रेड ने रानी से कहा :– "रानी! दो–तीन सैनिक भोजन सामग्री जुटाने के लिए बाहर गये हैं। वे अवश्य कुछ लायेंगे। तब तक मेरे हिस्से की आधी रोटी इस भूखे सैनिक को दे दो।"

रानी ने वह आदेश सुना वह भी उदारता में पतीदेव से कम नहीं थी। अपने हिस्से की आधी रोटी भी मिला कर उसने पूरी रोटी उस सैनिक को दे दी।

पुण्य का फल तत्काल मिला। गये हुए सैनिक पर्याप्त भोजन लेकर लौटे। सब ने भरपेट भोजन किया।

बौद्धों के धर्मशास्त्रों में लिखा है :–

नीत्थ चित्ते पसन्नम्हि अप्प का नाम दक्खिणा।।

[यदि प्रसन्नता से परिपूर्ण चित्त हो तो कोई भी दान अल्प (कम) नहीं होता!]

किसी विचारक ने लिखा है :–

'लो मत, भले ही स्वर्ग मिलता हो;
किन्तु दे दो, भले ही स्वर्ग देना पड़े!'

एक व्यापारी ने अपने व्यवहार से यह आदर्श प्रस्तुत किया था।

अपना जहाज माल से भरकर दोब्रीवे व्यापार के लिए अन्य देश की ओर जा रहा था। मार्ग में उसे गुलामों से लदा एक जहाज मिला। उसके हृदय में सहानुभूति की सरिता बहने लगी। जहाज के मालिक से बातचीत करके उसने अपना जहाज बदल लिया।

फिर सभी गुलामों से उनका पता पूछकर सबको उसने उनके घर भेज दिया। सिर्फ एक कन्या और उसकी दासी रह गई। कन्या रूस के सम्राट की पुत्री थी और अपने घर लौटना नहीं चाहती थी। दोब्रीवे की असाधारण उदारता से प्रसन्न होकर उसने उससे विवाह कर लिया।

दोब्रीवे पत्नी और दासी को साथ लेकर जब अपने घर लौटा तो उसके पिताजी बहुत नाराज हुए।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दूसरी बार उसे फिर व्यापार के लिए भेजा गया; किन्तु उसे मालूम हुआ कि एक जगह टैक्स न चुका सकने के अपराध मे कई लोगों को बन्दी बना लिया गया है। उसने अपना माल से लदा जहाज बेचकर प्राप्त सम्पत्ति से उसका सारा टैक्स चुका दिया। वे सब बन्धनमुक्त हो गये। इस कृपा के लिए सब लोगों ने उसे हार्दिक धन्यवाद दिया।

पिताजी फिर नाराज हुए; परन्तु दोनों यात्राओं से पुण्य का जो उपार्जन हुआ था, उससे वह सन्तुष्ट था।

तीसरी बार फिर कठोर चेतावनी देकर दोब्रीवे को व्यापारार्थ विदेश–यात्रा के लिए भेजा गया। उधर रूस का बादशाह अपनी पुत्री को ढूँढता हुआ एक बन्दरगाह पर आया वहाँ अपनी पुत्री की अँगूठी दोब्रीवे की अंगुली में देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ। पिछला सम्पूर्ण वृतान्त सुनकर उसने उससे कहा– "मैं तो रूस लौट कर जा रहा हूँ। मेरा यह मन्त्री आप के साथ रहेगा। आप अपने पूरे परिवार को साथ लेकर रूस में आजाइयेगा।"

मन्त्री के साथ दोब्रीवे–परिवार रूस की ओर चल पड़ा। रास्ते में मन्त्री ने दोब्रीवे को समुद्र में ढकेल दिया। उसने सोचा कि इससे असहाय होकर राजकन्या मेरा वरण कर लेगी और मैं राजा का जामाता बन कर मौज करूँगा; परन्तु राजकन्या ने उस धोखेबाज को पति बनाना उचित नहीं समझा; फिर भी समुद्र पार करना था; इसलिए उसने मन के भाव छिपा कर मुस्कुराते हुए कहा कि– रूस पहुँचकर मैं इसका निर्णय करूँगी।

उधर एक व्यक्ति ने प्राप्त सम्पत्ति का आधा भाग देने की शर्त्त पर दोब्रीवे को सुरक्षित रूप से रूस के राजमहल तक पहुँचा दिया। उसे देखकर प्रसन्न बादशाहने उसे रूस का पूरा राज्य सौंप दिया।

दोब्रीवे ने मन्त्री को क्षमा कर दिया। शर्त्त के अनुसार उस व्यक्ति को जब वह आधा राज्य देने लगा तो उसने लेना अस्वीकार कर दिया। दान अस्वीकार करके उदारता मे वह दोब्रीवे से भी दो कदम आगे बढ़ गया।

वैसे रहीम साहब (जो स्वयं बहुत बड़े दानी थे) का विचार था कि यदि आवश्यक वस्तु दान में मिल रही हो तो लेने में कोई संकोच नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो दे सकते है; वे देते हैं और जिन्हें जरूरत होती है, वे माँगते हैं :–

कोउ 'रहिम' जनि काहुके, द्वार गये पछिताय।
सम्पति के सब जात हैं, विपति सबै ले जाय।।

धनवान के पास सब को निर्धनता ले जाती है– इसलिए वहाँ जाने में किसी को पछताना क्यों चाहिये ?

रहीम साहब जब दान करते थे तो अपनी आँखे जमीन की ओर टिकाये रखते थे। इसका कारण पूछने पर वे बोले :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देने वाला और है, देत रहत दिन–रैन।
लोग भरम हम पर करै, ताते नीचे नैन।।

देने वाला तो कोई दूसरा (ईश्वर या मेरा भाग्य) है, जो हंमेशा देता रहता है; परन्तु लोग भ्रम से मुझे दाता समझते हैं; इसलिए संकोचवश मेरे नयन नीचे देखने लगते हैं। दान के साथ अभिमान से दूर रहने का यह कितना अच्छा उदाहरण है। सन्त तुलसी ने लिखा है:–

"दया धर्म का मूल है, पाप–मूल अभिमान।।"

दान धर्म का मूल (कारण) दया है; परन्तु अभिमान पाप का मूल है। यदि दान के साथ अभिमान आ गया तो पुण्य के बदले पाप का ही उपार्जन होने लग जायगा।

जो लोग दान से दूर रह कर भी अभिमान से भरे रहते हैं उनकी दशा तो अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। एक कवि ने चातक की अन्योक्ति से याचकों को यह बात समझाने की चेष्टा की है कि वे हर आदमी के सामने अपना हाथ फैलायें।

एक प्यासा चातक था। पानी के लिए वह बार–बार ऊपर बादलों की ओर निहारता, उनसे याचना करता, अपनी व्यथा सुनाता और गिडगिडाता रहता; परन्तु एक–एक करके सारे बादल गर्जना करते हुए बिना जल बरसाये ही आगे बढ़ते गये। उसी समय एक कवि ने उस चातक से कहा:

रे रे चातक! सावधानमनसा मित्र! क्षणं श्रूयताम्
अम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेपि न तादृशाः।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणीम् गर्जन्ति केचिद् वृथा
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः।।

[हे मित्र! चातक! सावधान मन से क्षण–भर सुनो। आसमान में बहुत से–बादल रहते हैं सब ऐसे नही है (जो जलदान करें) कुछ तो बरसातों के द्वारा धरती गीली कर देते हैं और कुछ व्यर्थ ही गर्जना करते है; इसलिए तुम जिस–जिस बादल को देखते हो, उस–उस के (सब के) सामने दीन वचन मत कहो (प्रार्थना के शब्द मत कहो)]

क्योंकि जो कंजूस हैं, उन से धन छूट नहीं सकता। जो स्वभाव से उदार हैं, वे ही दान कर सकते हैं।

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१५. धर्म

धर्म प्रेमियों!

धर्म जीवनरुपी घड़ी की चाबी है–प्रेरणा है। कार में पेट्रोल, चुल्हे में ईधन, और शरीर में भोजन की तरह जीवन में धर्म अत्यन्त आवश्यक है।

धर्म ही जीवन की एक मर्यादा है–व्यवस्था हैं। वही जीवन का सन्तुलन है–अनुशासन है। उसी से जीवन गतिशील बनता है।

धर्म गुण है, आत्मा गुणी। गुणी से गुण अभिन्न होता है। आत्मा से धर्म भी अभिन्न है; क्योंकि वह आत्मा का स्वरूप है–स्वभाव है।

वत्थुसहावो धम्मो।।

(वस्तु का जो स्वभाव है, वही उसका धर्म है)

इस व्याख्यान के अनुसार जलाना आग का धर्म है और बुझाना जल का; किन्तु आग के सम्पर्क में रहने पर जल भी जाने लगता है। यदि आग से दूर हटा दिया जाय तो खोलता हुआ जल भी फिर से धीरे–धीरे ठंडा हो जाता है। क्योंकि शीतलता ही उसका स्वभाव है। बीच में जो उष्णता आ गई थी, वह उसका विभाव था। उसी प्रकार शान्ति आत्मा का स्वभाव है, अशान्ति विभाव का विषय–कषाय के सम्पर्क से जीव अशान्त बच जाता है; परन्तु यदि उसका उनसे सम्पर्क तोड़ दिया जाय तो वह फिर से स्वभाव (शान्ति) में रमण करने लगेगा। सदाचार और परोपकार से आत्मा को शान्ति का अनुभव होता है; इसलिए शान्ति को जो साधन (सदाचार, परोपकार आदि) हैं, वे भी धर्म कहलाते हैं।

यदि मैं किसी को शत्रु समझता हूँ तो उसे देखकर में अशान्ति, वैर, दुर्भावना, ईर्ष्या, क्रोध आदि का जन्म होने लगता है, जो अधर्म है। प्रभु महावीर ने इसीलिए :

"मित्ती मे सव्वभूएसु।।"

(मेरी सब प्राणियों से मित्रता है।)

इस भावना को दृढ़ता से मन में स्थापित करने की बात कही थी; क्योंकि मैत्री–भावना धर्म में सहायिका है।

धर्म ही मनुष्य को पशुओं से अलग करता है :–

आहार–निद्रा–भय–मैथुनंच सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।

(आहार, निद्रा, भय और मैथुन तो पशुओं में और मनुष्यों में समान रुप से पाये जाते हैं। धर्म मनुष्यों में अकेला अधिक गुण हैं, इसलिए जिन मनुष्यों में धर्म नहीं है, वे पशुओं के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समान ही हैं।)

धर्म ने गाँधी जैसी हस्ती भारत को दी तो उसने धर्म की शक्ति से पूरे देश को स्वतन्त्रता दिला दी।

एक बार उनसे पूछा गया :– "महात्माजी! आप जैसे दुबले–पतले व्यक्ति में ऐसी शक्ति कहाँ से आ गई कि आप जिधर पाँव रखते हैं, उधर लाखों पाँव चल पड़ते हैं :– आपकी बात सुनकर करोड़ों आदमी जेल जाने को तैयार हो जाते हैं :– आप जीधर देखते हैं, करोड़ों आँखे उधर ही देखने लग जाती हैं ?"

वे बोले :– "यह मेरी शक्ति नहीं है, धर्म की शक्ति है। मैंने सत्य और अहिंसा को अपने जीवन में प्रतिष्ठित किया है। सत्य को ही मैं परमेश्वर मानता हूँ।"

फिर पूछा गया :- Where can I find truth? वह सत्य कहां मिल सकता है ?

तो गांधीजी ने उत्तर दिया :– 'No where. One can find truth in one's own heart' कहीं नहीं। व्यक्ति अपने ह्रदय के भीतर ही सत्य पा सकता है

क्योंकि शान्ति की तरह सत्य भी आत्मा का स्वभाव है। बालक जन्म से ही सच बोलता है। सच बोलने में सोचना नहीं पड़ता। सोचना पड़ता है, झूठ बोलने में। एक झूठ को छिपाने के लिए दूसरा और दूसरे को छिपाने के लिए तीसरा झूट बोलना पड़ता हैं। नये –नये बहाने ढूंढने पड़ते है। चिन्ताओं से व्यक्ति घिर जाता है। उसके भीतर की स्वभाविक शान्ति छिन जाती है।

मनुष्य सहज ही सत्य बोलता है। सत्य बोलना कभी कसी को सीखना, सीखाना नहीं पड़ता; इसलिए सत्य आत्मा का धर्म है। कर्त्तव्य का पालन करना धर्म है। धर्म की सैकड़ो व्याख्याएँ है; परन्तु संक्षिप्ततम व्याख्या यह है :–

धम्मो मंगलमुक्किट्ठम् अहिंसा संजमो तवो।
देवावि तं नमंसन्ति जस्स धम्मे सया मणो।।

(अहिंसा, संयम और तप रूपी धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है। जिस का मन सदा धर्म में रहता है, उसे देवता भी नमस्कार किया करते हैं)

अहिंसा आत्मा का स्वभाव है; क्योंकि :–

सब्बे जीवावि इच्छन्ति जीविउ न मरिज्जिउम्।।

(सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई नहीं चाहता)

जैसे हम जीना चाहते हैं, वैसे सभी प्राणी जीना चाहते हैं। जैसे हम चाहते हैं कि कोई हमारी हत्या न करे, वैसे सभी जीव चाहते हैं कि उनकी कोई हत्या न करे। जैसा व्यवहार हम दूसरों से चाहते हैं, वैसा ही व्यवहार हमें दूसरों के प्रति करना चाहिये; क्योंकि वे भी हम से वैसा ही व्यवहार चाहते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अहिंसक ज्ञानियों का प्रमुख उपदेश है :–

एवं खु णाणिणो सारम् जं न हिंसइ किंचणम्।।

(यही ज्ञानियों के ज्ञान का सारांश है कि वे किसी की हिंसा नहीं करते)

क्योंकि हिंसा, हत्या या वध अधर्म है– त्याज्य है :– .

अधर्मः प्राणिनां वधः।।

(प्राणियों की हत्या अधर्म है)

यही कारण है कि हिंसारूप अधर्म से धर्मात्मा सदा दूर रहते हैं।

धर्म का दूसरा लक्षण है–संयम। कार कितनी भी सुन्दर हो–मूल्यवान् हो; परन्तु यदि उस में ब्रेक न हो तो बैठने वाले सभी सुखी नहीं रह सकते; क्योंकि उससे उन्हें दुर्घटना का सदा भय बना रहेगा। संयम भी जीवन में ब्रेक का काम करता है। उससे जीवन निर्भय और निश्चिन्त बनता है।

यदि किनारे टूट जायँ तो नदी का जल गाँव को बहा ले जायगा। और चारों और तबाही मचा देगा जीवनरूपी जल के लिए संयम किनारों की तरह है। संयम नष्ट होने पर जीवन का दुरुपयोग होगा–आत्मा का पतन। शरीर संयम के लिए ही धारण किया जाता है :–

संजम हेऊ देहो धारिज्जइ सो कओ उ तदभावे।।

(संयम के लिए ही शरीर धारण किया जाता है। संयम के अभाव में शरीर कहाँ ?)

जिस प्रकार ब्रेक के अभाव में कार सुरक्षित नहीं रहती, उसी प्रकार संयम के अभाव में शरीर भी सुरक्षित नहीं रह सकता।

इतिहासकार ने निरन्तर परिश्रम करके बीस वर्षो में ग्रीस देश का सुविशाल इतिहास ग्रन्थ लिखा था; परन्तु उस पूरे ग्रन्थ का सारांश यही है कि विलास से ग्रीस का पतन हुआ तथा सादगी और संयम सें उस का उत्थान।

धर्म का त्रीसरा लक्षण है– तप। शारीरिक और मानसिक कष्टों, संकटों एवं उपसर्गो को शान्तिपूर्वक सहना तप है। इस से तेजस्विता प्रकट होती है :–

तपस्तनोति तेजांसि।।

(तप से तेज का विस्तार होता है)

इस प्रकार अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म को अपनाने से दुर्गति रुकनी है :–

दुर्गतौ प्रपतज्जन्तूद्धारणाद् धर्म उच्यते।।

(दुर्गति में गिरनेवाले जीव का उद्धार करने वाले को "धर्म" कहते हैं।)

संसार सागर में डूबने वाले जीवों के लिए धर्म द्विप के समान रक्षक है :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जरामरणवेगेणं बुज्झमाणाण पाणिणं।
धम्मो दीवो पईट्ठाय गइ सरणमुत्तमम्।।

–उत्तराध्ययन

(बुढापा और मृत्यु के प्रवाह में बहने वाले प्राणियों के लिए धर्म द्वीप है–प्रतिष्ठा है –गति है और है–उत्तम शरण)

इसी ग्रन्थ में अन्यत्र प्रभु महावीर ने फरमाया है :–

"दगो हु धम्मो नरदेव! ताणम् ।।"

–उत्तराध्ययन

[हे राजन् ! एक धर्म ही त्राण है– रक्षक है (सब जीवोंका)]

वैशेषिक दर्शन के अनुसार जिस से भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार का सुख प्राप्त होता है, वही धर्म है :–

यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।।

(जिस से बाह्य और आभ्यन्तर–दोनो प्रकार का सुख सिद्ध हो, वही धर्म है।)

भौतिक समृद्धि में वृद्धि भी तभी होती है, जब उसमें नैतिकता हो– प्रमाणिकता हो– ईमानदारी हो, जो अपने आप में धर्म है और आत्मकल्याण की सिद्धि तब होती है, जब अन्तस्तल के रागःद्वेष को बूरा माना जाय–मनको निर्मल बनाया जाय, जो अपने आप में धर्म है। कहा है:–

अन्तःकरणशुद्धित्वं धर्मत्वम्।।

(चित की शुद्धि ही धर्म है।)

गाय काली हो, पीली हो, सफेद हो या लाल– दूध तो वह सफेद ही देगी। इसी प्रकार विभिन्न मजहबों में – सम्प्रदायों में बातें तो धर्म की ही होगी। हमें ऊपर का लेबल नहीं, माल देखना है। क्रीम निकले हुए दूध की तरह बहुत–से लोग धर्म बाँटते हैं, परन्तु उससे शान्ति नहीं मिलती। मनको तसल्ली भले ही हो जाय कि मैंने दूध पीया है; परन्तु उससे शक्ति नहीं मिलेगी; इसलिए दूध की भी परीक्षा करनी चाहिये कि वह पेय है या नहीं–शक्तिवर्धक है या नहीं। धर्म की भी इसी प्रकार परीक्षा करके उसे ग्रहण करना है। परीक्षा करने का तरीका प्रभुने बताया है :–

पन्ना सम्मिक्खए धम्मम्।।

–उत्तराध्ययनसूत्र

(बुद्धि ही धर्म की समीक्षा कर सकती है– परीक्षा कर सकती है– निर्णय कर सकती है।)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आम जनता को बुद्धि का प्रयोग करने की फुरसत नहीं होती; इसलिए शास्त्रो के नाम पर कही गई हर बात पर वह विश्वास करके धोखा खाती है। हजारों वर्षो तक शास्त्र के नाम पर भारतवर्ष में हिंसक यज्ञ होते रहे हैं। मांस लोलुप पंडितों ने यज्ञों में पशु–वध करके स्वयं तो मांस खाया ही, प्रसाद के नामपर आम जनता को भी उन्होंने मांस खाने को मजबूर किया है; इसीलिए प्रभु ने घोषणा की थी कि बुद्धि से धर्म की जाँच करो और फिर वह पालन–योग्य लगे तो उसका पालन करो।

अहिंसा और नैतिकता–ये दोनों धर्म के प्राण हैं– आक्सीजन हैं। इनके अभाव में धर्म जीवित नहीं रह सकता

भारत में धर्म–प्रचारक कैसे हुए है? शस्त्रों से या प्रलोभन से यहाँ धर्म प्रचार नहीं किया गया। तर्क के बल पर यहाँ धर्मात्मा महात्माओं ने धर्म का स्वरूप समझाने का प्रयास किया है। धन के त्यागी साधु किसी को धन का प्रलोभन दे भी नहीं सकतें थे। अपनी प्रवचन कला से ग्रामानुग्राम विहार कर के उन्होंने लोगों की बुद्धि को जागृत किया, जिस से वे स्वयं सच्चे धर्म को पहिचान सकें और उसे अपना कर अपने जीवन को सफल बना सके। केवल प्रवचन से ही नहीं, अपने जीवन से भी उन्होंने लोगों के सामने यह आदर्श उपस्थित किया कि सम्यग् ज्ञान के प्रकाश में चलना ही धर्म है।

किसी बडे आदमी से मुलाकत के समय हमारा साथी हमारा परिचय देता है, उसी प्रकार धर्म भी हमारीं आत्मा का परिचय सब को देता है।

मन्दिर–मस्जिद–चर्च में पूजा–नमाज–प्रार्थना से कोई अपने को धर्मात्मा के रूप में "दिखा" सकता है, किन्तु अन्तस्तल और आचरण की पवित्रता के बिना वह धर्मात्मा "बन" नहीं सकता!

चम्मच से कोई पूछे कि तुम घण्टेभर से श्रीखण्ड परोस रहे हो तो बताओ, उसका स्वाद कैसा है? इस पर वह क्या कहेगा? कहेगा– "टेस्टलेस हूँ!" यही बात आप लोगों में से अधिकांश पर लागू होगी। आप धर्मस्थानों में जाते है, लोगों को दिखाने के लिए धार्मिक क्रिया भी करते है; परन्तु वे सब टेस्टलेस लगते है– किसी में कोई स्वाद ही नहीं आता?

धार्मिक क्रियाएँ आनन्द के लिए हैं– बिना समझ अनुकरण के लिए नहीं।

बड़े मुल्ला हजारों मुसल्मानों को एक सरोवर के तट पर नमाज पढ़ा रहे थे। सहसा उन्हें पीठ पर खाज चलने से जरासा–खुजलाना पड़ा नमाजियों ने समझा कि यह भी क्रिया नमाज का एक अंग होगी; इसलिए अगली पंक्तिवालों ने अपनी–अपनी पीठ खाज न चलने पर भी खुजलाई। इस से पीछे की पंक्ति में जो लोग थे, उन्हें कोहनी सें धक्का लगा। उन्होने धक्के को नमाज का अंग समझकर अपने से पिछे वालो को कोहनी से धकियाया। पीछे वालों ने और पीछे वालों के साथ ही व्यवहार किया। इस प्रकार अन्तिम पंक्ति में बैठे लोगों को जब

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धक्का लगा तो वो धबा धब पानी में गिर पड़े! गीले कपड़ों के साथ जब वे बाहर निकले और उन्होंने धक्के का कारण पुछा तो प्रत्यैक अगली पंक्ति वाले ने एक ही उत्तर दिया :- "कारण हमें क्या मालूम ? हमने तो पीछे से चली आई और आगे की ओर धकाई!"

अन्त में बड़े मुल्ला तक प्रश्न पहुँचा तो उन्होनें पीठ खाज चलने का असली कारण बताया और सब अपनी अपनी मुर्खता पर हँस पड़ें।

यदि पूजा, प्रतिक्रमण, पौषध, तप प्रत्याख्यान, सामायिक, वन्दन आदि धार्मिक क्रियाएँ भी आप "पीछे से आई और आगे धकाई" वाले सूत्र के आधार पर केवल रुढि के रूप में करेंगे तो उन में स्वाद नहीं आयगा। उन क्रियाओं में आत्मा भीगनी चाहिये। समझ कर करने पर उनमें स्वाद आ सकेगा; अन्यथा नहीं।

बड़े मुल्ला शादी करके अपने गाँव में आये। सबसे कहा; परन्तु बीबी उनके साथ नहीं थी, सो किसी ने उनपर विश्वास नहीं किया। सास-ससुर ने कहा कि महीनेभर बाद आकर बीबी को ले जाना; परन्तु इधर लोग शादी की बात को ही गप्प मान रहे थें। इससे उनके अहं को चोट लगी। वे तत्काल अपनी ससुराल पहुँचे। सास-ससुर से कहा कि मैं तो कल ही ब़ीबी को ले जाना चाहता हूँ। आप उसे तैयार कर दीजिये।

सास-ससुर ने स्वीकृति दे दी। तैयारी करके अगले दिन उसे मुल्ला के साथ बिदा कर दिया। चलते-चलते रास्ते में एक नदी आई। बीबी शौहर पर रौब ग़ालिब करने के फिराक में थी. उसे यह अच्छा मौका मिल गया था। बोली:- "मियाँ! मेरे पाँवों में मेंहदी लगी है। नदी के जल से रँग उड़ न जाय-इस तरह मुझे ले जाइये।"

वह मियाँ के कन्धे पर सवार होने का सुख लूटना चाहती थी। मियाँ भी उस्ताद थे। उसकी बात को समझ गये। बोले :- "ठीक है। मैं पूरी कोशिश करूँगा कि तेरा रंग कायम रहे।"

फिर बीबी के पाँव ऊँचे और सिर नीचे करके छाती से उसें चिमटाये हुए नदी में चल पड़े। पत्नी के मुंह में और नाक में पानी भरने लगा। श्वासोच्छ्वास लेने में कठिनाई होने लगी। दम घुट जाने से वह मर गई।

फिर भी वे उसे छाती से लगाये हुए ही अपने गाँव में पहुँचे। लोगों से कहा :- "यह देखो बीबी ले आया हूँ ससुराल से!"

किसी ने कहा :- "बड़े मुल्ला! इस का जीव गया।"

मुल्ला ने पिछला किस्सा सुनाकर कहा :- "जीव भले ही गया हो, रंग तो रहा!"

लोग हँसकर लोटपोट हो गये। हम भी जप, तप आदि समस्त धार्मिक क्रियाओं में समझने की कोशिश नहीं करेंगे तो अपने को हँसी का पात्र बनाये एगें। वहाँ प्राणों का पता नहीं है। जरूरत है उन क्रियाओं में विवेक की - रूचि लेने की-प्राण फूँकने की! हमारा धर्म

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हमें अपना मुर्दा उठाकर चलने का आदेश नहीं देता। वहाँ दिखावा नहीं, वास्तविकता लाने की बात कहता है। क्रिया के सही भाव लाने को कहता हैं।

बड़े मुल्ला ने एक दिन बीबी से कहा :– "आज मेरे लिए भोजन मत बनाना, क्योंकि बादशाह की ओर से नमाज पढ़ाने का बुलावा आया है। शाही नमाज के बाद शाही भोज होगा। बहु मूल्य पकवान मिलेंगे। भरपेट खाऊँगा; इसीलिए घर से भूखा भी चला जाऊँगा तो कोई बात नहीं।"

बीबी बोली :– "ठीक है। जैसी आपकी मर्जी हो, वैसा किजीये। नहीं बनाऊँगी आपके लिए भोजन।"

मुल्ला भूखे पेट नमाज पढ़ाने लगे। पढ़ाते समय उनका ध्यान सबको खुश करने की ओर था, खुदा की ओर नहीं।

नमाज के बाद शाही भोज शुरू हुआ। तरह–तरह की स्वादिष्ट चीजें मेज पर सजी हुई थी। आस–पास लगी कुर्सियों पर सब लोग खाने बैठे; किन्तु एक–एक दो–दो कौर लेकर सब उठ गये मुल्ला ने मन मे सोचा कि जब ये लोग उठ गये तो मुझे भी उठना पड़ेगा; अन्यथा ये लोग समझेंगे कि मुल्ला में शिष्टता ही नहीं है–न जाने कितने दिनों का भूखा होगा...आदि।

इस प्रकार इच्छा न होते हुए भी सब के साथ मुल्ला को उठना पड़ा। वहाँ से छूटते ही भागता हुआ वह घर आया। बीबी से बोला :– "पेट में चूहे दौड़ रहे हैं; जल्दी से खाना पकाकर परोस!"

बीबी :– "क्या शाही भोज से भी पेट न भरा?"

मियाँ ने सारा किस्सा सुनाया कि किस प्रकार इच्छा न होते हुए भी उठकर आना पड़ा। बीबी समझदार थी। वह बोली :– "एक बार फिर से नमाज पढ़ो; क्योंकि जो नमाज तुमने वहाँ पढ़ी, वह शाही मेहमानों को खुश करने के लिए थी–दिखावे भरके लिए थी, खुदा के लिए नहीं। वह खुदा तक नहीं पहुँच पायी। अब ऐसी नमाज पढ़ो कि वह खुदा के लिए हो। तब तक मैं भी तुम्हारे लिए भोजन बना देती हूँ।"

कहने का आशय यह है कि यदि दिखावे के लिए आप धर्म करेंगे तो वह आपकी आत्मा तक नहीं पहुंच सकेगा।

जिसकी आत्मा सरल होती है, वह धर्म में प्रविष्ट हो जाती है। सिलाई करने से पहले सूई में धागा पिरोते हैं। जब तक धागे में सरलता रहती है, तब तक वह सूई के छेद में प्रविष्ट होता रहता है, किन्तु ज्यों ही उसमे गांठ आ जाती है, अटक जाता है। आत्मा में भी यदि रागद्वेष की ग्रन्थियाँ पड़ी हों तो वह अटक जाती है। धर्म में उसका प्रवेश नहीं हो पाता।

धर्म सद्‌गुणों का स्त्रोत है– उद्‌गम है। उस में कवालिटी ही देखी जाती है, क्वांटिटी नहीं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चार मित्र थे। पूना की टिकट लेकर वे गुजरात जाने वाली गाड़ी में बम्बई सेन्ट्रल से बैठ गये। गाड़ी चल पडी। दादर स्टेशन पर टी.टी. ने टिकिट माँगी। एक की टिकिट पर पूना लिखा देखकर उस ने कहा :- "आप की टिकिट गलत है या आप गलत गाडी में सवार हो गये हैं।"

दूसरे मित्र का टिकिट देखी, उसपर भी पूना लिखा था। उसे भी टी.सी. ने यही कहा। इसपर पहला चिल्लाया- "You are wrong! Get out."

तीसरे की टिकिट पर भी पूना लिखा था। उसने टी.सी. की बात सुनने से पहले ही कहा:-

"I have my tickpt. You are without ticket. So you must get out or sit dawn."

चौथें ने अपने टिकिट पर पूना पढ़ कर स्वयं ने ही टी.सी. से कहा :- "आप किस दुनिया से पधारे हैं ? दिल्ली का राज्य भी आजकल बहुमत के बल पर चल रहा है। यहाँ हम चारों पूना के टिकिट पर पूना जा रहे हैं; इसलिए यह गाड़ी भी पूना ही जायगी। आप अकेले के कहने से यह गाडी गलत नहीं हो सकती।" "So we are right and you are wrong."

धर्म में आचरण देखा जाता है, बहुमत नहीं। खूब समझने जैसी बात हैं यह।

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१६. निर्भयता

साहसी सज्जनो!

भय साहस का विरोधी है। जो प्राणी पाप नहीं करता, वह भयभीत नहीं होता। पापी ही पकड़े जाने के भय से काँपता रहता है।

पड़ौसियों को देख–देखकर मनुष्य अपनी आवश्यकताएँ बढ़ा लेता है। फर्नीचर चाहिये, सोफासेट चाहिये, एयरकूलर चाहिये, फ्रिज चाहिये, स्कूटर चाहिये, कार चाहिये, हवाई जहाज चाहिये....इस सिलसिले का कोई अन्त नहीं आता। आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन चाहिये। धन के लिए वह अन्याय करता है, रिश्वत लेता है, बेईमान बनता है, झूठ बोलता है, धोखा देता है और न जाने क्या–क्या नहीं करता है? ज्यों–ज्यों ये पाप बढ़ते हैं, त्यों–त्यों चिंताएँ बढ़ती हैं–भय बढ़ता है।

पेट भरना आसान है, पेटी भरना कठिन। हम पेटी भरना चाहते हैं–परिग्रह बढ़ाना चाहते हैं–संग्रह करना चाहते हैं और भूल जाते है कि–

इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया।।

–उत्तराध्यायनसूत्र

[इच्छा आकाश के समान अनन्त होती है–अन्तहीन होती है]

उसकी पूर्ति के पीछे लगना पागलपन है :–

जो दसबीस पचास भये सत होइ हजार तु लाख बनेगी कोटि अरब्ब खरब्ब असंख्य धरापति होने की चाह जगेगी, स्वर्ग–पाताल का राज्य करूँ तृसना मनमें अति ही उमडेगी 'सुन्दर' एक सन्तोष बिना शठ! तेरी तो भूख कभी न मिटेगी

इस पद्य में सुकवि सन्त सुन्दर दास ने सन्तोष को तृष्णा से बचने का उपाय बताया है। जिसमें सन्तोष होता है, उसकी तृष्णा शान्त रहती है और आवश्यकताएँ सीमित। ऐसा व्यक्ति धन के लिए पाप नही करता; इसलिए निर्भय रहता है।

भय से हाथ–पाँव काँपने लगते है, मुंह सूखने लगता है और शक्ति क्षीण होने लगती है।

विचारकों ने भय उत्पन्न होने के चार कारण बताये हैं :– (१) शक्तिहीनता, (२) भय नामक मोहनीय कर्म का उदय, (३) भयानक दृश्य और (४) भय के कारणों की स्मृति।

बलवान् की अपेक्षा कमजोर आदमी अधिक डरता है; इसलिए सब को शक्तिशाली वीर बनने का प्रयत्न करना चाहिये।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मोहनीय कर्म के उदय से जो भय होता है, उससे तो वही बच सकता है, जो इस कर्म को क्षीण करने के लिए तपस्या करे। शास्त्रों में विध तपों का जो विधान पाया जाता है, वह केवल शास्त्रों की शोभा बढ़ाने के ही लिए नहीं है। जीवन को तेजस्वी, सशक्त और वीर बनाने के लिए है।

सिंह, नाग, भालू आदि भयंकर प्राणियों को देखकर ही प्राण काँपने लगते हैं, हिम्मत छूट जाती है और लोग भयभीत हो जाते है। जो भयंकर दृश्य को देखकर घबराहट में पड़ जाता है, वह उससे बचने का उपाय नहीं सोच पाता।

भय के कारणों का स्मरण करके डरना तो ऐसा दुर्गुण है, जिसे हम सीधी मूर्खता कह सकते हैं। कारण मौजूद न होने पर भी उनकी कल्पना करके काँपते रहना कहाँ तक उचित माना जा सकता है ? उसकी दुर्दशा का वर्णन किसी शायर की इन दो पंक्तियों में आ सकता है :--

इरादे बाँधता हूँ, सोचता हूँ, तोड़ देता हूँ
कहीं ऐसा न हो जाय! कही वैसा न हो जाये!

भय के इन चार कारणों का वर्णन स्थानांग सूत्र में मिलता है। इसी सूत्र में अन्यत्र भय के सात प्रकार बताये गये है :--

सत्त भयट्ठाणे पण्णत्ते तं जहा–इह
लोगभए, परलोगभए, आदाणभए, अकम्हाभए,
वेयणाभए, मरणभए, असिलोकभए।।

भय के सात प्रकार कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं :–

(१) इहलोक भय (सजातीय भय अर्थात् मनुष्य से मनुष्य को भय अथवा पशु को पशु से भय), (२) परलोकभय (विजातीय से भय जैसे मनुष्य को सिंह से, सिंह को हाथी से या हाथी को सिंह से भय), (३) आदान भय (चोरी, डकैती, लूट, छीनाझपटी आदि का भय, (४) अकस्मात् भय (बिना उचित कारण के कल्पना मात्र से अँधेरे आदि में डरना), (५) वेदना भय (पीड़ा से डरना), (६) मृत्यु से डरना (मरणभय) और (७) आश्लोक–भय (अपमान, अपशय, बदनामी आदि से डरना)।

'डरना कब तक उचित है ? इसके उत्तर में कहा गया है :–

तावद्भयेषु भेतव्यम् यावद् भयमनागतम्।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्त्तव्यमशङ्कया।।

--चाणक्यनीतिः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

[जब तक भय निकट न आ जाय तभी तक उससे डरना चाहिये (उससे बचने का उपाय सोचना चाहिये), परन्तु भय यदि सामने आकर खड़ा हो जाय तो बेखट के उस पर प्रहार करना चाहिये]

सज्जन हमेशा निर्भय होते है, क्योंकि उनके जीवन में कोई कौटिल्य, दुरावछिपाव, हिसाब में घोटाला आदि नहीं होता। कहा है :-

उसको डर किस बात का, जिसका सही हिसाब।
सत्पुरुषों की जीवनी, 'चन्दन' खुली किताब॥

उस खुली किताब से लोग निर्भयता का पाठ पढ़ सकते हैं। जो निर्भय होते हैं, वे दूसरों मे भी निर्भयता देखना चाहते हैं; इसलिए उनका व्यवहार सौम्य हो जाता है।

इससे ठीक विपरीत जो स्वयं डरपोक होते हैं, वे ही दूसरों को डराने का प्रयास करते हैं। संक्रामक बीमारी की तरह वे भय को सर्वत्र फैलाते रहते हैं। ऐसे लोगों के सम्पर्क से दूर रहने में ही अपना कल्याण है।

प्रश्न व्याकरण सूत्र में प्रभु महावीर ने फरमाया है :-

ण भाइयव्वं! भीयं खु भया अइन्ति लहुयं॥

[मत डरो। डरे हुए के आसपास भय शीघ्र मँडराने लगते हैं।]

डरपोक के आसपास अधिक से अधिक संख्या में भय जमा हो जाते हैं, इसलिए निर्भयता को हृदय में विराजमान करके ही व्यवहार के क्षेत्र में उतरना चाहिये।

सुना है कि बगदाद में एक बार पचास हजार आदमी महामारी से मर गये थे। उनमें महामारी से वास्तव में जो लोग मरे थे, उनकी संख्या पांच हजार से अधिक नहीं थी। शेष पैंतालील हजार की मृत्यु महामारी के डर से हुई थी। महामारी की अपेक्षा से भी महामारी का डर नौ गुना अधिक घातक सिद्ध हुआ था।

बिहार प्रान्त के किसी गाँव में एक आदमी बरसात से पहले अपनी झोंपड़ी की छत पर कवेलू जमा रहा था। उसे लगा कि उँगली में कोई काँटा चुभ गया है। उसने कोई पर्वाह नहीं की। शान्ति से पूरी छान जमा दी। साल भर बाद जब फिर से कवेलू जमाने लगा, तब उसे उसी स्थान पर मरे हुए एक साँप का सूखा शरीर दिखाई दिया। उसे याद आया कि गये साल जिसे मैंने काँटा समझ लिया था, वह वास्तव में सर्पदंश था! वह भय के मारे धड़ाम से नीचे फर्शपर आ गिरा, बेहोश हो गया और थोड़ी ही देर बाद उसके प्राणपँखेरू उड़ गये। इस प्रकार उसने यह प्रमाणित कर दिया कि साँप से भी भयंकर साँप का डर होता है।

चार बालक विद्या पढ़ने के लिए बनारस गये। जाने से पहले पड़ौस में रहने वाली एक बुढिया ने एक-एक लोटा छाछ भर कर सब को पिलाई। छाछ पीकर वे रवाना हो गये। बारह वर्ष बाद पंडित बनकर वे लौटे। उस बुढिया को जब प्रणाम करने गये, तब वह बोली :- "अच्छा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हुआ बेटो! तुम जीवित रह गये; अन्यथा मैंने जो छाछ तुम्हें पिलाई थी, वह जिस मटके से निकाली थी, उसमें से एक मरा हुआ साँप निकला था!"

यह सुनना ही था कि वे चारों युवक मारे भय के बेहोश होकर उस बुढिया के सामने ही सदा के लिए सो गये! सोचने की बात यह है कि यदि साँप ज़हरीला होता तो वे तत्काल मर जाते! बारह वर्ष की लम्बी अवधि के बाद उन्हें किसने मारा ? केवल भय ने, जो साँप से भी अधिक भयंकर होता है–घातक होता है।

सात आदमी थे। वे एक दिन एक साथ धन कमाने के लिए अपने गाँव से चल पड़े। चलते–चलते मार्ग में सूर्य अस्त हो गया। अँधेरे में चलना ख़तरनाक हो सकता था; इसलिए वे सड़क के किनारे ही एक वृक्ष के नीचे ठहर गये। बातें करते–करते जब नींद आने लगी तो सब एक कतार में लेट गये।

लेटने के बाद जिस का कतार में पहला नम्बर था, वह सोचने लगा कि कि जंगल का मामला है। इधर से आकर यदि किसी बिच्छू ने मुझे डंक मार दिया तो मेरी चिल्लाहट से सब जने सावधान होकर पेड़ पर चढ़ जायँगे। मैं अकेला ही मारा जाऊँगा। मैं ऐसी मूर्खता भला क्यों करूं ? इस समय सब लेटे हुए हैं–सब को नींद आ रही है। इस अवसर का लाभ उठाकर मैं क्यों न अपना स्थान बदल लूं ?

ऐसा सोच के ही वह उठा और कतार के अन्तिम साथी के बाद जाकर लेट गया। अब जिसका दूसरा नम्बर था, उसका पहला नम्बर हो गया। उसके मन में भी ऐसा ही विचार आये, फलतः वह भी उठकर अन्त में लेट गया, फिर क्रमशः तीसरा, चौथा, पाँचवाँ और छठ्ठा आदमी भी इसी प्रकार अन्त में जाकर लेट गया। यह सिलसिला सुबह तक बराबर चलता रहा। किसी को रातभर नींद नहीं आई और पौ फटते समय (अरुणोदय होने पर) जब उन्होंने आँखे खोलीं तो अपने को सब ने उसी गांव के किनारे पाया, जहाँ से वे चले थे! धन कमाने, परन्तु भय के कारण पुनः जहाँ थे, वहीं लौट आये।

भीरूता के संस्कार संगति से भी आ जाते हैं। एक सिंहनी का बच्चा जंगल में भटक कर सियारों के झुण्ड में पहुँच गया। इससे जवानी आ जाने पर भी वह सियारों की तरह कायर बना रहा। एक दिन कोई सिंह शिकार की खोज में उधर आ निकला। आते ही वह दहाड़ने लगा। गर्जना किये बिना कोई सिंह शिकार नहीं करता। यह उसका स्वभाव है। दहाड़ सुनकर सब सियार इधर–उधर भाग गये। सियारों के बीच पला हुआ वह सिंह भी घबराकर भागने लगा। सिंह ने उसे पकड़ लिया। पकड़ कर एक जलाशय के तट पर ले गया। वहाँ जल में उसे उसका प्रतिबिम्ब दिखाया और कहा कि तू मेरे जैसा ही सिंह है। जैसे मैं दहाड़ कर सब पशुओं को भगा देता हूँ, वैसे तू भी भगा सकता है। सिंह को इससे अपने सिंहत्व का बोध हो गया। उस की कायरता समाप्त हो गई। वह निर्भय बन गया।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय–कषाय में डूबे हुए प्राणियों के बीच रहकर हम भी कायर बन गये हैं। महावीर के उपासक होकर भी हमारे भीतर भीरूता ने आसन जमा रक्खा है ? जिनवाणी के श्रवण से आत्मबोध होने पर हमारी वीरता भी जागृत हो सकती है। शास्त्ररूपी सरोवर में झाँकने पर हमें भी मालूम हो जायगा कि महावीर की और हमारी आत्मा में कोई अन्तर नहीं है। यह बोध होने पर यदि हम भी सावधानी से गर्जना करें तो देखेंगे कि विषय–कषाय रूपी समस्त पशु इधर–उधर भाग रहे हैं। हमें परेशान करने या डराने की किसी में हिम्मत ही नहीं है।

एक भाई साधुओं को बड़ी श्रद्धा से वन्दन करता था और उधर दूकान पर ताले को भी!! क्यों ? उसे भय था कि लक्ष्मी कहीं रूठ कर अन्यत्र न चली जाय। लोभवश वह लक्ष्मी को अनौपचारिक (हार्दिक) वन्दन करता था और लक्ष्मी त्यागी को औपचारिक (दिखावटी)! एक ओर प्रतिक्रमण में अट्ठारह पापों के लिए "मिच्छामि दुक्कड" कहता था–प्रभु नाम की माला के मनके गिनता था और आधी रात को तिजोरी के सामने बैठकर उन्हीं उँगलियों से नोटों की गड्डियाँ भी गिनता था! इस प्रकार डबल रोल अदा करता था।

धन का संग्रह भी भय का एक बहुत बड़ा कारण है। गुरु गोरखनाथ को किसी भक्त ने सोने की एक ईट भेंट की थी। अपनी झोली में उसे रखकर अपने शिष्य के साथ वे किसी गाँव से दूसरे गाँव जा रहे थे।

रास्ते में जहाँ भी वे ठहरते, वहाँ अपने शिष्य मत्स्येन्द्रनाथ से कहते कि यहाँ कोई भय तो नहीं है।

जब अनेक बार उनके मुंह से यही वाक्य निकला तो मत्स्येन्द्रनाथ ने उसका कारण जानना चाहा। एक कुएँ के तट पर शिष्य को बिठाकर जब गुरुजी शौच से निवृत्त होने चले गये, तब मत्स्येन्द्रनाथ ने गुरुजी की झोली संभाली। उसमें सोने की ईंट थी। ईंट बाहर निकालकर मत्स्येन्द्रनाथ ने कुएं में डाल दी। बदले में उसी वजन का एक पत्थर झोली में रख दिया।

फिर स्नान–ध्यान से निपटकर दोनों आगे बढे। रास्ते में फिर से कहीं ठहरने का अवसर आया। गुरुजी बोले :–"यहाँ कोई भय तो नहीं है ?"

शिष्य ने कहा :– "सन्यासी को क्या भय हो सक्ता है भला ? जो भय था, उसे तो मैं कुएँ में डाल आया हूँ। आप निश्चिन्त रहिये।"

गुरुजी ने झोली सँभाली तो उसमें पत्थर निकला। पत्थर उन्होंने दूर फेंक कर शिष्य को इस बात के लिए धन्यवाद दिया कि उसने भय को दूर भगाकर बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है। शंकराचार्य ने लिखा है :–

अर्थमनर्थं भावय नित्यम् नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता नीतिः।।

–मोहमुदरः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ (धन) को हमेशा अनर्थ ही समझो। सचमुच उससे सुख का लेश भी नहीं मिल सकता। पुत्र से भी धन पाले डरते रहते हैं। यही नीति सर्वत्र दिखाई देती है

इसमें कहा गया है कि धनवान् को अपने पुत्र से भी डर लगता है कि कहीं धन पर अधिकार पाने के लिए यह मेरी हत्या कर नहीं देगा? इस प्रकार धन जब पुत्र से भी भयभीत कर देता है तो जीसके जीवन में परोपकार नहीं हैं, उससे तो घास ही देता है, तब औरों की क्या बात?

यह तो भय का एक पक्ष हुआ; परन्तु उसका एक दूसरा पक्ष भी है, जो उज्जवल है। जहाँ भय मनुष्य को अच्छे कार्यो की प्रेरणा देता है, वहाँ वह उपादेय है। जैसे सन्त तुलसीदास ने लिखा है :-

हरि डर गुरु डर गाम डर, डर करणी में सार।
'तुलसी' डर्या सो उबर्या गाफ़िल खाई मार।।

ईश्वर का, गुरु का और गाँव(जनता) का डर हमें सन्मार्ग पर चलाता है, बुरे कार्यो से रोकता, संयम सिखाता है और कर्त्तव्यपालन की प्रेरणा देता है तो इस डर को छोड़ने की सलाह कौन देगा?

बाईबिल में लिखा है :- "भगवान् का भय ही ज्ञानका उदय करता है।"

ज्ञानी पाप नहीं करता जो भगवान् से डरता है, वह भी पाप नहीं करता; इसलिए दोनों समान हैं। जो ज्ञानी है, वही तो भगवान् से डरता है और जो भगवान् से डरता है, वही तो सच्चा ज्ञानी है!

एक अन्य कवि ने लगातार डरते रहने की सलाह दी है। किन से? उसी के शब्दों में सुनिये:-

कुतो हि भीतिः सततँ विधेया।
लोकापवादाद् भवकाननाच्च।।

लगातार किससे डरना चाहिये? लोकनिन्दा से और संसार रूपी जंगल से

बुरे कार्यों से ही किसी की लोग निन्दा करते हैं; इसलिए लोक निन्दा से डरने वाला निश्चय ही बुरे कार्यो से दूर रहने का प्रयास करेगा।

इसी प्रकार भटकने के डर से लोग सडक पर ही घूमना पसन्द करते हैं, जंगल में नहीं। संसार भी एक ऐसा ही घोर जंगल है, जिसकी विभिन्न योनियों में प्राणी भटक रहे हैं। जो भवारण्य में भटकने से डरते हैं, वे धर्म की पक्की सड़क पर चलना पसन्द करते हैं।

तुलसीदास तो भक्ति के लिए भय को अत्यावश्यक घोषित कर गये हैं, उनके शब्द ये है:-

भय बिनु प्रीति न होई गुसाई!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कबीर साहब भी इसी पक्ष में थे। वे भय को पारस पत्थर के समान बता कर कह गये हैं कि निर्भय तो किसी को बनना ही नहीं चाहिये :–

भय से भक्ति सभी करें भय से पूजा होय।
भय पारस है जीविका निर्भय होउ न कोय।।

जो निर्भयता यह कहती है कि मैं किसी से नहीं डरती–भले ही वह ईश्वर हो या गुरु, तो वह उत्थान के बदले हमारे पतन का ही मार्ग प्रशस्त करती है।

इससे विपरीत ईश्वर का, गुरुका अथवा माता–पिता का भय किस प्रकार हमारे उत्थान का, उन्नति का, प्रगति का एवं जीवन सुधार का प्रमुख आधार बन जाता है ? यह बात एक उदाहरण से स्पष्ट करने का मैं कुछ प्रयास करता हूँ। सुनिये :–

किसी प्रदेश में एक सुन्दर नगर था। उसमें हजारों भव्य भवन बने हुए थे। एक भवन में अपने माता–पिता के साथ पाँच–छह वर्ष का एक बालक रहता था। रविवासरीय अवकाश के कारण उस दिन वह विद्यालय में अध्ययनार्थ नहीं गया था। दोपहर की बात है, लगभग दो बजे का समय होगा। अपने भवन के गवाक्ष में बैठा हुआ वह बालक नीचे जाने आने वालों की विभिन्न चेष्टाएँ देख कर अपना जी बहला रहा था।

उसी समय सहसा उसकी दृष्टि एक खोमचे वाले पर पड़ी। उस के खोमचे में ताजे चमकीले जामुनों का ढेर लगा था। खरीदने वालों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए खोमचे वाला मधुर स्वर में इस तरह पुकार रहा था :–

"लो जी! काले–काले जामुन
सुन्दर सस्ते नीले जामुन
ताजा बढिया मीठे जामुन
गीले और रँगीले जामुन
लोजी! और चखोजी जामुन
लो जी! प्यारे–प्यारे जामुन
पके हुए हैं सारे जामुन
सारे जग से न्यारे जामुन"

यह सुनकर बालक के मन में जामुन खाने की तीव्र इच्छा जागृत हुई। उसने पिताजी के खुँटी पर टँगे कोट की जेब से दस पैसे का एक सिक्का चुपचाप निकाला। फिर भवन की ऊपरी मंजिल से नीचे उतर कर सड़क पर भागता हुआ वह खोमचे वाले के पास जा पहुँचा। उससे दस पैसे के जामुन लिये। वहीं खड़े–खड़े खाये। जामुन से उसकी जीभ जामुनी रंग से रंगीन हो गई।

अब उस के सामने यह समस्या खड़ी हो गई कि जीभ का रंग छिपाया कैसे जाय ? यदि बोलने के लिए वह मुँह खोलता है तो घर वाले जान जायँगे कि जामुन खाये गये हैं और फिर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ढेर सारे प्रश्न पूछे जायँगे–चोरी पकड़ी जायगी। आखिर अपनी बुद्धि के अनुसार बालक ने सोचा कि मौन रहना ही सब से अच्छा उपाय है। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी! उसने मुँह बन्द कर लिया। कुटुम्बियों द्वारा पूछे गये किसी प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। माँ–बाप चिन्तित हुए कि न जाने लल्लू को किस बिमारी ने घेर लिया है कि गुम–सुम रहता है–मुँह तक नहीं खोलता ?

तत्काल फोन करके पिताजी ने डाक्टर को घर बुलाया। बालक की तबीयत देखकर कहा कि मैं अभी एक ही इंजैक्शन में इसका मुँह खुलवा देता हूँ। आप चिन्ता न करें। फिर इंजैक्शन की सूई बैग से ज्यों ही बाहर निकाली त्यों ही घबराकर बालक चिल्ला उठा :– "नहीं, सूई मत लगाइये। मैंने दस पैसे चुराकर जामुन खा लिये थे; इसी लिए चुप रहकर जीभ का रंग छिपा रहा था। अब मैं कान पकड़ता हूँ। कभी चोरी नहीं करूँगा। मुझे माफ कर दीजिये।"

इस प्रकार भय ने उसे सुधार दिया।

सारांश यह है कि यद्यपि निर्भयता साहस और वीरता का लक्षण हैं, फिर भी उद्दंड और गैरजिम्मेदार बनाने वाली निर्भयता अनुपादेय है।

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१७. परोपकार

परोपकार परायणी महाजनों!

प्रभु महावीर ने केवल ज्ञान प्राप्त करने के बाद ग्रामानुग्राम विहार करके स्थान स्थान पर प्रवचन क्यों किये थे? क्या वे कोई सम्प्रदाय चलाना चाहते थे? अपने शिष्यों की संख्या बढ़ाना चाहते थे? क्या वे प्रसिद्धि पाना चाहते थे? नहीं, बिल्कुल नहीं। उनके प्रवचनों का एक मात्र उद्देश्य था– परोपकार। अपनी दीर्घकालीन साधना के द्वारा उन्होंने जो कुछ प्राप्त किया था वे उसे प्राणीमात्र के कल्याणार्थ वितरित करना चाहते थे। सूत्रकारों ने लिखा है :–

सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए भगवया पावयणं सुकहियम्॥

[सभी जगत् के प्राणियों की रक्षा रूप दया (का प्रचार करने) के लिए प्रभुने भली भाँति प्रवचन किया था]

हिन्दू शास्त्रों में कहा है कि विष्णु ने परोपकार के ही लिए दस अवतार लिये थे :–

परोपकृतिकैवल्ये तोलयित्वा जनार्दनः।
गुर्वीमुपकृतिं मत्त्वा ह्यवतारान् दशाग्रहीत्॥

–सुभाषितरत्नभाण्डागारम्

[परोपकार और कैवल्य को तौल कर विष्णु ने देखा कि परोपकार का पलडा अधिक भारी है (कैवल्य की अपेक्षा परोपकार अधिक महत्त्वपूर्ण है) तो उसे मानकर दस अवतार ग्रहण किये]

हम यदि दूसरों पर उपकार करते हैं–उन्हें सुख देते हैं, तो वे भी हमें सुख देंगे। सन्त तुलसीदास से पूछिये। वे कहते हैं :–

ग्रन्थ पन्थ सब जगत के बात बतावत दोय।
दुःख दीन्हें दुःख होत है, सुख दीन्हें सुख होय॥

परोपकार को उन्होंने सर्वश्रेष्ठ धर्म बताते हुए कहा है :–

परहित सरिस धरम नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥

परहित (दूसरों की भलाई) के समान कोई धर्म नहीं है और परपीड़ा (दूसरों को दुःख देने) के समान कोई नीचता (अर्धम) नहीं है।

परोपकारी ही जीवित है, शेष सब मुर्दे हैं–ऐसा घोषित करते हुए कहा गया है :–

आत्मार्थं जीवलोकेस्मिन् को न जीवति मानवः।
परं परोपकारार्थम् यो जीवति स जीवति॥

–सुभाषितरत्नभाण्डागारम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

[कौन सा मनुष्य है, जो अपने लिए इस संसार में जीवित नहीं रहता ? (स्वार्थ सिद्ध करने के लिए सभी जीवित हैं) परंतु जो दूसरों की भलाई के लिए जीवित रहता है, वही वास्तव में जीवित है (अन्य सब मृत हैं)]

जिसके जीवन में परोपकार नहीं है, उससे तो घास ही अच्छी! कैसे ? एक कवि के शब्दों में देखिये :–

तृणं चाहं वरं मन्ये, नरादनुपकारिणः।
घासो भूत्वा पशून् पाति भीरून् पति रणांगणे॥

–सुभाषितरत्नभाण्डागारम्

[अनुपकारी मनुष्य से तो मैं तिनके को अच्छा मानता हूँ, जो घास बनकर पशुओं की रक्षा करता है और युद्ध क्षेत्र में कायरों की]

लड़ते–लड़ते जब किसी योद्धा की हिम्मत टूट जाती है, तब वह मुँह में तिनका लेकर बच जाता है। तिनका लेकर वह प्रकट करता है कि मैं आपकी गाय हूँ, मुझे मत मारिये। उसके इन भावों को समझ कर विजेता वीर, उसे मुक्त कर देता है–अभयदान दे देता है।

मरने पर पशु की चमड़ी भी जूते–चप्पले का रूप धारण करके मनुष्य के पाँवों की रक्षा का परोपकार करती है। मनुष्य जीवित रहकर भी यदि परोपकार नहीं करता तो वह उस पशु से भी निकृष्ट है, गया–बीता है। कहा है :–

परोपकारशून्यस्य धिङ् मनुष्यस्य जीवितम्।
जीवन्तु पशवो येषाम् चर्माप्युपकरिष्यति॥

–शार्ङ्धरपद्धतिः

[परोपकार से रहित मनुष्य के जीवन को धिक्कार हो। पशु जीवित रहें, जिनका चमडा भी उनके मरने के बाद उपकार करता रहेगा]

परोपकार सज्जनों का स्वभाव बन जाता है :–

अनपेक्षितगुणदोषः परोपकारः सतंव्यसनम्॥

[गुणदोष का विचार किये बिना परोपकार करते रहना सज्जनों का व्यसन (स्वभाव) बन जाता।]

दूसरों की भलाई के लिए धन ही क्यों ? प्राण तक न्यौछावर करने को वे तैयार रहते हैं; क्योंकि वे जानते हैं :–

परोपकारः कर्त्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि।
परोपकारजं पुण्यम् न स्यात्क्रतुशतैरपि॥

[प्राणों से और धन से भी परोपकार करते रहना चाहिये; क्योंकि उससे जितना पुण्य होता है उतना सैंकड़ों यज्ञों से भी नहीं होता।]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शरीर की शोभा किससे होती है ? अलंकारों को धारण करने से या चन्दन से ? नहीं–नहीं:–

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणिर्न तु कंकणेन।
विभाति कायः खलसज्जनानाम् परोपकारेण नतु चन्दनेन।।

–भर्तृहरिः

[कान शास्त्र सुनने से सुशोभित होते हैं, कुण्डल से नहीं। हाथ दान से सुन्दर लगते हैं, कंगन से नही। निश्चय पूर्वक सज्जनों का शरीर परोपकार से ही शोभा पाता हैं, चन्दन के लेपन से नहीं।]

सच्चे परोपकारी प्रार्थना की भी प्रतीक्षा नहीं करते :–

पद्माकरं दिनकरो विकसं करोति चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोपि जलं ददाति सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः।।

–भर्तृहरिः

[सूर्य बिना प्रार्थना (याचना) सुने ही कमलों के समूह को और चन्द्र कुमुदों के समूह को विकसित कर देता है तथा मेघ भी बिना माँगे जल का दान करता रहता है। इससे सिद्ध होता है कि सज्जन स्वयं ही दूसरों की भलाई में लगे रहते है]

दूसरों का उपकार करना एक सद्गुण है, परन्तु दूसरों से अपने लिए उपकार चाहना दुर्गुण है। नदी, बादल, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि की तरह महापुरुष भी कभी अपने उपकारों का बदला (प्रतिफल) नहीं चाहते।

स्थानांग सूत्र में लिखा है कि तीन व्यक्तियों के उपकारों का बदला चुकाना कठिन हैं :–

तिण्हं दुप्पडियारं समणाउसो! तं
जहा–अम्मापिउणो, भट्टिस्स, धम्मायरियस्स।।

[हे आयुष्मन् श्रवणो! इन तीनों के उपकारों का बदला चुकाना बहुत कठिन है–माता–पिता, स्वामी और धर्माचार्य।]

क्योंकि :–

प्रत्युपकुरुते बहवपि न भवति पूर्वोपकारिणस्तुल्यः।।

[प्रत्युपकारी (उपकार का बदला चुकाने वाला) बहुत–सा उपकार करके भी पूर्वोपकारी की बराबरी नहीं कर सकता!]

सज्जनों के पास जो कुछ होता है, वह परोपकार के ही लिए होता है :–

पिबन्तिनद्यः स्वयमेव नाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः परोपकाराय सतां विभूतयः।।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

[नदियाँ स्वयं अपना जल नहीं पीतीं–वृक्ष स्वयं अपने फल नहीं खाते–मेघ फसलों को नहीं खाते। (इससे प्रमाणित होता है कि) सज्जनों का ऐश्वर्य परोपकार के ही लिए होता है]

इसी प्रकार अन्यत्र कहा है :–

रत्नाकरः किं कुरुते स्वरत्नैः ? विन्ध्याचल, किं करिभिः करोति?
श्रीखण्डखण्डैर्मल्याचलः किम्? परोपकाराय सतां विभूतयः॥

–नीतिप्रदीपः

[समुद्र अपने रत्नों से क्या करता है ? विन्ध्याचल अपने हाथियों से क्या करता है ? मलयाचल को चन्दन के टुकड़ों से क्या लाभ ? वह उनसे कौनसा लाभ उठाता है ? कुछ नहीं। सज्जनों का ऐश्वर्य परोपकार के लिए ही होता है]

गोचरी के लिए आये धर्मरूचि अनगार को नागश्री ने विष जैसी कडुई तुम्बीका शाक दे दिया। अपने विशेष अनुभव से गुरुजी ने जान लिया कि शाक खाने योग्य नहीं है। उन्होंने धर्मरूचि को यह आदेश दिया कि इस शाक को बस्ती से बाहर ले जाकर किसी निर्जीव स्थान पर परठ दो।

शिष्य ने आदेश का पालन किया। शाक लेकर वह बस्ती से बाहर गया। वहाँ निर्जीव भूमि पर शाक का कुछ अंश डाला तो इधर–उधर से दो–चार चीटियाँ वहाँ आ गई और शाक के प्रभाव से मर गई। धर्मरूचि ने सोचा कि सारा शाक डालने पर तो घी की सुगन्ध से आकर्षित होकर हजारों चींटियाँ यहाँ एकत्र होंगी और अपने प्राण खो देंगी। उन सब की रक्षा के लिए क्यों न मैं ही स्वयं इसे खा लू ?

वैसा ही किया भी गया। परोपकार के लिए धर्मरूचि ने अपने प्राणों का त्याग कर दिया।

इंग्लैड के सुप्रसिद्ध लेखक और सुभट सर फिलिप सिडनी एक दिन युद्धक्षेत्र में घायल होकर पड़े थे। उन्हें जोरदार प्यास लगी थी। कुछ सिपाही उनकी प्यास बुझाने के लिए बड़ी मुश्किल से थोड़ा–सा जल प्राप्त करके एक प्याले में लाये थे। ज्यों ही वे जल पीने लगे, त्यों ही उनकी नजर बगल में लेटे एक ऐसे घायल सैनिक पर पड़ी, जो टकटकी लगाकर उनके प्याले की ओर देख रहा था। वह बहुत अधिक प्यासा था।

सर फिलिप सिडनी को उसकी दशा पर दया आ गई। उन्होंने सोचा कि मृत्यु तो सभी घायलों की एक प्रकार से निश्चित है–भले ही घंटे भर पहले कोई मरे या घंटे भर बाद। फिर परोपकार क्यों न करूँ ?

कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्होंने तत्काल अपना प्याला उस प्यासे घायल की ओर बढा दिया। सिडनी की तरह उन सबका जीवन धन्य है, जो मृत्यु शय्या पर भी (स्वयं मरणासन्न होते हुए भी) प्राप्त परोपकार का अवसर नहीं चूकते!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सन्त एकनाथ के जीवन की भी ऐसी ही एक प्रेरणाप्रद घटना है।

अपने साथियों एवं शिष्यों के साथ गंगाजल लेकर वे एक बार तीर्थयात्रा के लिए चले जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने सड़क की एक ओर एक गधा देखा। वह प्यास के मारे छटपटा रहा था। दयासागर सन्त एकनाथ ने अपने कमंडलु का सम्पूर्ण गंगाजल उसे प्रेमपूर्वक पिला दिया। सन्तुष्ट होकर गधा एक ओर चला गया।

इधर जब साथियों ने पूछा :– "महाराज! इतनी दूरी से ढ़ोकर बड़ी मुश्किल से लाया हुआ भी सारा गंगाजल आपने यहीं समाप्त कर दिया। अब पंढरीनाथ का अभिषेक भला आप कैसे करेंगे ?"

इस पर सन्त एकनाथ ने गम्भीर होकर कहा :– "साथियों! प्यासे गधे को जो जल मैंने पिलाया है, वह सीधा भगवान् पंढरीनाथ के चरणों में ही पहुँचा है, अन्यत्र कहीं नहीं। प्यासे गधे का रूप धारण करके स्वयं भगवान हमारी परीक्षा लेने आये थे कि हम परोपकार रूपी धर्म का पालन कर पाते हैं या नहीं।"

सज्जनों को परोपकार में कैसा आनन्द आता है ? यह जानने के लिए महर्षि अबू अली दक्काक की एक जीवनघटना सुनिये :–

उन्हें एक दिन किसी श्रीमान् के घर भोजन का निमंत्रण मिला।

यथासमय वे भोजन करने के लिए चल पड़े। मार्ग में उन्हें एक बुढिया की ध्वनि इस प्रकार सुनाई दी :– "है खुदा! एक ओर तो तू मुझे बहुत–से पुत्र देता है, किन्तु दूसरी ओर हम सब के पेट खाली रखकर तड़पाता भी है। यह तेरा कैसा अनोखा व्यवहार है ?"

यह सुनकर चुप चाप महर्षि अपने गन्तव्य पर पहुँचे। वहाँ निमन्त्रण भेजने वाले श्रीमान् से बोले :– "आज मुझे भोजन से भरपूर एक थाल चाहिये।"

इससे प्रसन्न होकर श्रीमान् ने तत्काल स्वादिष्ट भोजन से भरा हुआ थाल उनके सामने लाकर धर दिया। महर्षि उस थाल को अपने सिर पर उठा कर उस बुढिया के घर ले गये। थाल बुढिया के सामने रख दिया। बुढिया उसे पाकर मारे खुशी के नाचने लगी। बुढिया की प्रसन्नता से दक्काक स्वयं भी प्रसन्नता का विशेष अनुभव करते हुए भूखे ही वहाँ से अपने घर की ओर चल पड़े! इसे कहते हैं–परोपकार।

एक और मुस्लिम सन्त का उदाहरण सुनिये :–

मक्का की सत्तर(७०) बार यात्रा करने वाले महा तपस्वी अबुलकासिम नशोरावादी को मार्ग में एक दुबलापतला भूख से तड़पता कुत्ता दिखाई दिया। उस समय उनके पास खाने की कोई वस्तु नहीं थी। क्या करते ?

उसी समय सहसा उन्हें एक विचार सूझा। ऊँचे स्वर में वे चिल्लाने लगे :–"मैं एक रोटी के बदले अपनी चालीस मक्कायात्राओं का पुण्य देने को तैयार हूँ। कोई लेना चाहे तो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ले सकता हैं।''

यह सुनकर एक यात्री तैयार हो गया। उसने एक तीसरे यात्री को साक्षी बनाकर चालीस मक्कायात्राओं के पुण्य के बदले एक रोटी दे दी।

रोटी उस भूखे कुत्ते को अबुलकासिम ने बहुत प्रेम से खिलाई और फिर अपनी यात्रा पर चल पड़े! कितना बड़ा त्याग? कैसा अनोखा परोपकार?

संत विनोबा ने देव और राक्षस की बहुत अच्छी परिभाषा मराठी में लिखी है :–

''देऊन टाकतो तो देव! राखून ठेवतो तो राक्षस!''

[जो दे डालता है, वही ''देव'' है और जो रख लेता है, वही ''राक्षस'' है।]

किसी राजा ने अपने मन्त्री से पूछा कि देवों और दानवों में क्या अन्तर है?

मन्त्री :– ''आपके इस प्रश्नका उत्तर मैं कल दूंगा।''

दूसरे दिन उसनें राजमहल की ओर से सौ ब्राह्मणों को भोजन के लिए निमन्त्रण भेजा। पहले पचास ब्राह्मणों को पच्चीस–पच्चीस की दो पंक्तियों में आमने–सामने बिठाया गया। मन्त्री ने सब के दाएँ हाथ पर बाँस का एक–एक डंडा इस तरह बँधवा दिया कि हाथ मुड़ न सके। परिणाम यह निकला कि सब के सामने परोसी हुई थालियाँ पड़ी रहीं और वे सबके सब भूखे ही बैठे रहे। हाथ खुलवाने पर ही सब ने भोजन ग्रहण किया।

घंटेभर बाद दूसरे पचास ब्राह्मणों को भी इसी तरह पच्चीस–पच्चीस की दो पंक्तिों में दाहिने हाथों पर बाँस के टुकड़े बाँधकर जीमने बिठाया गया। उंन्होंने सोचा कि हाथ मुड़ नहीं सकता तो क्या हुआ; सामने तो पहुँच ही सकता है? तब वैसा क्यों न किया जाय?

इस विचार पर आचरण का परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक पंक्ति में बैठे ब्राह्मणों ने हाथ लम्बा करके अपने सामने बैठे ब्राह्मणों के मुँह में कौर देना शुरू कर दिया। इस प्रकार सब ने भरपेट भोजन किया। राजा ने सब को बिदाई दी।

फिर राजा से मन्त्री ने कहा :– ''देखिये, यह सब मैंने आपके प्रश्न का प्रत्यक्ष उत्तर देने के लिए ही किया था। पहली बार जो भोजनार्थ बैठे थे, वे दूसरों को देने के लिए तैयार ही नहीं थें। आप उन्हें 'दानव' समझ सकते हैं। इससे विपरीत जो दूसरी बार बैठे थे, वे एक–दूसरे को खिलाकर खाते रहे। आप उन्हें 'देव' समझ लीजिये।''

इंग्लैड के सुप्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ रोगियों का इलाज भी करते थे, एक दिन की बात है। कोई घबराई हुई महिला बीमार पतिदेव का इलाज कराने के लिए उन्हें अपने घर बुला कर ले गई।

कवि ने क्षणभर में जान लिया कि निर्धनता के कारण उत्पन्न मानसिक चिन्ता से ही पति महोदय की यह दुर्दशा हुई है। कविने कहा :– ''मैं घर जाकर एक दवा भेज दूंगा। उससे इनका स्वास्थ सुधर जायगा। आप कोई चिन्ता न करें।''

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

घर आते ही कवि ने एक पैकेट भेजा। उस पर लिखा था– "आवश्यकता होने पर ही यह पैकेट खोलें और भीतर रखी दवा का सेवन करें।"

महिला नें ज्यों ही पैकेट खोला, त्यों ही देखने में आया कि उसके भीतर सोने की दस मुहरें रखी हैं। इससे पतिदेव की संपूर्ण बीमारी भी भाग गई। पति–पत्नी ने कवि की उदारता को प्रणाम किया।

परोपकरणं कायाद् असारात्सारमादरेत्

[परोपकार ही इस नश्वर शरीर का सार है–ऐसा मानकर सार निकाल लेना चाहिये (उपकार करते रहना चाहिये)]

धनाभाव जिस प्रकार बीमारी का कारण है, उसी प्रकार झगड़े का भी कारण है।

राजा भोज वेष बदल कर प्रजा का दुःख दर्द जानने के लिए धारा नगरी में भ्रमण किया करते थे। एक दिन वे किसी निर्धन ब्राह्मण के घर के समीप होकर गुजर रहे थे। घर के भीतर से लड़ने–झगड़ने और मारपीट करने की आवाज आ रही थी। दो औरतों की और एक पुरुष की आवाज़ थी। तीनों बड़े थे। सम्भवतः वे माता, पुत्र और पुत्रवधू थे। राजा भोज ने उस घर की क्रमसंख्या नोट कर ली।

दूसरे दिन ब्राह्मण को राजसभा में बुलाया। ब्राह्मण के आने पर राजा ने पूछा :– "ब्रह्मदेव! आप तो विद्वान् हैं, पढ़े–लिखे हैं, कवि हैं, फिर अपने परिवार से आप झगड़ क्यों रहे थे?"

ब्राह्मण :– "महाराज! ऐसा कलह तो हमारे कुटुम्ब में होता ही रहता है; क्यों कि किसी भी सदस्य को किसी भी अन्य पारिवारिक सदस्य से सन्तोष नहीं हैं; परन्तु इस असन्तोष के लिए दोषी कौन है? यह बात समझ में नहीं आती :–"

अम्बा तुष्यति न भया न तया, सापि नाम्बया न भया।
अहमपि न तया वद राजन्! कस्य दोषोयम्।।

[माता मुझसे और उस (मेरी पत्नी) से सन्तुष्ट नहीं है। वह (मेरी पत्नी) भी माता से और मुझसे सन्तुष्ट नहीं है और स्वयं मैं भी उन दोनों (माता और पत्नी) से सन्तुष्ट नहीं हूँ। हे राजन्! आप ही कहिये कि इसमें दोष किसका है?]

ब्राह्मण की बात सुनकर राजा ने कहा :– "हे ब्राह्मण!" इसमें दोष तुम्हारी निर्धनता का है क्योंकि :–

नश्यति विपुलमतेरपि बुद्धिः पुरुषस्य मन्दविभवस्य।
घृत–लवण–तैल तण्डुल–वस्त्रेन्धन–चिन्तया सततम्।।

[जिसके पास धन नहीं होता, उस पुरुष की विशाल बुद्धि भी घी, नमक, तेल, चाँवल, वस्त्र और ईधन की चिन्ता से लगातार नष्ट होती रहती है]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

फिर राजा भोज ने खजाने से एक लाख स्वर्णमुद्राएँ भेट करके आदरपूर्वक उस ब्राह्मण को बिदा किया।

मुद्राओं की थैली देखते ही घर पर माता और पत्नी के चढे हुए उदास चेहरे खिल उठे। कलह का कारण मिट जाने से वे तीनों पुनःपूर्ववत् प्रेमपूर्वक प्रसन्नता के साथ रहने लगे। किसी ने परोपकारियों की दुर्लभता का वर्णन इन शब्दों में किया है :-

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यम्
निज हृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः?

[मन-वचन-काया में पुण्यामृत से भरे हुए, अपनी उपकार परम्परा के द्वारा त्रिभुवन को प्रसन्न करने वाले तथा दूसरों के छोटे-से गुण को भी पर्वत की तरह मानकर अपने हृदय में नित्य प्रसन्न रहने वाले सन्त कितने हैं ? (बहुत कम)]

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१८. मनः संयम

मनस्वियो!

मन दो काम करता है–चिन्ता और चिन्तन। चिन्ता को चिता से अधिक भयंकर माना गया है; क्योंकि चिता शरीर को एक ही बार जलाती है, परन्तु चिन्ता उसे बार–बार जलाती है। चिन्ता करने वाले का शरीर सूख जाता है। चिन्ता आग है।

मन का दूसरा काम है– चिन्तन। यह भी आग है, परन्तु यह ऐसी आग है, जो कर्मों को जलाती है। शरीर को वह कोई हानि नहीं पहुँचाती।

मन एवं मनुष्याणाम् कारणं बन्धमोक्षयोः॥

[मन ही मनुष्यों के बन्ध और मोक्ष का कारण है।]

मन से यदि विषयासक्ति बढ़ेगी तो उससे संसार का बन्धन प्राप्त होगा और विषयविरक्ति होगी तो उससे मोक्ष की स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकेगी। मन से यदि कषाय की आग लग गई तो वह आत्मा को झुलसा देगी–कलुषित बना देगी और चिन्तन की ज्योति प्रगट गई तो वह आत्मा को शीतल निर्मल उज्जवल बना देगी।

चिन्ता हमें संसार की ओर ले जाती है, चिन्तन मोक्ष की ओर ले जाता है। चिन्ता हेय है, चिन्तन उपादेय।

कुछ लोगों की ऐसी मान्यता है कि मन की स्थिति आहार पर अवलम्बित है। एक कहावत भी है :–

जेसा खावे अन्ना वैसा होवे मन॥

आहार के अणु विचारों को प्रभावित करते है। दूषित आहार से विचार दूषित होंगे और शुद्ध आहार से शुद्ध। बिना पासपोर्ट के विदेशयात्रा नहीं होती, उसी प्रकार बिना सात्त्विक आहार के सुविचार से सदाचार तक और सदाचार से सद्व्यवहार तक की यात्रा नही हो सकती।

आजकल आहार की कोई मर्यादा नहीं रही। अस्सी प्रतिशत लोग जैसा आहार करते हैं, उसी पर डॉक्टर लोग पलते हैं–उनकी आजीविका चलती है। सत्त्वहीन चटपटे, मसालेदार खाद्य पदार्थ पेट को बिगाडते हैं; परन्तु होटलों को सुधारते हैं। जितनी संख्या होटलों की बढी है, उतनी होस्पीटलों की भी बढी है। इन दोनों की वृद्धि के मूल में है खानपान और असंयम।

हॉटलें तो अपने पास न आने की वार्निंग देती है। उनका नाम देखिये। बड़े अक्षरों में लिखा रहता है– "हिन्दू होटल" दूसरा मतलब है– यदि (तू) हिन्दू हो (तो) टल! चला जा यहाँ से। यहाँ आने से तेरी पवित्रता नष्ट होगी–तन्दुरस्ती खराब होगी; परन्तु स्वाद का लोभी मनुष्य वहाँ जाता ही है– उस साइन बोर्ड की वार्निंग पर वह ध्यान नहीं देता तो होटलों का इसमें क्या कसूर ?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्वाद लोलुपता मन में होती है। पेट की भूख तो सात्त्विक आहार से भी मिट जाती है, परन्तु मन की भूख उससे नहीं मिटती। वही पहले होटलों और फिर होस्पीटलों के चक्कर लगवाती है—धन का अपव्यय करवाती है।

मन की शुद्धि का एक उपाय यह है कि हम वर्तमान में जीना सीखें। भूत–भविष्य की चिन्ताओं से मन को बोझिल न करें। डार्विन ने कहा था कि मनुष्य बन्दर का विकास है, परन्तु यदि बन्दर से पूछा जाय तो वह कहेगा कि मनुष्य बन्दर का पतन है; क्योंकि वह भूत–भविष्य के भार से मुक्त नहीं है– मैं मुक्त हूँ– वर्तमान में स्थित हूँ– चिन्ताओं से ऊपर हूँ।

भूत से हम प्रेरणा लें; भार नहीं, वर्तमान यदि उल्लासमय है– सात्त्विक है– शुद्ध है तो भविष्य निश्चित ही अच्छा होगा, इसलिए अच्छा यही होगा कि हम न भूतकाल में डूबें और न भविष्यकाल में बहें; किन्तु वर्तमानकाल में तैरें!

नाव पानी में तैरती रहे तब तक कोई खतरे की बात नहीं है। खतरा तब शुरू होता है, जब नाव में पानी भरने लगता है। उसी प्रकार मन संसार की सतह पर तैरता रहे तब तक कोई बात नहीं; परन्तु मन में संसार (मोह–ममता–आसक्ति) का प्रवेश नहीं होने देना चाहिये।

रसोईघर में चूल्हा जलाया जाता है। उससे निकला हुआ धुआँ कमरे में फैल कर छत को और चारों दीवारों को काला बना देता है। कमरे की सुन्दरता नष्ट हो जाती है।

मन का भी यही हाल है। रागद्वेष की ज्वाला से निकले कषायों के धुएँ से वह कलुषित हो गया है। उसकी सुन्दरता समाप्त हो गई है। जब तक मन स्वच्छ नहीं हो जाता, तब तक उससे सौन्दर्य की, सुख शान्ति की आशा नहीं की जा सकती।

एगप्पा अजिए सत्तू।।

[एक मात्र आत्मा ही अजित (जिसे जीता न गया ऐसा) शत्रु है]

यहाँ आत्मा शब्द मन के लिए प्रयुक्त हुआ है। उसी को वश में करना है, उसी पर विजय प्राप्त करनी है:–

मन के हारे हार है मन के जीते जीता।।

जो मन के वश में हो जाते हैं वे जीवन संग्राम में पराजित हो जाते है। मन पर विजय ही वास्तविक विजय हैं।

मन पर विजय पाने के लिए उसे मोडने की जरूरत है। उसकी चंचल वृत्तियों पर अंकुश लगाने की जरूरत है :–

योगश्चितवृत्तिनिरोधः।।

[चित्तवृत्तियों को रोकना ही योग है]

मन की भावना का पाप–पुण्य से अधिक सम्बन्ध है, कहा है :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मनसैव कृतं पापम् न शरीरकृतम् कृतम्।
येनैवालिगुड़िता कान्ता तेनैवालिगिड़ता सुता।।

[मन से किया पाप जोरदार पाप है। शरीर से किया पाप सावधानी रखने पर घातक नहीं है। जिस शरीर से पत्नी का आलिंगन किया, उसी से पुत्री का आलिंगन किया (दोनों में भावों के अन्तर से बहुत बडा अन्तर हो जाता है)]

एक डॉक्टर भी छुरे का उपयोग करता है– चीरफाड करता है और एक डाकू भी; परन्तु भावों के अन्तर से एक प्रुण्यार्जन करता है और दूसरा पाप।

दुष्ट भी चिंन्तन करता है और शिष्ट भी; परन्तु दुष्ट का चिन्तन दूसरों को धोखा देने के लिए होता है और शिष्ट का चिन्तन दूसरों की भलाई करने के लिए।

विनोबा भावे ने चालीस वर्ष तक गीता पर चिन्तन करने के बाद "अनासक्तियोग" लिखा था। अरविन्द घोष ने चालीस वर्ष तक चिन्तन के सरोवर में निरन्तर डुबकी लगाने के बाद भी यही कहा था कि अभी मेरी खोज अपूर्ण है।

वाचस्पति मिश्र विवाह के बाद "सांख्यकारिक" पर संस्कृत में भाष्य लिखने बैठे तो इतने तन्मय हो गये कि पत्नी को सर्वथा भूल गये। वर्षो तक पत्नी उनकी सेवा करती रही, पर कभी मुँह नही देखा उसका। एक दिन दिये में तेल समाप्त होने पर वह बुझ गया। पत्नी ने उसमें तेल डाला और उसकी बत्ती जलाई! उसी समय मिश्रजी की नजर उसके चेहरे पर पड़ी बोले :–"श्रीमती जी! आप कौन है ? ऐसा लगता है कि आपको मैंने पहले कभी देखा है ? लेकिन कहाँ देखा था ? कुछ याद नहीं आ रहा है!"

श्रीमती :– "श्रीमान् जी! पहले आप अपना ग्रन्थ पूरा कर लीजिये। बाद में आपको खुद याद आ जायेगा कि मैं कौन हूँ ? यदि नहीं याद आया तो मैं बता दूँगी।"

मिश्राजी :– "आप मेरी बहिन तो नहीं हैं–यह निश्चित है; इसलिए आप कोई और हैं। आप जैसी सुन्दर जवान महिला को मेरे इस एकान्त कक्ष में रात के समय आने का साहस कैसे हुआ ? यह समझ में नहीं आ रहा है। मेरा ग्रन्थ तो अब समाप्ति पर है। अन्तिम पृष्ठ ही लिख रहा हूँ कृपया अपना परिचय दे दीजिये जिससे मेरी उत्सुकता शान्त हो।"

आग्रह देखकर पत्नी ने परिचय दिया :– "मैं आपकी पत्नी हूँ– भामिती। इतने वर्ष पहले आपने मुझसे विवाह किया था। तब से आप भाष्य की रचना कर रहे है और मैं आपकी सेवा कर रही हूँ। आपने मेरी ओर कभी नहीं देखा, किन्तु मैं आपके दर्शन बराबर करती रही हूँ।"

मिश्रजी ने भावविभोर होकर पत्नी को कहा :– "महादेवी! मैंने जो कुछ लिखा है, उसके मूल में तुम्हारी तपस्या है–सेवा निःस्वार्थता है, इसलिए मैं अपने इस भाष्य का नाम भामिती टीका रख देता हूँ, जिससे मेरे नाम के साथ तुम्हारा नाम भी अमर हो जाय।"

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आज वह ग्रन्थ मौजूद है, तो पंडित वाचस्पति मिश्र की - तन्मयता का—कठोर साधना का—निरन्तर चिन्तन का एक प्रतीक है—उदाहरण है।

मन को यदि चिन्तन में न लगाया जाय तो वह हमारी कैसी दुर्दशा करता है ? देखियेः—

लखनउ पर जब अंग्रेजों ने आक्रमण कर दिया तो परास्त हो कर सारी सेना वहाँ से भाग गई। अंग्रेज राजमहल पर कब्जा करने पहुँचे तो वहाँ के सब कर्मचारी भी जान बचा कर भाग निकले। बढते और ऊपर चढते हुए अंग्रेज जब नवाब साहब के कक्ष में पहुँचे तो बडे आराम से वहाँ बैठे थे। अंग्रेजों में से एक ने पूछा – "जब आप के सारे बाँडीगार्ड भाग चुके है। तब आप क्यों नहीं भागे ?"

इस पर नवाब साहब ने कहा :– "मैं तो भागने के लिए तैयार ही बैठा था; परन्तु मुझे जूते पहिनाने के लिए कोई चाकर ही नही आया! कैसे भागता ?"

यह है– वैभव की पराधीनता। नवाब साहब को वैभव ने जिस प्रकार गुलाम बना लिया था, उसी प्रकार मन को भी यदि वश में न किया जाय तो वह अपने शरीर को गुलाम बना देता है।

"योगवसिष्ठ" में लिखा है :–

जडत्वान्निःस्वरूपत्वात् सर्वदैवमृतं मनः।
मृतेन मार्य ते लोक श्चित्रेयं मौर्ख्यचक्रिका॥

[जड और स्वरूप (आकृति) से रहित होने के कारण मन सदा मृत (मुर्दा) ही है। इस मृत (मन) के द्वारा संसार मारा जा रहा है! यह मूर्खता का चक्र भी कितना विचित्र है ?]

मन किस प्रकार तृणा के द्वारा मनुष्य को मारता है ? देखिये ?–

सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण करके कुछ राज्यों पर विजय प्राप्त कर ली। फिर वह किसी महात्मा के दर्शन करने गया। बडे अभिमान से उसने अपना परिचय दिया :– "मैं सिकन्दर हूँ। अनेक देशों पर विजय प्राप्त कर चुका हूँ और अब भारत पर विजय पाने का प्रयास कर रहा हूँ।"

महात्मा :– "भारत पर विजय पाने के बाद आप क्या करेंगे ?"

सिकन्दर :– "फिर क्रमशः यूरोप, अमेरिका, जर्मन, जापान, रूस आदि समस्त देशों पर विजय प्राप्त करूँगा।"

महात्मा :– "अच्छा, पूरी पृथ्वी के समस्त राष्ट्रों पर अधिकार पाने के बाद आप क्या करेंगे ?"

सिकन्दर :– "फिर आसमान के तारों को एक–एक करके जीतना शुरू कर दूँगा।"

महात्मा :– "अच्छी बात है; लेकिन मैं जानना चाहता हूँ कि पूरे विश्व पर विजय प्राप्त

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होने के बाद आप क्या करेंगे ?"

सिकन्दर :– "फिर ? तो मैं आराम से सोऊँगा।"

महात्मा :– "भले आदमी! अन्त में यदि आप को आराम से ही सोना है तो अभी से क्यों नहीं सो जाते ? इतनी सारी खटपट, संघर्ष, लूटपाट और हत्याकाण्ड के बाद ही आराम से सोने का निर्णय क्यों ?"

सिकन्दर इससे निरुत्तर हो गया। मन की शान्ति सन्तोष में है :–

सन्तोषः परमं सुखम्।।

[सन्तोष ही उत्तम सुख है]

एक बुढिया रात को सड़क पर बिजली के खम्भे के नीचे सुई ढूँढ रही थी, परन्तु उसे मिल नही रही थी। इससे वह बहुत परेशान हो गई थी।

किसी आदमी ने उससे पूछा :– "माँ जी! आपकी सुई खोई कहाँ थी ?"

बुढिया :– "घर में खोई थी बेटा!"

आदमी :– "तो घर में ही ढूँढिये। यहाँ क्यों ढूँढ रही है आप ?"

बुढिया :– "यहाँ मैं इसलिए ढूँढ रही हूँ कि प्रकाश यही है, घर में नहीं।"

बुढिया की मूर्खता पर हमें हँसी आती है, परन्तु हम स्वयं भी वैसी ही मूर्खता कर रहे है। शान्ति मन में है और हम उसे वस्तुओं में ढूँढ रहे है, जहाँ वह है ही नहीं।

एक बार बडे मुल्ला को साँस लेने में तकलीफ होने लगीं। डॉक्टर ने चेक–अप् किया। कोई रोग समझ में नहीं आया। उसने कहा कि आप लन्दन जाइये। वहा आपके रोग का शायद निदान होगा।

मुल्ला के पास धन की कोई कमी नहीं थी। शरीर का ईलाज कराने के लिए वे लन्दन चले गये। वहाँ के सबसे अधिक प्रसिद्ध डॉक्टर से अपने शरीर का चेक–अप् कराया। उसे भी कोई रोग समझ में नहीं आया। उसने सलाह दी कि दाँतों की जडों में कोई तकलीफ हो सकती है, इसलिए आप किसी डेन्टिस्ट के पास जाइये।

डेन्टिस्ट के पास जाने पर उसे भी कोई रोग समझ में नहीं आया। फिर भी उसने कहा कि आप सारे दाँत निकलवा कर नये लगवा लीजिये। मुल्ला ने वैसा ही किया। परन्तु साँस की तकलीफ ज्यों की त्यों रही। डेन्टिस्ट ने कहा :– "आप का रोग कुछ नया ही लगता है, इसलिए किसी डॉक्टर को कुछ समझ में नहीं आ रहा है। हो सकता है, यह कोई भंयकर बीमारी हो, इसलिए आप फौरन अपने देश में जाइये। अन्तिम समय अपने कुटुम्बियों के बीच आराम से गुजारिये।"

मुल्ला लौट आये। सोचने लगे कि जब इस बीमारी से आगे–पीछे मरना ही है, तब

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्यों न प्रसन्नता से मरूँ– ऐशो आराम से मरूँ ?

उन्होंने टेलरमास्टर को बुलाया। कहा कि नाप लो और बहुत–से कोट–पेंट सीकर जल्दी से जल्दी दो।

टेलर ने नाप लिया। कॉलर का नाप चौदह इंच का निकला। इससे पहले के कोट बारह इंची कालर से बने थे। मुल्ला ने कहा :– "भद्दा न लगेगा ? पहले के कोट के अनुसार बारह इंची कॉलर ही बनाओं!"

टेलर मास्टर :– "मैं वैसा बना तो दूँगा, परन्तु पहले से आपके गले का नाप कुछ बढ गया है। इसलिए बारह इंची कॉलर से साँस लेने में तकलीफ होने लगेगी!"

मुल्ला खुशी के मारे नाचने लगा और अपनी मूर्खता पर स्वयं ही हँसते हुए बोला:– "सच्चा डॉक्टर तो पडौस में ही था और मैं व्यर्थ ही विलायत में भटकता रहा! कैसा बेवकूफ हूँ मैं ?"

जहाँ रोग जन्म लेता है, वहीं उस का इलाज भी होता है। यदि मन में अशान्ति पैदा होती है तो शान्ति भी वहीं मिलेगी, अन्यत्र नहीं, किंतु यह तभी संभव है, जब ज्ञान प्राप्त किया जाय:–

आत्मानं स्नपयेन्नित्यम् ज्ञाननीरेण चारूणा।।

–तत्वामृतम्

[सुन्दर ज्ञानजल में सदा आत्मा को नहलाना चाहिये]

किन्तु लोग ज्ञानजल की अपेक्षा गंगाजल पर अधिक विश्वास करते है। गुरुनानक एक दिन गंगातट पर स्नान कर रहे थे। उसी समय उनकी नजर एक ब्राह्मण पर पडी, जो कुछ ही दूरी पर हाथों से जल पी रहा था। नानक जी ने कहा :– अरे भाई! यह मेरा लोटा ले लो और उससे जल पीओ,

ब्राह्मण :– "नही आपका लोटा अपवित्र है।"

नानक :– "'लोटा न झूठ बोलता है, न चोरी करता है, न हिंसा करता है, और न व्यभिचार। फिर यह अपवित्र कैसे ?'

ब्राह्मण :– "लोटा तो ब्राह्मण का ही पवित्र होता है, दूसरों का नहीं ?"

नानक :– "क्यों नहीं होता ? मैंने इसे तीन बार मिट्टी से रगड–रगड कर गंगाजल से धोया है!"

ब्राह्मण :– "उससे क्या फर्क पडता है ?"

नानक :– "यही मैं आपके मुँह से सुनना चाहता था।"

जब तीन बार गंगाजल में स्नान करने से भी लोटा पवित्र नहीं हुआ तो मनुष्य भी गंगाजल में स्नान करने से भला कैसे पवित्र हो जाता होगा ? स्नान से शरीर का ही मैल कट

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सकता है, मन का नहीं। उसमें छुआछूत के, घृणा के, दूसरों को अपवित्र समझने के, अपने को पवित्र समझने के भ्रान्तिपूर्ण दुर्भाव जब तक भरे रहेंगे, तब तक कोई मनुष्य पवित्र नहीं हो सकता– भले ही वह हजार बार गंगास्नान कर ले अथवा मछली की तरह निरन्तर गंगाजल में डूबे रहे!

यह सुन कर ब्राह्मण निरूत्तर तो हो गया, परन्तु अपने परम्परागत कुसंस्कार छोडने के लिए तैयार न हुआ।

दिन को मन में आप जैसा भी सोचे हैं, वह रात को सपने में प्रत्यक्ष दिखाई देता है और कभी–कभी उससे मुसीबत भी आ खडी होती है। दो उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होगी:–

एक भिखारी था, वह किसी जौहरी की दूकान के पास फुटपाथ पर लेटा था। रात को किसी दूल्हे की सवारी उधर से निकली, बैंड–बाजों के साथ नाचगानों के साथ– जगमगाती रोशनी के साथ दूल्हा घोडीपर सवार था। दूल्हे का ही नही, घोडी का शरीर भी बहुमूल्य अलंकरों से और फूलों के हारो से सजाया गया था।

भिखारी सोचने लगा कि मैंने एक रूपये में लॉटरी का टिकीट खरीद रखा है। यदि मेरा नम्बर खुल जाय और दस लाख रुपयों का प्रथम पुरस्कार मिल जाय तो मैं भी ठाठ से एक बँगला खरीद लूँ और इसी दूल्हे की तरह घोडी पर बैठकर विवाह करने जाऊँ ...

सोचते–सोचते नींद लग गई। सपने में उसने देखा कि सचमुच लॉटरी का पहला पुरस्कार उसी के नाम पर खुला है। अखबारों में उसके चित्र प्रकाशित हुए हैं। उसने पाँच लाख में एक बँगला खरीद लिया। उसके पास शादी के लिए फोटो–सहित सैक्रडों लडकियों के प्रस्ताव आये। बारीकी से उनका निरीक्षण करके उसने एक सुन्दर लडकी विवाह के लिए चुनी। दूल्हा बन कर घोडी पर सवार होकर बारात के साथ वह ससुराल पहुँचा। ससुर जी ने बारातियों का खूब स्वागत किया। दूल्हन के साथ उसे विवाह–मण्डप में बिठाया गया। हस्तमिलाप का समय आया। इसके लिए उसने हाथ लम्बा किया। दुल्हन का हाथ तो हाथ में आया नहीं, परन्तु एक डंडा जरूर तडाक से लगा। उसकी नींद खुल गई भिखारी ने कहा:– "अरे चौकीदारजी! केवल दो मिनिट आप ठहर जाते तो कम से कम हस्तमिलाप तो हो ही जाता। उसने सपने का पूरा किस्सा उन्हें सुना दिया।"

चौकीदार :– "मैं तो समझा कि तुम कोई बदमाश हो, क्योंकि तुम्हारा हाथ जौहरी की दूकान के ताले की ओर बढ रहा था, इसलिए मैंने डंडे का प्रहार तुम्हारे हाथ पर किया, जो मेरा कर्तव्य था। मुझे क्या मालूम कि तुम सपने में हस्तमिलाप के लिए हाथ लम्बा कर रहे थे? लेकिन अब कभी सपने में भी शादी मत करना, अन्यथा ऐसे ही डंडे खाने पडेंगे।"

दूसरा उदाहरण एक क्लाथ मर्चेन्ट का है। एक दिन उसकी दूकान पर बहुत अधिक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बिक्री हुई। दिन–भर वह ग्राहकों को कपडों के टुकडे फाड–फाड कर देता रहा। एक मिनिट भी इधर–उधर जाने या चुपचाप बैठने की उसे फुरसत नहीं मिली। रात को सपने में उसे दूकान का वही भीड–भाड वाला दृश्य दिखाई दिया। उसी प्रकार कपडे फाड–फाड कर वह देता रहा, सुबह नींद खुलने पर उसने देखा कि उसने अपनी धोती के ही चीर–चीर कर आठ–दस टुकडे कर रखे थे!

जिसका मन वश में नहीं रहता, वही सपने में बह कर इस प्रकार मुसीबत मोल लेता है, इसीलिए मन के संयम पर जोर दिया जाता हैं।

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१९. विवेक

विवेकियो!

चिन्तन का सम्बन्ध मन से है और विवेक का सम्बन्ध बुद्धि से है। विवेक की व्याख्या की गई है :-

हेयोपादेयज्ञानं विवेकः।।

[छोडने योग्य क्या है और ग्रहण करने योग्य क्या है ? इस ज्ञान को विवेक कहते हैं]

विवेक की आँख से कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का स्पष्ट भेद दिखाई देता है :-

एको हि चक्षुरमलः सहजो विवेकः।।

[विवेक ही एक मात्र सहज निर्मल आँख है]

विवेक ही वास्तविक गुरू है :-

विवेको गुरुसर्वम् कृत्याकृत्यं प्रकाशयेत्।।

[गुरु के समान विवेक सब प्रकार के कृत्य और अकृत्य को प्रकाशित कर देता है]

शास्त्रों से लाभ वही उठा सकता है, जो विवेकी हो। स्वामी सत्यभक्त ने विवेक की व्याख्या इन शब्दों में की है :-

क्या अच्छा क्या है बुरा किस से जग-कल्याण?
सच्ची समझ विवेक यह सब शास्त्रों की जान।।

-सत्येश्वरगीता

भला क्या है ? बुरा क्या है ? दुनिया का किन-किन सिद्धान्तों से कल्याण हो सकता है ? इस बात की वास्तविक समझ ही विवेक है, जो सब शास्त्रों की जान (प्राण) है।

इस समझ में अहंकार और मोह बाधक बनते हैं। यदि अहंकारवश व्यक्ति दूसरों के शास्त्रों को तुच्छ समझता है- तो मोह के कारण वह कूपमंडूक बन जाता है। निष्पक्षता उससे कोसो दूर चली जाती है। जैनाचार्य हरिभद्रसूरि की तरह वह व्यक्ति डंके की चोट, ऐसा कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाता:-

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः।।

[मेरा न महावीर स्वामी के प्रति पक्षपात है और न (सांख्यदर्शन प्रणेता) कपिल आदि के प्रति द्वेष है। जिसकी बात युक्तियुक्त (तर्कसंगत) हो, उसी की बात स्वीकार करनी चाहिये]

आद्य शंकराचार्य स्नान करके अपने आश्रम को लौट रहे थे कि रास्ते में किसी भंगी (हरिजन) का स्पर्श हो गया। उन्होंने क्रुद्ध होकर कहा :- "अरे! क्या तुम अन्धे हो ? दिखता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नही तुम्हें कि मैं अभी–अभी नदी पर स्नान करके चला आ रहा हूँ ? छूकर मुझे अपवित्र कर दिया! अब मुझे दुबारा नहाने जाना पडेगा!''

भंगी :– ''क्या आप ही अद्वैतवाद के प्रचण्ड प्रचारक है ?''

शंकराचार्य :– ''हाँ, हाँ, इसमें क्या सन्देह है ?''

भंगी :– ''ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः [ब्रह्म सत्य है। जगत मिथ्या है। जीव ब्रह्म ही है, दूसरा नही] यह घोषवाक्य आप ही का है ?''

शंकराचार्य :– ''हाँ, मेरा ही तो है!''

भंगी :– ''अब सोचने की बात यह है कि जो ब्रह्म आपके शरीर में है, वही ब्रह्म मेरे शरीर में भी मौजूद है। ऐसी स्थिति में एक ब्रह्म ने अपने शरीर से यदि दूसरे ब्रह्म के शरीर को छू दिया तो इसमें अपवित्रता कहाँ से आ गई ? अद्वैतवादी तो ऐसा भेदभाव मान ही नही सकता! दूसरी बात यह है कि ब्रह्म (जीव) तो सब शरीरों में पवित्र ही है और शरीर सबका अपवित्र ही है, क्योंकि उसमें मांस, हड्डियाँ, मल, मूत्र आदि अशुचि द्रव्य भरे पडे हैं। ऐसी हालत में एक अपवित्र शरीर ने दूसरे अपवित्र शरीर को छू भी लिया तो उसमें क्या अनर्थ हो गया ? सोचिये।''

शंकराचार्य ने बडे–बडे पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था, परन्तु उस भंगी की बात का उन्हें कोई उत्तर ही नही सूझ रहा था। उन्होंने उसे प्रणाम करते हुए कहा :– ''आज आपने मेरी आँखे खोल दी। सिद्धान्त केवल शास्त्रार्थ के लिए नही, जीवन में उतारने के लिए होते है। यह बात आपने मुझे सिखाई इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। अब मैं दुबारा नहाने न जा कर अपने आश्रम को ही जा रहा हूँ।''

शंकराचार्य का यह साहस उन्हें और अधिक प्रशंसनीय महापुरुष बना देता है कि स्वयं दिग्विजयी शास्त्रार्थ महारथी महापण्डित संन्यासी होते हुए भी एक भंगीभाई के मुँह निकली हुई युक्तियुक्त बात उन्होंने सहर्ष स्वीकार की! यह साहस विवेक से उत्पन्न होता है।

मूढमूढबुद्धिषु विवेकिता कुतः?

–शिशुपालवधः

[अहंकार और मोह जिनकी बुद्धि में प्रबल होता है। उनमें भला विवेक कहाँ से होगा ?]

जिसमें विवेक नही होता, वह आँख रहते भी अन्धा ही होता है :–

विवेकान्धो हि जात्यन्धः।।

[विवेक रहित अन्धा, जन्माध होता है]

अन्य गुणों के बीच विवेक किस प्रकार सुशोभित होता है ? सो चाणक्य के शब्दों मे सुनियेः–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विवेकिनमनुप्राप्ताः गुणा यान्ति मनोज्ञताम्।।
सुतरां रत्नमाभाति चामीकरनियोजितम्।।

[विवेकी में रहने वाले अन्य गुण उसी प्रकार सुशोभित होते है, जिस प्रकार सोने के आभूषण में जडे हुए रत्न]

सोने से रत्न की शोभा होती है और रत्न से सोने की। उसी प्रकार अन्य गुणों से विवेक की शोभा होती है और विवेक से अन्य गुणों की।

शरीर में कान खुले हैं, आँखो पर भी साधारण पलके है, नाक खुली है, परन्तु जीभ मुँह में बन्द है। बत्तीस पहरेदार है। और वे भी दो होटों से ढ़के है। जीभ की यह स्थिति बताती है कि उसके प्रयोग में विवेक की सबसे अधिक जरूरत है। जीभ से ही किसी कवि ने कहा है :–

रे जिह्वे! कुरू मर्यादाम् भोजने वचने तथा।।
वचने प्राण–सन्देहो भोजने चाप्यजीर्णता।।

[हे जीभ! भोजन और वचन में तूं संयम रख, अन्यथा असंयंत वचन बोलने पर प्राण जा सकता है और भोजन में मर्यादा न रहने पर अजीर्ण हो सकता है (दोनों में भयंकर परिणाम की पूरी सम्भावना है)]

प्राकृतिक चिकित्सक कहते है कि जो कुछ हम खाते है, उसके एक तिहाई से हम जीवित रहते हैं और दो तिहाई से डॉक्टर!

इसका मतलब यह है कि हम जितना भोजन ग्रहण करते है, उसका तृतीयांश ही हमारे जीवन के लिए पर्याप्त है। उससे अधिक भोजन अजीर्ण पैदा करता है और :–

अजीर्णे प्रभवाः रोगाः।।

[सारे रोग अजीर्ण से ही उत्पन्न होते है]

रोग पैदा होने पर हमें डॉक्टरों के द्वार खटखटाने पडते है– उन्हें मुँहमाँगी फिस दे कर इलाज कराना पडता है। इस प्रकार डॉक्टरों की आजीविका प्राप्त होती है।

जीभ का दूसरा कार्य है– वाणी। सच बोलने में भी विवेक न हो तो वह उसी प्रकार घातक हो जाता है, जिस प्रकार डिसेन्ट्री में दूध। महर्षियोंने यही सोचकर कहा था :–

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।

[सच बोलना चाहिये। मधुर बोलना चाहिये ऐसा सत्य न बोला जाय कि– जो अप्रिय हो और ऐसा प्रिय भी न बोला जाय, जो असत्य हो। बस, यही सनातन धर्म है]

अन्धे को ''सूरदासजी'' कहा जाय तो उसे अप्रिय नही लगेगा। यदि कोई कहे कि आप बेईमान है– चोर है तो आप नाराज हो जायेंगे, परन्तु कहा जाय कि आप को ईमानदार बनना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चाहिये साहूकार बनना चाहिये... तो मतलब वही होगा, पर आप बुरा नहीं मानेगें।

एक स्वप्नफल पाठक ने राजा से कहा :– "आपने सपने में अपनें मुँह से बत्तीसों दाँत गिरे हुए देखे। इस का फल यह होगा कि आपके सारे कुटुम्बी एक–एक करके आपके सामने ही मर जाएंगें!"

राजा यह सुनकर उदास हो गया, परन्तु उसी समय एक दूसरे स्वप्नफल पाठक ने कहा:– "महाराज! आपके स्वप्न का फल बहुत अच्छा है। फल यह है कि आपकी आयु आपके पूरे परिवार में सब से अधिक होगी।"

दोनों के कथन की भाषा अलग–अलग थी, परन्तु कहने का भाव एक ही था।! फिर भी एक अविवेकी था और दूसरे ने बोलने में विवेक से काम लिया। उसका परिणाम यह हुआ कि राजा ने दूसरे को प्रसन्नतापूर्वक भारी पुरस्कार दे कर बिदा किया और पहले को कुछ भी नही दिया।

विवेकी बुद्धि का सदुपयोग करते है। किन्तु अविवेकी उसी बुद्धि से अपना भी और दूसरों का भी सर्वनाश कर डालते है, महाकवि रामधारीसिंह "दिनकर" कहते है :–

बुद्धि तृष्णा की दासी हुई मृत्यु का सेवक है विज्ञान।
चेतना अब भी नही मनुष्य विश्व का क्या होगा भगवान?

जिसने अणुबम का आविष्कार किया। उसकी मृत्यु अत्यन्त करूणाजनक स्थिति में हुई। अपने आविष्कार से उसे घोर पश्चाताप हुआ वह रो–रो कर मरा। उसके अन्तिम शब्द थे:– I Shall go to hell. [मैं निश्चन ही नरक में जाऊगा!]

लेकिन :–

"जब चिडियों ने चुग खेत लिया फिर पछताये का होवत है?
उठ जाग मुसाफिर! भोर भई अब रैन कहाँ जो सोवत है?"

सहानुभूति का एक शब्द जहाँ दूसरों की उदासी को नष्ट करके उन्हें प्रसन्न कर देता है, वही अविवेकपूर्ण एक ही शब्द दूसरों के हृदय को घायल कर देता है। जहाँ एक शब्द हजारों की गर्दन कटवा देता है, वही एक शब्द पर हजारों अपनी गर्दन झुका देते है! कहने का आशय यही है कि–

बोली बोल अमोल है, बोल सके तो बोल।
पहले भीतर तौल कर फिर बाहर को खोल।।

जो कुछ बोले, सोच समझ कर बोले, विवेक पूर्वक बोले, क्योंकि–

विवेगे धम्ममाहिए।।

[विवेक में ही धर्म होता है– ऐसा कहा गया है]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गणधर गौतम स्वामी ने जब पूछा :–

कहं चरे कहं चिट्ठे? कहं आसे कहं सए?
कहं भुंजंतो भासन्तो पावं कम्मं न बन्धई?

[हे प्रभो! कैसे चलना चाहिये ? कैसे खडे रहना चाहिये ? कैसे बैठना चाहिये ? कैसे सोना चाहिये ? कैसे खाना चाहिये और कैसे बोलना चाहिये कि जिससे पापकर्मका बन्ध न हो ?]

तब प्रभु महावीर ने कहा :–

जयं चरे जयं चिट्ठे जय आसे जयं सए।
जयं भुजन्तो भासन्तो पावं कम्मं न बन्धई।।

[यतनापूर्वक (सावधानी पूर्वक या विवेक पूर्वक) चले, खडा रहे, बैठे, सोये खाये और बोले तो पापकर्म का बन्ध नही हो पाता!]

सुन्दर सजी हुई बहुमूल्य कार में भी अगर ब्रेक न हो तो उसमें कोई बैठना पसंद नही करता। वाणी में भी इसी प्रकार विवेक का ब्रेक जरूरी है, अन्यथा शब्द कितने भी सुन्दर हो, उन्हें कोई सुनना पसंद नही करता।

पाण्डवों ने एक नया राजमहल बनवाया। उसे देखने के लिए कौरवों को आमन्त्रित किया। वे आ गये। पांडव दिखाने लगे। उसमे फर्श ऐसी बनाई गई थी कि सब को वहाँ जल का भ्रम होता था। कौरव धोती ऊँची करके चलने लगे। पाण्डवों को हँसी आने ही वाली थी, किन्तु वे बडे विवेकी थे, इसलिए उन्होंने हँसी को मन में दबा लिया।

कुछ आगे बढ़े वहाँ जल भरा था, किन्तु उसमें फर्श का भ्रम होता था। कौरव बेखटके चल पडे तो छपाक से पाँव जल में पड़ा धोती गीली हो गई।

फिर ऐसा द्वार आया, जिसमें दीवार का भ्रम होता था, कौरवाधिपति दुर्योधन वहाँ रूक गये। जब कहा गया कि आगे बढिये, यह दिवार नही, द्वार है, तब आगे बढ़े।

कुछ और आगे चलने पर ऐसी दीवार आई, जिसमें द्वार का भ्रम होता था! दुर्योधन आगे बढे तो उससे हाथ और छाती टकरा गई। इस बार भी पांडवों ने मन–ही–मन हँसी रोक ली, परन्तु पाण्डवों की पत्नी महरानी द्रौपदी की हँसी नही रूक पाई। वाणी पर ब्रेक न रहा। वह बोल उठी– "अन्धों के बेटे भी आखिर अन्धे ही होते है!"

दुर्योधन ने अपना और अपने पिता का अपमान उस वाक्य में देखकर क्रोध में प्रतिज्ञा की:– "हे द्रौपदी! इस अपमान के बदले यदि तुझे भरी सभा में अपने इन ऊरूओं (घुटनों के ऊपर का भाग 'ऊरू' कहलाता है, जिसे कदली की उपमा देते है) पर न बिठाया तो मेरा नाम दुर्योधन नही।"

इससे उत्तेजित हो कर भीम ने भी प्रतिज्ञा की :–

चञ्चद्‌भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात सञ्चूर्णितोरूयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि रूत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि! भीमः।।

–वेणी संहारम्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

[फडकती हुई भुजाओं के द्वारा घुमाई गई गदा के प्रचण्ड आघात से दुर्योधन के दोनो ऊरूओं को तोड कर उनसे निकले गाढे खून से लथपथ लाल हाथों से हे, द्रौपदी मैं भीम तेरी वेणी को संवारूँगा!]

इस प्रकार दोनों में एक ही वाक्य से (जो द्रौपदी ने कहा था) स्थायी शत्रुता का सूत्रपात हो गया। फलस्वरूप महाभारत नामक महायुद्ध हुआ, जिसमें अट्ठारह अक्षौहिणी सेना का भीषण नरसंहार हुआ और तब दोनो महारथियों की प्रतिज्ञाएँ पूरी हुई।

अविवेक से किस प्रकार अच्छे सिद्धान्तों का दुरूपयोग होता है ? इस पर एक मनोरंजक दृष्टान्त सुनिये :–

किसी गाँव के बाहर दशहरे का मेला लगा था। बीच में एक कुआँ था। भीडभडक्के में एक ऐसा आदमी उसमें गिर पडा, जिसे तैरना बिल्कुल नहीं आता था। वह किसी तरह बाहर निकली ईट को पकड कर लटका हुआ था। वह चिल्लाने लगा :– "बचाओ, बचाओ, मैं डूब रहा हूँ, बचाओ।"

एक बौद्ध भिक्षु उधर से निकला, पुकार सुनकर बोला :– "जीवन में सुख की अपेक्षा दुःख बहुत अधिक है, इसलिए बाहर निकलने पर भी क्या लाभ होगा ? फिर पिछले जन्म में तुमने किसी को कुएं में गिराया होगा, इसलिए इस जन्म में तुम भी गिरे हो, अपने–अपने कर्म का फल सब को भोगना ही पडता है। फलको शान्ति से भोग लो।"

पानी पीकर भिक्षु चला गया।

थोडी देर बाद आये एक नेताजी। उन्हें तो भाषण और आश्वासन देने के अवसर की तलाश थी। कुएँ के भीतर से आने वाली अवाज से उन्हें वह अवसर मिल गया। बोले:– "धीरज रखो। कुछ दिन बात ही संसद का अधिवेशन होने वाला है। मैं उसमें विचारार्थ एक विधेयक प्रस्तुत करूँगा कि पूरे भारत–वर्ष के सात लाख गाँवों के सब कुओं पर पालें बँधवाना अनिवार्य कर दिया जाय।"

आदमी :– "कब अधिवेशन होगा और कब पालें बँधेंगी ? पता नहीं; परन्तु मुझे तो वे पालें भी नही बचा सकेंगी!"

नेता :– "तुम तो केवल अपना ही भला सोचने वाले हो। तुम से बढ कर स्वार्थी मुझे कहीं नहीं मिला। अच्छा आदमी वह है, जो दूसरों का भला सोचे। केवल अपनी भलाई की बात–अपने लाभ की बात तो कीडे–मकोडे भी सोचते हैं। तुम कीडे मकोडे नहीं हो मनुष्य हो।"

आदमी :– "तो आप भी सच्चे मनुष्य बन कर मेरा भला कर दीजिये–मुझे बाहर निकाल दीजिये।"

नेता :– "हम इक्के–दुक्के का भला नहीं सोचते। हम तो जनताजनार्दन के पुजारी हैं। आम जनत्ता का भला सोचते हैं। सबकी भलाई के कार्य करते हैं।"

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आदमी :– "आम जनता की भलाई जब होगी, तब होगी; लेकिन मैं तो डूब रहा हूँ– अभी मर रहा हूँ।"

नेताजी :–"तुम्हारे एक के जिन्दा रहने से या मरने से क्या फर्क पडता है ? यदि तुम मर भी गये तो मेरा काम और भी सरल हो जायगा। मैं संसद के बीच तुम्हारा उदाहरण प्रस्तुत कर सकूँगा कि– अमुक गाँव में पाल न होने से एक आदमी गिर पडा और मर गया। इससे मेरे विधेयक को और भी बल मिल जायगा और जल्दी ही वह पारित होकर कानून का रूप धारण कर सकेगा। तुम्हें शहीद बनने का अवसर मिल सकेगा। सारा हिन्दुस्तान तुम्हारी मूर्ति के ऊपर फूल चढा कर तुम्हारा सन्मान करेगा। तुम मर कर भी अमर हो जाओगे।"

आदमी :– "मुझे अमर नहीं बनना है। मुझे बाहर निकालो। मेरी जान बचाओ।"

किन्तु आदमी की इस बात को सुनने से पहले ही नेता जी वहाँ से रवाना हो चुके थे। नेता जी के बाद एक ईसाई पादरी ने उसकी आवाज सुनी। वह बहुत प्रसन्न हो गया। अपने झोले से उसने डोरी निकाली और कुएँ में लटका दी। डोरी पकड कर आदमी उसके सहारे बाहर निकल आया। बोला :– "आपने मेरी जान बचाई, बहुत कृपा की; इसके लिए बहुत–बहुत धन्यवाद।"

पादरी :– "कृपा ? अरे भाई! मैंने कोई कृपा नहीं की। कृपा तो आपने ही मुझ पर की है कि कुएँ में गिर कर मुझे मानव सेवा का अवसर दिया। महात्मा ईसा ने कहा है कि मानव सेवा ईश्वर की पूजा है। मैंने आज आपको बचा कर ईश्वर की पूजा की है यदि आप पहले की तरह फिर से गिर जायँ तो मुझे दुबारा ईश्वर पूजा का अवसर मिल सकता है।"

यह कह कर पादरी ने उसे फिर से कुएँ में धक्का दे दियां और दुबारा निकाला। आदमी ने कहा : "यह क्या ? तुम तो मुझे बार–बार गिरा कर मार डालोगे!"

ऐसा कह कर वह वहाँ से भाग गया। अविवेक के कारण लोग सिद्धांतों के केवल शब्द पकड लेते हैं और उनका अर्थ, अभिप्राय आशय छोड देते है। दूसरों की सेवा (परोपकार) के जहाँ सहज भाव न हों वहाँ कैसा विवेक ?

विवेकः किं सोऽपि स्वरसजनिता यत्र न कृपा?

[जिस कृपा–करूणा–सहायता में भीतर से रस (आनन्द) न आता हो, वह भी क्या कोई विवेक है ?]

अच्छे–बुरे का ज्ञान विवेक से होता है। उसके बाद जो अच्छा है, उसे स्वीकार करना चाहिये–जीवन में उतारना चाहिये। अविवेकी अपनी बुद्धि से कांम नहीं लेता। वह अनुकरण करता है। भीड जिस रास्ते पर जा रही हो, उसी रास्ते पर वह बिना सोचे–विचारे चल पडता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बडे मुल्ला फूलों के व्यापारी थे। गाँव से टोकरी में भर कर फूल लाते और शहर में ले जा कर बेच देते। एक दिन नगर के प्रवेशद्वार पर पहुँचते ही उन्हें दस्त की हाजत हुई। एक ओर बैठ कर ज्यों ही उठे, त्यों ही सामने से कोतवाल को आते देख कर वे घबरा गये; क्योंकि कोतवाल यदि जान लेगा तो मार–मार कर मुल्लाजी का कचूमर निकाल देगा– ऐसा वे समझ रहे थे। आत्मरक्षा के लिए उन्होंने तत्काल कुछ फूल निकाल कर मल पर इस तरह डाल दिये कि वह पूरी तरह ढक गया।

कोतवाल ने समझा कि कोई पवित्र स्थान होगा; इसलिए स्वयं भी कुछ फूल खरीद कर उस पर डाले और आगे बढ गये। बिजली की तरह सारे शहर में खबर पहुँच गयी। हिंदू देवस्थान मान कर और मुसलमान किसी पीर की दरगाह मान कर उस पर फूल, मिठाई, धन आदि चढाने लगे। शाम तक वहाँ भेंटों का पहाड खडा हो गया।

फिर हिन्दू मुसलमानों के नेताओं में झगडा होने लगा। दोनों ग्रूप उसे अपने अधिकार में लेना चाहते थे। वहाँ के बादशाह ने आ कर कहा :– "दो–चार आदमी मिल कर इसे खोदना शुरु करो। नीचे कोई हिंदुओं का चिन्ह निकले तो यह स्थान हिंदुओं को सौंप दिया जाय; अन्यथा मुसलमानों को!"

वैसा ही हुआ। खुदाई के बाद मल निकले पर हिन्दू–मुस्लिम नेता वहाँ से अपनी–अपनी नाक दबा कर भाग खडे हुए। अन्धविश्वास का ऐसा ही दुष्परिणाम होता है; अतः उपासना या आराधना की सफलता के लिए सब को विवेक से काम लेना चाहिये।

●

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२०. मोक्षमार्ग

मुमुक्षु मित्रों!

कोई व्यक्ति आपके निकट से भागता हुआ जा रहा हो और आप बीच में ही उसे रोक कर पूछें कि भाई! इतनी तेजी से आप कहाँ जा रहे हैं ?

यदि इसके उत्तर में वह कहे :– "मुझे पता नहीं है कि मैं कहाँ जा रहा हूँ।" तो आप उसे पागल समझेंगे; परन्तु अपना लक्ष्य स्थिर किये बिना जीवन की दौड धूप में लगे रहने वाले हम भी क्या वैसे ही पागल नहीं है ?

बिना लक्ष्य के भागने वाले "यात्रा नहीं करते, भटकते हैं!" जीवन यदि यात्रा है तो मोक्ष उसकी मंजिल है, जिसे प्राप्त करना प्रत्येक भव्य प्राणी का अन्तिम लक्ष्य होना चाहिएँ!

मोक्ष जीवन की समग्रता है। समस्त कामनाओं से मुक्ति ही मोक्ष है। दीपक जब बुझता है, तब उसकी लौ कहाँ चली जाती है ? जिस प्रकार वह लुप्त हो जाती है–उसका पुनरागमन नहीं होता; उसी प्रकार जो आत्मा, जन्म मरण का नाश कर संसार से लुप्त हो जाती है–जिसका फिर पुनरागमन नहीं होता– जो फिर से किसी शरीर के बन्धन में नहीं आती, हम कहते हैं कि– उसका दीपक की लौ के समान निर्वाण हो गया है। इसी स्थिति का दूसरा नाम मोक्ष है।

महत्वाकांक्षा और संतोष–दोनों गुण अच्छे हैं; परन्तु दोनों का क्षेत्र अलग–अलग है। संसार के लिए सन्तोष चाहिये और मौक्ष के लिए महत्त्वाकांक्षा। भौतिक सुख सामग्री की आकांक्षा अनन्त होती है। वहाँ सन्तोष अपनाने की बात कही जाती है; परन्तु मोक्ष की आकांक्षा शान्त होती है–मोक्ष की प्राप्ति के बाद वह समाप्त हो जाती है; इसलिए मोक्ष की महत्वाकांक्षा बनी रहनी चाहिये। कब मैं पूर्ण बनूँ ? कब परमात्मा के समान बनूँ ? कब अनन्त शान्ति प्राप्त करूँ ? कब जन्म–जरा–मरण के चक्र से छूटूँ ? कब सर्वज्ञ सर्वदर्शी बनूँ ? कब विषय कषाय से–जय पराजय से–मानापमान से–निन्दा प्रशंसा से–चंचल मनोवृत्तियों से ऊपर उठूँ ? ऐसी तीव्र कामना ही मनुष्य को मोक्ष मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है।

आत्मा के स्वरूप का भान हो– आत्मा की शक्तियों में विश्वास हो और समतामय व्यवहार हो तो मोक्ष अधिक दूर नहीं रहता। इससे विपरीत भौतिक सामग्री की अतृप्त आकांक्षा में, मोह–ममता–माया में, प्रमाद में, विलास की दशा में मृत्यु प्राप्त हो तो अनन्त संसार का एड्वांस बुकिंग हो जायगा!

शिवो भूत्वा शिवं यजेत्।।

[शिव बन कर शिव की पूजा करें]

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इसका आशय क्या है ? आशय यही है कि यदि हम परमात्मा के सान्निध्य में (मन्दिर–मस्जिद–चर्च–गुरूद्वारे में) जायें तो सांसरिक–सुख की कामना से अपने मन को शून्य बना कर जायें।

गीता में लिखा है :–

यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

जिसकी जिसमें श्रद्धा है, वह वही है

एक इंग्लिश विचारक ने लिखा था :– "तुम मुझे बतला दो कि तुम क्या चाहते हो और मैं तुम्हें बतला दूँगा कि तुम क्या हो!"

महर्षि व्यास ने गीता के माध्यम से जो बात कही है, ठीक वही बात दूसरे शब्दों में इंग्लिश विचारक ने कही है। दोनों का तात्पर्य यह है कि हम जिसे चाहते हैं–जिसके प्रति श्रद्धा रखते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। हम यदि वीतराग के प्रति श्रद्धा रखते हैं तो धीरे–धीरे वीतरागता हमारे भीतर आती जाती है–हम वीतराग बनते जाते हैं।

महर्षि उमास्वाति ने अपने अमर ग्रन्थ **"तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्"** में सबसे पहला सूत्र लिखा है:–

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।।

सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र ही मोक्ष का मार्ग है

सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि– वीतराग प्रभु की आज्ञा को ठीक मानना, ठीक जानना और ठीक आचरण करना ही मोक्ष की प्राप्ति का उपाय है।

वीर बाह्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है; किन्तु महावीर क्रोध, मान, माया, लोभ– इन चारों आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते है। आंतर के शत्रुओं से युद्ध करने वाले अरिहन्त है। संसारी विजेता वीर योद्धा को भौतिक लक्ष्मी प्राप्त होती है और विरक्त विजेता महावीर योद्धा को मोक्ष लक्ष्मी।

बाह्य शत्रुओं से लडने में दूसरे की सहायता मिल सकती है; परन्तु अन्तस्तल के कषाय शत्रुओं से प्रत्येक आत्मा को स्वयं ही लडना पडता है।

महामन्त्र में विनय की प्रधानता है; इसलिए नमो अरिहन्ताणं, नमो सिद्धाणं आदि पाँचो पदों में **"नमः"** पद पहले आता है; जब कि अन्य बाद में; जैसे श्री गणेशाय नमः; हरये नमः गोपालाय नमः; परमात्मने नमः आदि में।

'विनय शिष्य का सबसे पहला गुण है। उसी से उसमें ज्ञान–ग्रहण की पात्रता पैदा होती है:–

विनयाद् याति पात्रताम्।।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विनय से ही योग्यता उत्पन्न होती है (जो शिष्यत्व का लक्षण है)

आचार्य हरिभद्रसूरि ने विनय को जिनशासन (जैन धर्म) का मूल (कारण) माना है:–

विणओ सासणमूलो विणीओ संजओ भवे।
विणवा विप्पमुक्कस्स कओ धम्मो कओ तवो?

विनय शासन का मूल है। विनीत ही संयत (संयमी) होता है। जो विनय से रहित है, उसमें धर्म कहाँ? तप कहाँ?

दशवैकालिक सूत्र की एक गाथा के अनुसार धर्म का मूल विनय है और फल मोक्ष।

संसार भाडे का मकान है, जिसे छोडना पडेगा या बदलना पडेगा; परन्तु मोक्ष घर का (खुद का) मकान है, उसे छोडने के लिए कोई कह नहीं सकता। उसमें केवल अपना अधिकार है।

जिसमें विनय है, उसमें विवेकपूर्ण श्रद्धा है अर्थात् सम्यग्दर्शन है। जिसमें सम्यग्दर्शन है, उसी को सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो सकता है अर्थात् उसमें संपूर्ण विवेक जागृत हो सकता है– वह हेय–उपादेय–ज्ञेय को समझ सकता है। उसके बाद सम्यक् चारित्र (सर्वत्यागमय) संपूर्ण निव्याप जीवन आता है, जो मोक्ष तक ले जाता है। जिस प्रकार पक्षी दो पंखो से ही उड सकता है, उसी प्रकार मोक्ष तक उडान वही जीव भर सकता है, जिसमें ज्ञान और आचरण के दोनों पंख लगे हों :–

ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः।।

ज्ञान और क्रिया (ज्ञान के अनुसार कार्य) से मोक्ष प्राप्त होता है

ज्ञान प्रकाश है तो क्रिया गति है। ज्ञान अपने आपमें लँगडा है तो क्रिया अन्धी है। लँगडा अन्धे के कन्धे पर सवार हो जाय तो दोनों अपनी मंजिल तक आसानी से पहुँच जाय। ज्ञान के प्रकाश में धर्म करे–क्रिया करे तो मोक्ष की मंजिल दूर नहीं रहेगी।

वैदिक ऋषि कहते थे :–

चरैवेति चरैवेति।।

चलते रहो, निरन्तर चलते ही रहो

महात्मा बुद्ध बोले :–

पमादो मच्चुनो पजम्।।

प्रमाद मृत्यु का कारण है

प्रभु महावीर ने कहा था :–

समयं गोयम! मा पमायएँ।।

हे गौतम! तू एक क्षण का भी प्रसाद मत कर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सब का आशय यही है कि यदि हमें ज्ञान प्राप्त हो गया है तो धर्म का पालन अविलम्ब प्रारम्भ कर देना चाहिये। मोक्ष प्राप्ति के बाद क्रिया रुप धर्म भी छूट जायगा।

काँटा चुभ गया हो तो उसे हम सुई से निकाल देते हैं और फिर सुई भी एक ओर रख देते हैं। प्रवचनों की–शास्त्रों के स्वाध्याय की–सूक्तियों की आवश्यकता तभी तक है, जब तक मोह मन में मौजूद है। मोह समाप्त होने पर इनको भी छोडना पडेगा :–

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदम् श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।

–गीता

जब मोहरूपी कीचड को तेरी बुद्धि पार कर लेगी, तब श्रोतव्य और श्रुत (शास्त्र) से तुझे विरक्ति प्राप्त हो जायगी।

महात्मा बुद्ध ने भी अपने शिष्यों से कहा था :– "नौका के समान, पार करने के लिए मैं धर्म का उपदेश कर रहा हूँ, पकड कर रखने के लिए नहीं" नदी से पार होने के बाद नाव को भी हम छोड देते हैं। उसे सिर पर लाद कर इधर–उधर नहीं घूमा करते। उसी प्रकार लक्ष्य (मोक्ष) प्राप्त होते ही क्रिया रुप धर्म का भी त्याग आपोआप हो जाएगा।

जब तक विषयों की कामना है, तब तक संसार है और कामना से रहितावस्था ही मोक्ष की जन्मयात्री हैं :–

कामानां हृदये वासः संसार इति कीर्त्तितः।
तेषां सर्वात्मना नाशो मोक्ष उक्तो मनीषिभिः।।

हृदय में इच्छाओं के निवास को ही 'संसार' और उनके सम्पूर्ण नाश को ही विचारकों ने 'मोक्ष' कहा है।

विषयविरक्ति के समान कषायमुक्ति भी मोक्ष मोक्ष की सीढ़ी हैं :–

नश्वेताम्बरत्वे न दिग्म्बरत्वे न तर्कवादे न च तत्त्ववादे।
न पक्ष सेवा श्रेयणेन मुक्तिः कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव।।

दिगम्बरत्व, श्वेताम्बरत्व, तर्कवाद, तत्त्ववाद और पक्षसेवाश्रय (पक्ष विशेष के समर्थन) में मुक्ति नहीं है। कषायों से (मनकी) मुक्ति ही वास्तव में मुक्ति (मोक्ष) है

ज्ञान, दर्शन, चारित्र के बाद तप का नम्बर आता है :–

तपस्तनोति तेजांसि।।

तप से तेजस्विता का विस्तार होता है

बडे मुल्ला को मार–पीट के अपराध में पकड कर कचहरी ले जाया गया। फरियादी ने वहाँ जज से कहा :– "हजूर! मुझे मुल्ला ने जोर से पीट दिया। इन्साफ कीजिये।"

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जज ने मुल्ला से पूछा :– "तुमने इसे कितनी जोर से पीटा था ?"

मुल्ला ने फरियादी के पास जा कर पूरी ताकत से एक तमाचा मारने के बाद कहा:– "इसका चौथाई हिस्सा मान लें हुजूर!"

इस प्रकार मुल्ला ने जिसकी पिटाई बाजार में की थी, उसकी कोर्ट में भी कर दी, जिससे भविष्य में वह शिकायत न करे और जज के प्रश्न का उत्तर भी दे दिया। "एक पन्थ दो काज" अथवा "एक तीर में दो शिकार" कहावत को चरितार्थ करके बता दिया; उसी प्रकार तपस्या के द्वारा जीव शारीरिक–मानसिक अस्वास्थ्य तो प्राप्त करता ही है, कर्मो की निर्जरा भी करता है!

तपस्या उमंग के साथ होनी चाहिये; अन्यथा उससे अपेक्षित लाभ न होगा और श्रम व्यर्थ जायगा।

बड़े मुल्ला ने पार्टनरशिप में चौपाटी पर शर्बत की एक दूकान शुरू की। आधा–आधा माल का खर्च दोनों पार्टनरों ने उठाया। तय हुआ कि एक रुपये में एक गिलास बेचेंगे। अठन्नी–अठन्नी (पचास–पचास पैसे) दोनों बाँट लेंगे। इससे खर्च निकाल कर जो भी दोनों को बचेगा, वह उनकी आय होगी–लाभ होगा। दोपहर तक दोनों बैठे रहे। एक भी ग्राहक नहीं आया मुल्ला को प्यास लगी। उसने पार्टनर से एक गिलास शर्बत माँगा। वह बोला– "यह दूकान है। यहाँ उधारी नहीं चलेगी।"

मुल्ला की जेब में एक रूपया था। उसने रूपया पार्टनर को दे कर एक गिलास शर्बत पी लिया। पार्टनर ने एक अठन्नी मुल्ला को लौटा दी। कुछ समय बाद पार्टनर को प्यास लगी। उसने भी वैसा ही किया। मुल्ला को अपनी अठन्नी वापस मिल गई। इस प्रकार दोनों बारी–बारी से शर्बत पीते रहे और एक ही अठन्नी इधर से उधर घूमती रही। शाम तक शर्बत समाप्त हो गया और लाभ कुछ नहीं हुआ। जो पूँजी लगी थी, वह खर्च हो गई।

घर आ कर मुल्ला ने पत्नी से कहा कि व्यापार तो खूब चला; परन्तु मुनाफा कुछ नहीं हुआ।

इसी प्रकार जो लोग उत्साह पूर्वक प्रसन्नता के साथ तपस्या करते हैं, उन्हीं को मोक्ष का सुख मिलता है, दूसरों को नहीं।

द्रोणाचार्य ने आटे का कबूतर पेड पर रख कर अपने शिष्यों के लक्ष्यवेध की परीक्षा ली। बाण चलाने से पहले प्रत्येक शिष्य से पूछा कि तुम्हें क्या–क्या दिखाई देता है ? उत्तरों से पता चला कि किसी को आचार्य का और अपना शरीर, किसी को आसमान और पेड, किसी को शाखाएँ और पत्तियाँ, किसी को फूल, फल और पक्षी दिखाई दे रहे थे; परन्तु जब अर्जुन से पूछा गया तो उसने कहा कि मुझे केवल उस पक्षी की आँख दिखाई दे रही है और कुछ भी नहीं। द्रोणाचार्य इस उत्तर से बहुत प्रसन्न हुए। अर्जुन को बाण छोडने का आदेश मिला और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उसने सफलतापूर्वक लक्ष्यवेध करके सब को चकित कर दिया। साधक को भी अपने लक्ष्य (मोक्ष) के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं पडना चाहिये।

स्वामी राम कृष्ण परमहंस से एक बैरिस्टर ने पूछा कि आपकी बीमारी का इलाज डॉक्टर कर रहा है! क्या आप अपने योग बल से रोग मुक्त नहीं हो सकते ?

इस पर मुस्कराते हुए स्वामी जी बोले :– "मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ कि घी राख में डालूँ! अपनी वर्षोकी साधना इस नश्वर शरीर के लिए कैसे लूटा दूँ ?"

इस उत्तर से साधकों को समझ लेना चाहिये कि साधना आत्मकल्याण के लिए हो– मोक्ष प्राप्ति के लिए हो, मात्र शारीरिक सुख के लिए न हो।

चाणक्य ने कहा था :–

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात।
विषयान्विषवत्त्ज॥

हे तात! यदि तू मुक्ति चाहता है तो विषयों को विष के समान समझकर छोड दे।

विषय तो विष से भी अधिक घातक हैं :–

विषस्य विषयाणां हि दृश्यते महदन्तरम्।
उपभुक्त विषं हन्ति विषयाः स्मरणादपि॥

विष और विषयों में बहुत बडा अन्तर है।खाने पर ही विष मारता है; परन्तु विषय तो स्मरणमात्र से मार डालते हैं।

तीली में जब तक दूसरों को जलाने की शक्ति है, तभी तक वह माचिस की डिबिया में बन्द रखी जाती है। जलाने की शक्ति समाप्त होते ही (काम में आते ही) वह मुक्त हो जाती है। उसी प्रकार जब तक मन में विषयासक्ति में राग की आग पैदा करने की शक्ति है, तब तक संसार के बंधन से मुक्ति नहीं मिल सकती।

दो पंडित भाँग पीकर मथुरा से वृन्दावन के लिए चाँदनी रात में नाव पर सवार हो कर रवाना हुए। रात–भर नाव खेते रहे; परन्तु सुबह अपने को मथुरा के घाट पर ही पाया; क्योंकि रस्सी खोलना भूल गये थे। इसी प्रकार विषयासक्ति की रस्सी खोलना भूल गये तो जन्म–जन्मान्तरों तक घोर तपस्याओं का कष्ट सहने पर भी मुक्ति मंजिल प्राप्त नहीं हो सकेगी।

यदि राजमहल में प्रवेश करना हो तो पहले द्वारपालकों की अनुमति लेनी पडती है। योग वासिष्ठ में मुक्ति महल के चार द्वारपाल बताये गये हैं :–

मोक्षद्वारे द्वारपाला श्चत्वार :–परिकीर्त्तिताः।
शमो विचारः सन्तोष– श्चतुर्थः साधुसङ्गमः॥

शम, विचार, सन्तोष और चौथा वैरागी साधुका सत्संग–ये मोक्ष द्वार के चारों द्वारपाल कहे गये हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जो सुख–दुख से ऊपर उठ जाता है, वह जीवनमुक्त (जीवित रहते हुए भी मुक्त) बन जाता है–ऐसा योग वासिष्ठ में ही अन्यत्र लिखा है :–

नोदेति नास्तमायाति सुखे दुःखे मुखप्रथा।
यथा लाभस्थितेर्यस्य स जीवनमुक्त उच्यते।।

जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तुष्ट रहने वाला तथा सुख–दुःख में जिसके चेहरे की रोशनी न उदित होती है–न अस्त, उसे 'जीवनमुक्त' कहते हैं।

जो अरिहन्तदेव की तरह जीवनमुक्त होते हैं, वे दूसरों को मुक्त कर सकते हैं–इस विषय में एक दृष्टान्त सुना कर मैं अपनी बात समाप्त करूँगा।

भागवत सुनने से ब्रह्म ज्ञान होता है–ऐसा सुन कर किसी राजा ने एक पंडित से सप्ताह भर भागवत सुनी; परन्तु ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ; इसलिए उसने दक्षिणा देने से इन्कार कर दिया। इससे दोनों के बीच झगडा खडा हो गया। एक का आरोप था कि विवेचन अच्छा नहीं किया गया और दूसरे का आरोप था कि तन्मयतापूर्वक सुना ही नहीं गया।

सौभाग्य से उसी समय इधर–उधर भ्रमण करते हुए नारद जी वहाँ चले आये। दोनों के तर्क सुन कर दोनों को वे एक बगीचे में ले गये। वहाँ दोनों को अलग–अलग पेडों के तनों से रस्सी के द्वारा उन्होंने कस कर बाँध दिया। फिर आदेश दियाः– "आप दोनों एक–दूसरे के बन्धन खोल दीजिये।"

दोनों ने इस कार्य में अपनी असमर्थता स्वीकार की। फिर नारद जी ने प्रतिबोध दियाः– "ब्रह्मज्ञान बेचने–खरीदने की चीज नहीं है। वह बहुत पवित्र होता है– अमूल्य होता है। जिस प्रकार एक बँधा हुआ आदमी दूसरे के बन्धन नहीं खोल सकता; उसी प्रकार जो स्वयं राग–द्वेष से बद्ध है, वह दूसरों को मुक्त नहीं कर सकता। बस यही समझाने के लिए मैंने आपको यह कष्ट दिया है क्षमा करें।"

फिर नारद जी ने दोनों के बन्धन खोल दिये। कलह मिटाने के लिए दोनों ने उन्हें धन्यवाद दे कर प्रणाम किया।

इस दृष्टान्त में समझने की बात यह भी है कि नारद जी स्वयं रस्सी से बँधे हुए नहीं थे; इसीलिए वे दोनों को मुक्त कर सके!

आइये संसार के बन्धन से मुक्त होने के लिए हम भी–

"तिण्णाणं तारयाणं, मुत्ताणं मोअगाणं।।"

स्वयं तीरे हुए और दूसरों को तारने वाले, स्वयं मुक्त और दूसरों को मुक्त करनेवाले

ऐसे वीतराग देव की शरण ग्रहण करें और उनके बताये हुए :–

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए अन्नाणमोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य संखएणं एगन्तसोक्खं समुवेइ मोक्खम्।।

–उत्तराध्ययन ३२/२

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सब प्रकार के ज्ञान के प्रकाश से अज्ञान एवं मोह की वर्जना (त्याग) से तथा राग-द्वेष के क्षय करने से ऐसा मोक्ष प्राप्त होता है, जिसमें एकान्त सुख है अर्थात् अनन्त सुख है- दुःख है ही नहीं। मोक्ष अवस्था में आत्मा का एकान्तिक व आत्यन्तिक सुख रहा हैं।

क्रमशः मोक्ष मार्ग के अनुसार आगे बढें और निरन्तर उन्नति करते रहें। यदि लक्ष्य (मोक्ष) पाने की सच्ची इच्छा है तो वह मिलेगा ही।

हजार नाकामियाँ हों ''नश्तर'' हजार गुमराहियाँ हों लेकिन।
तलाशे मंजिल अगर है दिल से तो एक दिन लाजिमी मिलेगी।।

卐

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मेरे घट ज्ञान भानु भयो भोर

श्री अरुणोदय फाउन्डेशन

SHREE ARUNODAYA FOUNDATION

AHMEDABAD • BOMBAY • • BANGALORE • MADRAS

For Private And Personal Use Only